Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

कहानियों और कथाजगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २५, अंक : ३८६, १ से १५ अगस्त, १९८५

संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा
सुमीता

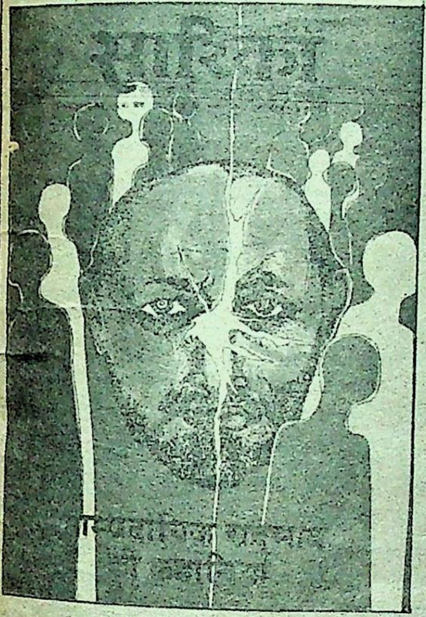

आवरण : सुमीता

सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियां

कहानियां एवं उपन्यास अंश

10. एक और कुंती : विष्णु प्रभाकर
17. सिक्का बदल गया : कृष्णा सोबती
20. टोबा टेकसिंह (उर्दू) : सआदत हसन मंटो
23. उल्लंघन (कन्नड़) : भैरप्पा
26. वैष्णव जन : राजेंद्र राव
30. वह आदमी (अमरीकी) : इर्विंग वैलेस
32. अमृतसर आ गया है : भीष्म साहनी
40. जुलूस : फणीश्वरनाथ रेणु
44. माई अब्दुर्रहमान (सिंधी) : अमरलाल हिंगोराणी
46. यादों के पंछी (मराठी) : प्र. ई. सोनकांबले
49. नीलोफर : कृष्णा अग्निहोत्री
52. मुझे ले चले, बाबुल (उर्दू) : खदीजा मस्तूर
56. शागिर्द : बाला दुबे
59. रंग में भंग (अमरीकी) : लैंग्स्टन ह्यूजेज
61. पहला सूरज : भगवतीशरण मिश्र
65. यादों के परदेस (उर्दू) : आसिफ फर्रुखी
70. अंधेरा (पंजाबी) : गुरबचन सिंह भुल्लर
73. झूठी आखें (उर्दू) : रजीउद्दीन सिद्दीकी

संस्मरण/यात्रा

54. बंटवारे की आग तले.... हंसराज रहबर
63. गोरे अमरीकी काले अमरीकी : जॉन स्टीनबेक

लघु रचनाएं

15. हम बच गये बेटा : अचला
18. मशाल और मशाल : बलराम
25. लहू और लोहे का इतिहास : सआदत हसन मंटो
36. गजल : राजेंद्र शर्मा 'राजन'
37. गजल : रमेश मेहता
42. दंगा : कृश्न चंदर
58. रोटी की जात : विपिन जैन

अन्य आकर्षण

6. आपकी बात
8. बहस
9. अपनी बात

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

पुरस्कार विशेषांक

युवा लेखन बनाम बुनियादी लेखन

सारिका अपने **रजत-जयंती** वर्ष पर विशेष उपहार वितरित कर रही है जिसके बारह 'स्वर्ण कमल' मैंने भी हस्तगत किये, साधुवाद. सचमुच हर अंक का **मुखपृष्ठ** मणि की भांति दमकता है और अंक सीप की तरह. ज्यों-ज्यों सीप को खोलता गया मुक्ता के दर्शन होते गये. यह मुक्ता मैं अपने संग्रहालय में समेटता चला गया.

अभी मेरे सामने **पुरस्कार विशेषांक** है. वर्तमान में नवयुवा लेखक कितना बुनियादी लेखन की ओर कलम घिस रहे हैं उसका प्रतिनिधि अंक बन गया है यह अंक.

'अपनी बात' में आपने वाद से ऊपर उठकर युवा लेखन की कुंठा को जिस स्पष्टता से उजागर किया है, वह काबिले तारीफ है.

निर्णायकों की नजरों में नूतनता है. मुफ्त के पाठक बनकर निर्णय देना इन्हें कैसा लगता है जानकर हार्दिक खुशी हुई क्योंकि निर्णय हिंदी कहानी को शक्ति प्रदान कर गया.

'तलाश,' 'कार्टून', 'शरीफ लोग', 'खच्चर', 'लंगड़ा', 'दृष्टि दोष', कहानियां काफी पसंद आयीं.

0 डा. नवीन नयन, खगड़िया

यूं भी इन दिनों . . .

काफी प्रतीक्षा के बाद **सारिका** का **पुरस्कार विशेषांक** मिला. किंतु इस बार हर तरह से इस अंक ने निराश ही किया है. जहां तक पुरस्कृत कहानियों का प्रश्न है तो इनमें एक भी कहानी गत वर्षों की पुरस्कृत कहानियों की तुलना में किसी भी स्तर पर नहीं ठहरती. कोई भी कहानी **'अपराध'** (संजीव), **'बुखारो'** (नरेंद्र निर्मोही), **'तुम्हारे बाद सौमित्र दा. . .'** (गौतम सान्याल) की तरह यादगार असर छोड़ने में सफल नहीं हो सकी है. ऐसी लचर और बेकार कहानियों को पुरस्कृत करने का औचित्य क्या रहा है, यह अब तक मेरे लिए एक पहेली है. हिंदी में अब भी बेहद अच्छी कहानियां लिखी जा रही हैं और प्रतिष्ठित लघु-पत्रिकाएं ऐसी कहानियां छापती भी जा रही हैं. फिर भी ऐसी घटिया कहानियों को पुरस्कृत करने का कारण या तो निर्णायकों का मानसिक दिवालियापन हो सकता है या फिर अच्छे लेखकों का प्रतियोगिता में किसी कारणवश भाग न लेना. लेकिन ऐसी स्थिति क्यों कर पैदा हुई इस बिंदु पर विचार करना प्रतियोगिता के आयोजकों का परम कर्तव्य हो जाता है. भविष्य में वे ऐसा वातावरण तैयार करें ताकि अच्छे कहानीकार प्रतियोगिता में भाग लें और अच्छी कहानियां पुरस्कृत होकर सामने आयें जिससे हिंदी कहानी की प्रतिष्ठा कायम रह सके.

पुरस्कृत लघुकथाओं में **'लंगड़ा'** (पवन शर्मा) को छोड़ दें तो एक भी लघुकथा कहलाने की हकदार नहीं है. यूं भी इन दिनों हिंदी साहित्य में लघुकथा के नाम पर ऐसी ही चीजें सामने आ रही हैं. (ऐसी स्थिति में किया भी क्या जा सकता है) फिर भी **'रेजा-कुली'** (अंकुश्री), **'मेरे आस-पास'** (विष्णु प्रसाद) और **'बोहनी'** (सिद्धेश्वर) आदि अगर लघुकथाएं हैं तो सच जानिए अब लघुकथा के 'बंटाधार' का समय दूर नहीं है.

आखिर में एक निवेदन करना चाहती हूं कि अगले वर्ष से पुरस्कार अंक में पुरस्कृत लघुकथाओं के साथ लघुकथाकारों के चित्र और परिचय प्रकाशित किये जायें और निर्णायकों की राय भी.

0 शोभा रानी चांद, बोकारो

मुरझा गयी बेलि. . .

कहानी **'सिघाड़े की बेलि'** पढ़ी. पर्याप्त रुचिकर लगी. ग्रामीण अंचल की झांकी और उसके बीच पनपे झंडू और डल्लो के प्यार का बड़ा ही सहज एवं सजीव चित्रण किया गया है. कहानी की एकरसता कुछ ऐसी बांध गयी कि मन सराबोर होकर डुबकियां ही खाता रहा.

गत्यात्मक शैली एवं भाषा का प्रवाह दोनों ही प्रभाव छोड़ने में एक दूसरे से होड़ लेते रहे हैं. झंडू का अंतर्द्वंद्व, उसकी छटपटाहट और उसके मुख से कहलवाये गये आंचलिक शब्द मन को बांधे रहते हैं. कहानी पढ़ लेने के पश्चात भी एक अनुगूंज-सी चारों ओर ध्वनित होती रहती है.

कहानी का अंत कुछ हल्का रह गया है. अधिक प्रभावशाली हो जाता यदि लेखक झंडू को जमींदार द्वारा पिटवाये जाने के पश्चात उसके आतंक और उसकी दुर्नीतियों के विरुद्ध कुछ करने का संकल्प कराता. न कि अपने परिवारजनों की विमुखता के कारण ही 'एकला चलो रे' की नीति अपनाता.

0 गोपाल अपेक्षित, नयी दिल्ली

अपनी-सी कहानियां

अन्य संग्रह योग्य अंकों की तरह यह अंक भी उस कड़ी में आ जुड़ा जिसे मेरी तरह ही अन्य पाठक भी अपने अमूल्य संग्रह में सहेजकर रखना चाहेंगे.

मैं **सारिका** पिछले तीन वर्षों से ले रही हूं. इससे पहले सारिका पढ़ती तो जरूर थी, पर यदाकदा ही. परंतु जैसे-जैसे समझ आती गयी, सारिका की कहानियां अपनी-सी लगने लगीं.

इस अंक में सबसे अधिक मर्मस्पर्शी कहानी शुभदा मिश्र की **'सलीब पर चढ़ा शैशव'** लगी. अन्य कहानियों में **'टापू'** तथा **'सिघाड़े की बेलि'** ने भी पर्याप्त प्रभावित किया.

लघुकथाओं में **'लंगड़ा'** तथा **'उलझन'** मर्मस्पर्शी थीं किंतु द्वितीय पुरस्कार प्राप्त **'दृष्टि दोष'** आम सामान्य किताबों में छपनेवाली सामान्य लघुकथा ही लगी.

0 अलका हजारी, दमोह (म. प्र.)

तुलनात्मक दृष्टि में यह अंक कमजोर

पिछले वर्ष के अंक का पुनः अध्ययन किया और इस अंक को भी पूर्ण एकाग्रता, गंभीरता के साथ पढ़ा, इस वर्ष कमजोर कहानियां पढ़ने को मिलीं.

'सलीब पर चढ़ा शैशव' अत्यंत संवेदनशील रचना है. मगर कथ्य कम और कहानी को रबड़ की तरह फिजूल खींचना कहानी को उबाऊ बनाता है. **'खच्चर'** भ्रष्टाचार और गरीब मजदूर के बीच खींचा गया अच्छा चित्रण है. प्रथम पुरस्कार प्राप्त कहानी से आश्चर्य होता है जैसा कि **नंदनजी** की टिप्पणी से भी जाहिर है, मास्टरजी का शेखचिल्लीपन (रमेश की आशाहीन तलाश) कुछ अजीब-सा लगता है. कहानी को इतना लंबा तान दिया गया है कि पढ़ने का मन नहीं करता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध

सब कहीं एक अमानवीय तिलिस्म के खिलाफ
युद्धरत रचनाकार जो आपको भी
अपनी लड़ाई में हिस्सेदार बनाता है!
और आप इस हिस्सेदारी से
बच नहीं सकते, इसलिए...

राजकमल पेपरबैक्स में प्रकाशित

मुक्तिबोध रचनावली आपके लिए है!

- छह खण्डों में लगभग 2550 पृष्ठ
- छठे खण्ड में उनकी विवादास्पद पुस्तक **भारतः इतिहास और संस्कृति** भी, जो रचनावली के सजिल्द संस्करण में नहीं थी

छह खण्डों के पूरे सैट का मूल्य रु० 180.00

लेकिन आपके लिए केवल रु० 150.00
यदि आप 10 अगस्त तक रु० 50.00 अग्रिम भेजते हैं

और मात्र रु० 135.00
यदि आप 10 अगस्त तक यह पूरी राशि अग्रिम भेजते हैं

डाक-खर्च दोनों स्थितियों में हम देंगे

रचनावली की प्रकाशन-तिथि– 30 सितम्बर 85

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली - 110002

'**टापू**' एक विधवा औरत के मनोविज्ञान को चित्रित करने में कुछ हद तक सफल हुई है. मगर '**सिंघाड़े की बेलि**' एक बेकार कहानी है. परायी औरत के साथ अवैध संबंध बनाने की कोशिश और फिर झंडू-डल्लों की उद्देश्यहीन गाथा. '**कार्टून**' के बारे में कुछ कहा जा सकता है. कुछ हद तक सोचने को मजबूर करती है. पत्रकार किन परिस्थितियों से गुजरते हैं. क्या-क्या बीतती है उन पर, एक बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न लगाती है यह कथा. '**शरीफ लोग**' का राघव जिंदगी से जूझता है और ऐसा ही होना चाहिए. मास्टरजी की तरह बेवकूफ नहीं होना चाहिए. '**विकलांग**' का रहीम चाचा भी अंत में टूट जाता है. क्या जिंदगी में टूटकर बिखर जाना ही होता है? भगवान ने इंसान को बिखरने के लिए नहीं, हिम्मत के साथ चट्टान की तरह अडिग रहकर जीने के लिए बनाया है, जैसे राघव.

कुल मिलाकर 'शरीफ लोग' और 'सलीब पर चढ़ा शैशव' अच्छी रचनाएं हैं.

0 **प्रदीप शर्मा, अलीगढ़ (उ. प्र.)**

मरीचिका के पीछे

पुरस्कार विशेषांक अपने नये रूप और श्रेष्ठ कहानियों के कारण संग्रहणीय बन गया है. ज्ञान प्रकाश विवेक की कहानी '**टापू**' में व्यक्ति के अकेलेपन को मार्मिक अभिव्यक्ति दी गयी है. लेखक ने संध्या के माध्यम से ऐसे इंसान की व्यथा को साकार किया है जो लंबे समय तक एकाकीपन को भोगने के बाद किसी से जुड़ने को बेचैन है. किसी दूसरे से सुख-दुख बांटने की जरूरत को गहरे तक महसूस करती है. पर हर बार उसकी नियति अकेले रह जाने की है.

शुमदा मिश्र की '**सलीब पर चढ़ा शैशव**' में बालमनोविज्ञान और पति-पत्नी के झगड़ों के बच्चों पर पड़नेवाले कुप्रभाव का सच्चा चित्रण है. कैलाश चंद्र की '**तलाश**' कहानी में इस सच को उकेरा गया है कि जिंदगी की कड़वाहटें इंसान को किस कदर पलायनवादी बना देती हैं— उसे एक झूठी आशा की मरीचिका के पीछे भटकने को मजबूर करती हैं.

0 **अशोक सेठ, दौसा (राज.)**

कहानियों का स्तर गिरा है

अंक मिलने से लेकर उसे पढ़कर समाप्त कर लेने तक क्रमशः मोहभंग जैसी स्थिति का सामना करना पड़ा. कहानियों से ज्यादा महत्वपूर्ण तो लगीं निर्णायकों की टिप्पणियां जो पिछले साल भी कमोबेश ऐसी ही थीं. ऐसा लगता है कि या तो रचनाकारों द्वारा निर्णायकों की गंभीर टिप्पणियों की उपेक्षा की गयी है या फिर हजारों कहानियों में से बीस कहानियों का चयन करनेवाली प्रारंभिक निर्णय दृष्टि में ही कहीं दोष रहा है. जिसकी वजह से यह अंक अपेक्षा के विपरीत कमजोर साबित हुआ. विशेष रूप से प्रथम पुरस्कार प्राप्त कहानी 'तलाश' तो सारी निर्णय-दृष्टि पर प्रश्न चिह्न लगा देती है. इस कहानी से बार-बार यह ध्वनित होता है कि मास्टर साहब ने सादगी और ईमानदारी की जिंदगी जीकर कोई अच्छा कार्य नहीं किया है. यही नहीं, वे अपने तमाम आदर्शों को भुलाकर, अंत में, अपने शूगर इंस्पेक्टर शिष्य की 'ऊपरी कमाई' के भरोसे की खुशफहमी में जीने का नाटक कर बैठते हैं.

विवेकानंद की तृतीय पुरस्कार विजेता कहानी '**शरीफ लोग**' अपनी नाटकीयता के बावजूद आधुनिक समाज की नपुंसकता पर करारी चोट कर पाठक को झकझोर देती है. मृत्युंजय तिवारी की ऋणात्मक सोच से ग्रस्त कहानी '**विकलांग**' को पता नहीं क्यों सम्मानित करने का निर्णय लिया गया. विकास कुमार झा की '**कार्टून**' व केशव की '**खच्चर**' फिर भी ठीक-टाक कहानियां हैं.

लघुकथाओं में कुंवर बेचैन की '**दृष्टि दोष**' एक अच्छी रचना कही जा सकती है. □

0 **कमलेश भट्ट, बरेली (उ.प्र.)**

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी का नस्ल सुधार बनाम सांप का पिटारा

सारिका के नये नियमित स्तंभ 'तीसरी नजर' का प्रारंभ समसामयिक साहित्यिक सरोकारों, विरोधाभासों और अपेक्षाओं पर विचारशील रचनाकारों की बेबाक टिप्पणी के प्रकाशन का उद्देश्य लेकर किया गया था. इस स्तंभ के अंतर्गत श्री राकेश वत्स की कई टिप्पणियां हम प्रकाशित कर चुके हैं. इन्हीं में से एक (हिंदी का नस्ल सुधार : 1–15 अप्रैल, 85) टिप्पणी के बहाने सुश्री कृष्णा सोबती का एक आलेख हमें प्राप्त हुआ. जिसे एक स्वतंत्र आलेख के रूप में ही (सांप का पिटारा : 16–31 मई, 85) प्रकाशित भी किया गया था. चूंकि कृष्णाजी के आलेख में ऐसे विशिष्ट मुद्दों का खुलासा किया गया है जिन पर आगे बहस की जा सकती है. इसीलिए हमने इस बहस को जारी रखने के लिए अपने पाठकों को आमंत्रित किया था. हमें प्रसन्नता है कि साहित्य प्रेमी पाठकों ने साहित्य के मूलभूत सरोकारों से जुड़ी इस बहस को हाथों-हाथ लिया और अपने निष्पक्ष विचार भेजे. इस बहस में अपनी भूमिका के निर्वाह स्वरूप प्राप्त पत्रों में से प्रारंभिक पत्र हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं और यह सिलसिला कुछ अंकों तक जारी रहेगा. 'तीसरी नजर' स्तंभ में कुछ अन्य रचनाकार भी हिस्सेदारी करेंगे.

आश्रमी हिंदी बनाम नव्वाबी उर्दू

'तीसरी नजर' कालम में 'आश्रमी हिंदी' और 'नव्वाबी उर्दू' की आधुनिक हिंदी साहित्य पर बेकार थोपन को लेकर जो **राकेश वत्स** ने अपने खास तीखे व्यंग्यात्मक अंदाज में एक खुशगवार साहित्यिक बहस छेड़ी थीं वह बहुत रोचक और लाभदायक हो सकती थी यदि **कृष्णा सोबती** राकेश वत्स के नाम व्यक्तिगत लांछनों भरा खुला पत्र (**सांप का पिटारा**) लिखने की बजाए तर्क का जवाब तर्क से देकर बहस को आगे बढ़ातीं. कृष्णाजी की रचनाओं से राकेश वत्स द्वारा लिए हुए हवालों को कृष्णाजी ने सवाब की बजाय गुनाह समझा. यह प्रवृत्ति साहित्यिक बहस का गला घोंटती है. कृष्णाजी के खुले पत्र ने उनके अपने बड़प्पन को जर्ब पहुंचायी है. उनसे ऐसी आशा नहीं थी. अब रही बात 'आश्रमी हिंदी' और 'नव्वाबी उर्दू' की, जो राकेश वत्स के कथनानुसार आधुनिक हिंदी पर आरोपित की जा रही है. पहली बात तो यह है कि राकेश वत्स को ज्यादा आपत्ति 'नव्वाबी उर्दू' से है, 'आश्रमी हिंदी' से नहीं.

कृष्णा सोबती ने अपने कथन में यहां तक बिल्कुल सही फरमाया है कि राकेश वत्स ने हिंदी पर उर्दू शब्दों के आरोपण की पुष्टि में कृष्णाजी की रचनाओं से जो शब्द उदाहरण के लिए पेश किये हैं वे हमारी आधुनिक हिंदी में इस कदर रचे-बसे हैं कि उन्हें गैर-हिंदी कहना बिल्कुल बेजा होगा. ऐसे शब्दों को निकालकर ही तो हिंदी 'आश्रमी हिंदी' बनती है. अगर राकेश वत्स बोझल फारसी शब्दों का हवाला देते तो उनकी दलील गलत न होती.

उर्दू में 'नव्वाबी उर्दू' नाम की कोई भाषा नहीं. हां, फारसी तराकीब से बोझल उर्दू को साहित्यिक उर्दू बनाने की नाकाम कोशिशें 'नासिख' और 'सौदा' के जमाने से चली आयी हैं. आज की उर्दू फारसियित से जहां तक हो सके गुरेज करती है. जहां-जहां उर्दू लेखक अपने लेखन में ऐसा नहीं करते 'वहां-वहां उनका लेखन कम लोकप्रिय हो जाता है चाहे वह कितना ही सार्थक और कलात्मक क्यों न हो. 'गालिब' और 'फैज' जैसे मशहूर शायरों पर भी फारसियित का इल्जाम बजा तौर पर लगाया जाता है.

याद रहे उर्दू शब्द-कोश में 70 प्रतिशत शब्द और मुहावरे वे हैं जो गंगा-जमुनी संस्कृति से अंकुरित हुये हैं. उन्हें केवल उर्दू के साथ जोड़ना और हिंदी में न स्वीकारना आधुनिक हिंदी को 'आश्रमी हिंदी' बनाकर आज के पाठक वर्ग से दूर ले जाना है. यही तो बढ़ती हुई आबादी के अनुपात में साहित्यिक हिंदी का पाठक-वर्ग कम होते चले जाने का कारण है.

एक और बात कहना बेजा न होगा. उर्दू और हिंदी (और यहां तक कि पंजाबी जैसी क्षेत्रीय) भाषाओं के मूलमतों को अपनी-अपनी भाषाओं के बिगड़ जाने का खतरा लगा हुआ है—अपने ही घर में एक सदस्य को दूसरे सदस्यों से प्रभावित हो जाने का खतरा. ऐसे लोगों को सोचना चाहिए कि खतरा यदि कोई है तो वह है अंग्रेजी के माध्यम से आती हुई नित नयी वह जुबान और शब्दावली है जो विज्ञान के अनगिनत क्षेत्रों में अनुसंधानों और आविष्कारों से उतरती हुई, महानगरी ट्रेड और कामर्स से होती हुई प्रचार के सशक्त माध्यम यानी हमारी फिल्मों तक आ पहुंची है.

0 राजेश्वर प्रसाद 'शोख', भारकंडा

बहस का मुद्दा ही गलत है

एक संस्कृतनिष्ठ राष्ट्रभाषा हिंदी प्रेमी लेखक ने मिठाई की दुकान पर जाकर पूछा, "बंधु, रसमलाई है?"

"है." उत्तर मिला.

"प्रति?" लेखक ने कहा.

"क्या?" दुकानदार ने पूछा.

"प्रति!" लेखक ने फिर कहा.

"क्या?" दुकानदार ने फिर पूछा.

"प्रति, श्रीमान्?" लेखक जोर से बोले.

"नहीं है." दुकानदार ने कहा.

राष्ट्रभाषा प्रेमी लेखक दूकान से लौट गये.

राकेश वत्स की **'तीसरी नजर'** की पहली किस्त पढ़ने के बाद मन में ऐसा विचार एक बार तो अवश्य आया था कि यदि उपरोक्त उदाहरण में राष्ट्रभाषा प्रेमी की जगह रा. व. को फिट कर दिया जाये तो . . . ! किंतु, बाद के दो और अंकों के 'तीसरी नजर' को पढ़ने पर मुझे लगा कि रा. व. के मन में सांप्रदायिकता भड़काने जैसी बात नहीं. सबसे पहली आपत्ति तो स्तंभ के शीर्षक पर ही होनी चाहिए थी—'तीसरी नजर' न देकर 'तीसरी दृष्टि' कर दिया होता. और बाद के अंकों में उनकी 'तीसरी नजर' में चुस्त-दुरुस्त, खूबसूरत, जरूरी, वजूद, ताल्लुक, जायज, एहमियत, नदारद, बरदाश्त, गुस्ताखी, मुलाहिजा, ताकत, नतीजा जैसे शब्दों का प्रयोग देखने के बाद **कृष्णा सोबती** को, हशमत शैली में लिखी, अपनी प्रतिक्रिया में प्रयोग किये कटु-शब्दों के प्रयोग पर निश्चय ही अफसोस हो रहा होगा. इसमें किंचित संदेह नहीं कि भाषा-बोलियां एक-दूसरे के नजदीक आती हैं, एक-दूसरे से टकराती हैं, घुलती-मिलती हैं. तभी एक-दूसरे में भाषाई-सम्मिश्रण से नये-नये शब्द लोकमानस और भाषाओं द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं. और फिर, इसमें भी क्या संदेह कि हिंदी 'गंगा' है. राकेश वत्सजी को भी इतनी समझ अवश्य होगी. जहां तक मेरा अंदाजा है कि उनकी (रा. व. की) प्रतिक्रिया ऐसे लेखकों (जैसे हशमत) के ही प्रति है जो जानबूझकर हिंदी को तथाकथित 'हिंदुस्तानी हिंदी' बनाने पर तुल गये हैं.

फिलहाल, रजत जयंती वर्ष के विशेषांकों में अनेकों अनूदित रचनायें पढ़ने को मिली हैं, कोई भी उक्त 'हिंदुस्तानी हिंदी' में नहीं थीं. अब हिंदी ऐसी भी न हो कि समझ में ही न आये और उसके लिये 'शब्दकोश' ढूंढ़ना पड़े. और ऐसा भी नहीं कि जानबूझकर उसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं का प्रयोग कर एक नयी भाषा बना दी जाये. बहस का मुद्दा दरअसल यही होना चाहिए, न कि इसे सांप्रदायिक विद्वेष का मुद्दा बनाकर एक और नयी समस्या देश में खड़ी कर दी जाये.

वैसे, व्यक्तिगत आक्षेप दोनों प्रबुद्ध साहित्यकारों का, एक-दूसरे पर, 'सारिका' के पृष्ठों पर स्तरीय नहीं लगा. बस.

0 डॉ. सुशीलकुमार गुप्त, खगड़िया (बिहार)

—क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

सांप्रदायिकता एक ऐसी अंधी विषकन्या है जो पक्ष-विपक्ष, अच्छे-बुरे और गरीब-अमीर, किसी को न देखती है और न बख्शती है. यह जहरीली आंधी जब भी और जहां भी चली, अपने पीछे विनाश के गहरे दाग और कब्रिस्तानों का सन्नाटा छोड़ती गयी. अधिकांशतः इस जहरीली आंधी या विषकन्या का इस्तेमाल एक हथियार के रूप में अपनी सत्ता बरकरार रखने के लिए किया जाता रहा है. यह सत्ता चाहे राजनीति की हो या धर्म की, अथवा अर्थ और काम की या किसी दूसरे किस्म की. रंग भेद, धर्म भेद, वर्ण भेद और वर्ग भेद के नाम पर हमने हमेशा इस जहरीली फसल को उगाया है. यह किसी एक जगह की समस्या नहीं है. आज इसका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय है. . . और इसकी औलाद है आतंकवाद. आज का सबसे बड़ा सवाल इस आतंकवादगर्भा सांप्रदायिकता से निपटने का है. साहित्य और विशेष रूप से कथा-साहित्य इस संबंध में क्या भूमिका निबाह सकता है, इसी बात को ध्यान में रखकर हमने इस अंक की योजना बनायी है.

साहित्य का काम सिर्फ शीशा दिखाना नहीं है, उससे आगे भी बहुत कुछ है. यह बहुत कुछ क्या और कैसे हो सकता है, यह सबसे अहम बात है. इस अंक की योजना बनाते समय हमारे दिमाग में यही अहम बात थी. सांप्रदायिक सद्भाव के सहारे ही अमन-चैन कायम किया जा सकता है. यह अमन-चैन किसी भी मुल्क, समाज और जाति की तरक्की के लिए बहुत जरूरी है. यदि हम अपनी सारी शक्तियां आपसी वैमनस्य बढ़ाने और लड़ाई-झगड़े में खर्च कर देंगे तो आगे बढ़ने के रास्ते कब और कैसे तलाश कर सकेंगे.

देखा यह गया है कि सामान्य रूप से आम आदमी सांप्रदायिक नहीं होता लेकिन सबसे ज्यादा वही इस्तेमाल किया जाता है. इस्तेमाल करनेवाली शक्तियां यह भली-भांति जानती हैं कि जनसाधारण कच्चे माल की तरह है, खासतौर से कच्ची गीली मिट्टी की तरह और उसे किसी भी रूप में ढाला जा सकता है. उसे उसी कच्चे माल या कच्ची मिट्टी के रूप में बनाये रखना इन शक्तियों के निजी हित में होता है. और वे उसे वैसे ही बनाये रखती भी हैं लेकिन एक रचनाकार किसी भी व्यक्ति या भावना के गलत इस्तेमाल से अपने आपको बचाये रखता है. यदि वह ऐसा नहीं करता तो सही अर्थों में रचनाकार ही नहीं है. आग को हवा देना आसान होता है लेकिन जब वह फैल जाये तो उसे ठंडा करना बहुत मुश्किल होता है. रचनाकार भी हवा देता है लेकिन उतनी ही जितनी नये निर्माण के लिए जरूरी है. जब वह विनाश की ओर झुकने लगती है तो सही रचनाकार उस पर पानी के छींटे भी मार देता है, क्योंकि उसका मूल उद्देश्य निर्माण होता है, विनाश नहीं.

इस अंक के संयोजन में हमने आग, हवा और पानी का सामंजस्य सही रखने की पूरी-पूरी कोशिश की है, क्योंकि इन तीनों ही चीजों का सानुपातिक सामंजस्य जीवन के लिए जरूरी है. यह जरूरत तब और भी बढ़ जाती है जब स्थितियां इन तीनों में से किसी एक की ओर अधिक झुकने लगती हैं. किसी भी एक का अधिक प्रकोप आदमी को सन्निपात की स्थिति में पहुंचा सकता है. इस सन्निपात की स्थिति को टालना, बचाना या शमित करना अथवा इनके उपायों पर गहरी चिंता के साथ विचार करना भी रचनाकार का मानवीय धर्म हो जाता है. चूंकि एक रचनाकार अधिक संवेदनशील होता है, अनुभूति ग्रहण की शक्ति उसमें अधिक सूक्ष्म और तीव्र होती है, इसलिए वह अपने मानवीय धर्म का निर्वाह भी किसी न किसी रूप में कर ले जाता है. इसी निर्वाह का दस्तावेज हैं; इस अंक की कहानियां.

बात सिर्फ भारत की ही नहीं है, दक्षिण अफ्रीका, इजराईल और अरब देश, अमरीका और ब्रितानिया जैसे विकसित देश भी सांप्रदायिकता की इस जहरीली हवा में सांस ले रहे हैं. द्वितीय विश्व युद्ध में यहूदियों का महाविनाश भी इसी जहर का परिणाम था. इस दृष्टि से सांप्रदायिकता शब्द बहुत ही व्यापक अर्थों का वहन करता है और इसके परिणाम भी दूरगामी और व्यापक होते हैं. मेरा विचार तो यह है कि आदिम युग में कबीलों की स्थापना और उनकी प्रभुसत्ता के विकास के साथ ही यह समस्या भी पैदा हो गयी होगी. तब से आज तक विश्व के सभी महान चिंतक इस समस्या पर विचार करते आये हैं और इसके हल खोजते आये हैं, लेकिन न यह समस्या समाप्त हुई है और न हल खोजने का सिलसिला. आज भी हमारे लिए यह जरूरी हो गया है कि हम इसे समाप्त भले ही न कर पायें, लेकिन इसके शमन का तरीका अवश्य सोचें और उस पर अमल करें. यदि 'सारिका' का यह 'सांप्रदायिक सद्भावना अंक' उस शमन के तरीके की तलाश करने में थोड़ा-सा भी हिस्सेदार हो सका तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे.

आगे बढ़ने के रास्तों की तलाश. . .

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और कुंती

विष्णु प्रभाकर

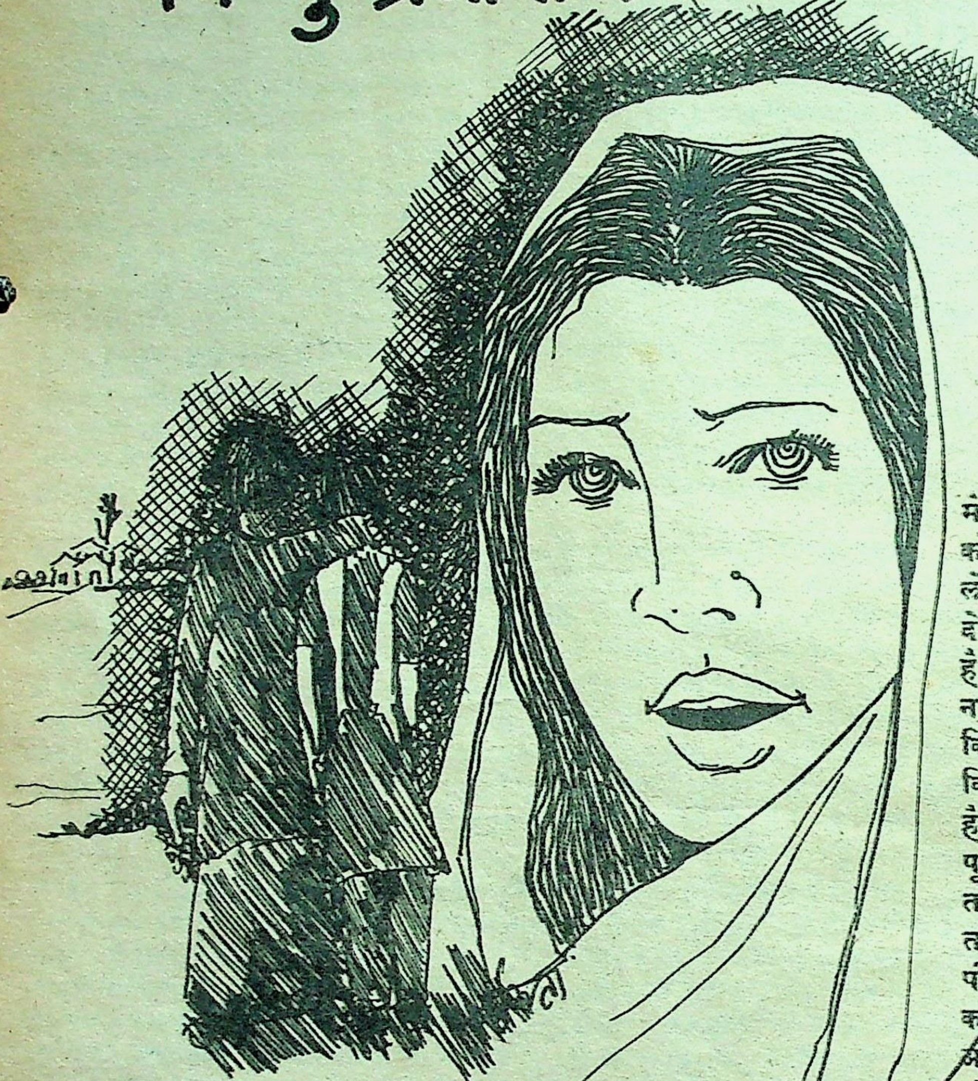

मैंने निश्चय किया कि अब मैं किसी को अपने पास नहीं आने दूंगी. लेकिन पास आने या न आने देनेवाला कोई 'मैं' थोड़े ही होता है. वह तो एक गंध होती है, नर-नारी के संबंधों की गंध जो किसी एक के अंगों से फूटती है और किसी दूसरे के अंगों को खींच लेती है! — भारत विभाजन की पृष्ठभूमि में नर-नारी संबंधों के तहत समाज और देश की संपूर्ण तस्वीर उतारती, हिंदी की वरिष्ठ पीढ़ी के जाने-माने उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार और 'आवारा मसीहा' सरीखी औपन्यासिक जीवनी के रचयिता विष्णु प्रभाकर की मार्मिक कहानी.

प्यारे दोस्त!

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यह पत्र लिखने का निर्णय करने में मुझे पूरा एक वर्ष लगा. और अगर वह घटना न घटी होती तो शायद कभी न लिख पाती. मैं नहीं जानती कि आपको क्या कहकर संबोधित करूं. आज निश्चय करके बैठी थी कि पत्र लिखकर उठूंगी. इसलिए सहसा जो संबोधन सूझा वही लिख रही हूं. उसके पीछे जानबूझकर दिया हुआ कोई अर्थ नहीं है. चिट्ठी लिखने का एक और भी कारण हो सकता है. उसमें मन उतर आता है. मैं मन खोलना चाहती थी किसी के सामने.

आपको याद होगा कि लगभग दो वर्ष पूर्व आप इस निकेतन में आये थे. तब मैं नयी-नयी आयी थी और नहीं जानती थी कि मैं जीती हूं या मर चुकी हूं. जीना-मरना केवल सांस के आधार पर तो नहीं होता.

लेकिन मैं इस मीमांसा में नहीं उलझना चाहती. आदमी गुत्थी सुलझाते-सुलझाते स्वयं उसमें उलझ जाता है. इसी उलझन से मुक्ति पाने के लिए तो मैंने सालभर तक अपने-से संघर्ष किया है. नर-नारी के संबंधों को लेकर मासिक 'प्रज्ञा' में मैंने आपका लेख पढ़ा था. उसके तुरंत बाद मैंने चाहा था कि आपको पत्र लिखूं. वह लेख पढ़कर मैं कैसी-कैसी न हो आयी थी. उसी 'होने' के परिणाम स्वरूप यह पत्र है. बहुत-से लोग आते हैं यहां. बहुत-सी बातें कहते हैं. विरह-मिलन के दृश्य भी बहुत देखे हैं मैंने. व्यापार भी होता है यहां. लेकिन आपके साथ ऐसी कोई बात नहीं हुई. फिर भी मुझे आपकी बराबर याद आती रही. क्यों? क्यों महसूस किया आपके साथ इतना अपनापन.

आपको बहुत अच्छी तरह याद होगा कि तब यद्यपि बादलों से मुक्त धुला-धुला आकाश बाहर आने का आमंत्रण दे रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. लेकिन. मैं एक कोने में पांच बच्चों से घिरी हुई, एक जिंदा लाश की तरह पड़ी थी. मुझे दिखाकर संचालिका ने आपसे कुछ कहा था. सुन कम पायी थी, समझी बहुत कुछ थी. जिस समय आप मेरे पास से होकर चले गये और ठीक उस खिड़की के पीछे आकर खड़े हो गये जहां मैं लेटी हुई थी; तब मुझे मालूम हुआ कि आप कौन हैं. मुझे देखकर आपके चेहरे पर कोई भाव नहीं आया था या आपने आने नहीं दिया था, मैं नहीं जानती. लेकिन जब आप पीछे खड़े थे तब मैंने आपकी बातें सुनी थीं. संचालिका ने आपसे कहा था, "देखिए, बहुत लोग आते हैं यहां और बहुत कुछ लिखते हैं यहां के बारे में लेकिन मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूं, इसलिए करती हूं कि आप लेखक हैं और लेखक संवेदनशील होता है. आप इस नारी के बारे में कुछ न लिखिए. . ."

आपने कहा था—यद्यपि उस कहने के बीच में कई क्षण बीत गये थे और मैं जानती हूं उन क्षणों में आपके हृदय में समुद्र-मंथन हुआ था. आपने दीर्घ निःश्वास लेकर एक ही शब्द कहा था—'अच्छा.' लेकिन इस एक शब्द के पीछे कितनी वेदना, कितनी अनुभूति और कितनी विवशता थी. आपके चेहरे पर व्यक्त वही त्रासद विवशता धीरे-धीरे मेरे समूचे शरीर में फैल गयी थी. मैं तड़पकर उठ खड़ी हुई थी. मैंने खिड़की की सलाखों को पकड़कर उस ओर झांका था. तब आप धीरे-धीरे संचालिका के साथ बाहर जा रहे थे. मैं कई क्षण तक उन ठंडी सलाखों पर जलते आंसुओं से भरा अपना चेहरा टिकाये देखती रही. द्वार के पास पहुंचकर आप मुड़े. मुझे देखने के लिए नहीं, बल्कि संचालिका को नमस्कार करने के लिए. लेकिन आपने मुझे न देखा हो, मैंने आपको देख लिया था. और उसी क्षण मैं समझ गयी थी कि आप भले ही मेरी कहानी को कागज पर न उतार सकें पर अपने अंतर में उसे निरंतर झेलते रहेंगे. . .

संचालिका ने आपको मेरी कहानी बतायी होगी. लेकिन क्या सचमुच बता सकी होगी? कोई नहीं शब्द दे सकता मेरी व्यथा-कथा को. मैं भी नहीं. सहते-सहते अनुभव करने की मेरी शक्ति समाप्त हो गयी है. पर क्या आप विश्वास करेंगे कि आपका वह लेख पढ़कर मैं स्वयं पहली बार अपनी कहानी को समझ सकी. जानती हूं आपने वह लेख मेरे लिए नहीं लिखा था. आपने मात्र अपनी सात समंदर पार के किसी देश की यात्रा के संस्मरण लिखे थे. सात समंदर पार के बारे में मैंने बहुत-सी कहानियां अपनी नानी से सुनी थीं. एक साहसी राजकुमार और एक सुंदर राजकुमारी की कहानियां. लेकिन आपने जो लेख लिखा था उसमें न राजकुमार की चर्चा थी, न राजकुमारी की. फिर भी उसमें अद्भुत साहस और अनोखे सौंदर्य की कथा गर्भित थी. नर-नारी के संबंधों की कथा. . .

मेरी कहानी उन्हीं संबंधों की व्यथा-कथा है. मैं एक तथाकथित सुसंस्कृत परिवार की बेटी और एक उतने ही सुसंस्कृत तथा संपन्न घराने की बहू थी. स्वयं सुंदर, मोहक और आकर्षक. उस दिन भी, बेशक वह ठंडा था, लेकिन एक अनोखा आकर्षण पाया होगा आपने मेरी उदास-उनींदी आंखों में. इन्हीं आंखों के रहते तो मैं बार-बार छली गयी. जिस समय मैं उन्नीस वर्ष की थी उस समय कैसी लगती थी, इसकी कल्पना आप नहीं कर पायेंगे. सौंदर्य को शब्दों में बांधना एक बात है, उसे सचमुच अनुभव करना दूसरी बात है. मैं आकंठ ऐश्वर्य और विलास में डूबी अपने पति के साथ उस अनूठे जीवन को भोग रही थी और समय एक सुनहरे सपने की तरह बीत रहा था.

उन्हीं दिनों सहसा मेरे प्रांत के भाग्याकाश पर विपत्ति के बादल फट पड़े. वे कैसे देश का दुर्भाग्य बन गये, यह आपको बताने की आवश्यकता नहीं है. उस महानाश में कौन कहां गया, किसके साथ क्या बीती, इतिहासकार इसको खतियाकर कभी नहीं देख पायेंगे. देखना चाहिए भी नहीं. अपने कलंक को अमर कर देना क्या अच्छी बात है? काल ने बड़ी नृशंसता के साथ हमें इस बात का अहसास करा दिया कि उपयुक्त अवसर आने पर, एक क्षण में ही, प्रभु की सर्वोत्तम कृति मानव, राक्षस में रूपांतरित हो रहती है.

मैं फिर उलझने लगी. अंदर जो घटाटोप है, लाख प्रयत्न करने पर भी वह निरंतर विस्तृत होती दरारों में से होकर, चारों ओर बिखर जाता है. अचानक एक दिन भयंकर आक्रमण हुआ हमारे घर पर. कैसे शब्द दूं उस बीभत्स दृश्य को. घर के अधिकांश सदस्य शरणार्थी शिविर में जा चुके थे. बस मैं और मेरे पति रह गये थे वहां, अंत में जाने के लिए. उन्होंने साहस के साथ मुकाबला किया पर. . . पर. . . उन दरिंदों ने उन्हें मार डाला और. . . और फिर. . . फिर उनकी लाश पर. . . बलात्कार किया. . . मेरे साथ. . .

एक सांस में पागल की तरह बोल जाता है न आदमी, वैसे ही एक सांस में मैं इसे लिख गयी. दूसरा सांस लेती तो लिख न पाती. जब होश आया तो मैं एक छोटे-से कच्चे और गंदे मकान में लेटी हुई थी. नितांत अकेली, असहाय, अपंग. प्राणहीन हो गये थे मेरे सारे अंग. मैं उन्हें हिला नहीं सकती थी. मैंने सोचा, शायद मैं मर गयी हूं और अपने पापों का दंड भोगने के लिए मुझे नरक में ढकेल दिया गया है. कोई रात को स्वप्न में नंदन कानन के सपने देखे और सवेरे अपने को नरक में पाये. कैसा आघात लगेगा उसे! लेकिन वह नरक भी नहीं था. क्योंकि धीरे-धीरे प्रकाश मेरे चारों ओर फैलता जा रहा था, मेरी चेतना लौट रही थी. मैं उठने का प्रयत्न करूं कि तभी किवाड़ खोलकर एक व्यक्ति मेरे सामने आ खड़ा हुआ. कई क्षण वह मुझे देखता रहा अपलक. मैं भी देख रही थी उसे और पलक झपक रही थी बार-बार. वह बोला, युगों बाद कहीं दूर से, "कैसी तबियत है?"

मैं एकाएक चीख उठी, "मैं कहां हूं, यह कौन-सी जगह है?. तुम कौन हो?"

वह एक स्वस्थ व्यक्ति था. उसके चेहरे पर क्रूरता नहीं थी. वेदना के ऊपर आरोपित कठोरता थी. उसने बताया धीरे-धीरे, "मैं नहीं जानता, तुम कौन हो, तुम्हारे घरवाले कहां हैं? गुंडे कुछ औरतों को भगाकर लिये जा रहे थे. लेकिन फौज ने उन्हें ढूंढ लिया. उस मुठभेड़ में बहुत-सी लड़कियां इधर-उधर भाग गयीं. जब सब लोग चले गये तो मैंने तुम्हें एक खेत में बेहोश पड़े पाया. मैं कौन हूं, यह जानने की कोशिश मत करो अभी. इतना समझ लो कि मेरा नाम नूर है. तुम बताओगी तो मैं तुम्हारे घरवालों को खोजने की कोशिश करूंगा."

न जाने कैसी संवेदना थी उसके इन सीधे-सच्चे शब्दों में. मैं रो पड़ी और सुबकियों के बीच उसे अपनी दास्तान सुनाने लगी. कई क्षण वह कुछ नहीं बोला, जैसे कुछ अकथनीय कहने के लिए साहस बटोर रहा हो. कई क्षण बाद धीरे-धीरे उसने कहा, "मैं जानता हूं, उस शहर में अब तुम्हारे घर-परिवार का कोई आदमी नहीं बचा है. मारे गये भी नहीं. कुछ शरणार्थी शिविरों में चले गये हिंदुस्तान जाने के लिए, कुछ नफरत और हिंसा के सैलाब में बह गये. . .!"

मैं तड़प उठी. मैंने चीखकर कहा था, "क्या मैं नहीं जा सकती शिविर में? क्या आप मुझे वहां से निकल जाने में मदद नहीं कर सकते?. . . . क्या आप कृपा कर. . ."

वह दीवार के सहारे खड़ा था. थोड़ा पास आया मेरे. बोला पहले की तरह बहुत धीमे-धीमे, "अभी कुछ नहीं हो सकता. चारों ओर दहकता हुआ लावा फैलता जा रहा है अभी तो. किसी अंधेरी रात में तुम्हें अपने घर घर ले जाऊंगा. तुम्हारे लिए नये कपड़े ले आया हूं. और. . . . तुम अब आयशा हो."

"क्या?"

"हां, अब तुम आयशा हो. समझती हो?"

प्यारे दोस्त! वे कपड़े पहनते न पहनते मैं कितना रोयी थी. फिर भी हुआ वही जो नूर ने चाहा था. आनेवाली पहली अमावस की रात में मैं मानो हमेशा के लिए नकाब पहनकर उसके घर चली गयी. मर न सकी. मर जाना चाहिए था न, पर अपने से अजनबी हो रहना, मरने से कहीं त्रासद होता है. मैं जानती थी कि नूर ने मुझे इसीलिए बचाना चाहा था कि मैं नारी थी और सुंदर भी. . . नर-नारी का यही संबंध शाश्वत है न. . .

CC-0. In Public Do...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक बात बताऊं. नूर अविवाहित और हिंदू था. कई दिन बाद पता लगा था मुझे. वह अपनी जमीन-जायदाद बचाने के लिए मुसलमान बना था.

बहुत लंबी कहानी है मेरी. टुकड़ों-टुकड़ों में ही कह पाऊंगी. आप चाहें तो उपन्यास लिख सकते हैं. पर मेरा अनुरोध है, न लिखिए. कोई कैसे शब्द दे सकता है उस भावना को जो मेरे मन में तब उठी थी जब मैंने अनुभव किया था कि मैं मां बननेवाली हूं. दर्द और नफरत का सैलाब मेरे अस्तित्व को लील गया था तब. मैंने पेट पर मुक्के मार-मारकर गर्भ गिराने की नाकाम कोशिश की थी पर नूर सजग था. मैं अपने मंसूबे में कामयाब नहीं हो सकी. सच तो यह है कि मेरे अपने अंदर ही कोई था जो मेरे मंसूबों को नाकाम बनाने पर तुला हुआ था. अपने ही 'मैं' के दोहरेपन को हम कब समझ पाते हैं. . .

मेरा एक और बेटा था जिसे मैं पीछे छोड़ आयी थी. उसकी याद करके मैं अक्सर रोती थी. पति तो अब आनेवाले नहीं थे पर क्या मैं अपने बेटे को भी नहीं देख पाऊंगी. . . लेकिन मैं तो नये बच्चे की बात बता रही थी. कहां से आया यह, कैसे आया? नूर तो उस सारे समय मेरे पास तक नहीं आया! तब. . . तब. . . उस बलात्कार का नतीजा है यह. हे प्रभु! तुम हो क्या. सचमुच हो. . .

कितना पुकारा था मैंने उस निर्मम को पर वह नहीं पसीजा और समय धीरे-धीरे फिसलता रहा और मुझे लगता रहा जैसे वह ठहर गया है. मेरे चारों ओर एक सुलगता अग्निकांड है जिसमें से उठती आदमी के रक्तमांस की चिड़ायंध मेरे नासा रंध्रों में घुसती जा रही है. मैं सोते-सोते चीख उठती. मैं बाहर भागने को पागल हो उठती. . .

लेकिन इस विभीषिका के बीच में नूर था कि अडिग चट्टान की तरह खड़ा रहा. वह मेरे पास भी नहीं आता था, दूर भी नहीं जाता था. उसने मेरे आंसू पोंछने की भरसक कोशिश की. मेरे परिवार का पता लगाने का प्रयत्न किया लेकिन सफल नहीं हो सका. तब एक दिन वह मेरे पास आकर बैठ गया. बोला, "धीरे-धीरे आग बुझ रही है. तुम लोगों को निकालने के लिए सेना आती रहती है. चाहो तो तुम भारत जा सकती हो."

आश्चर्य! मैं तब पुरइन के पत्ते की तरह कांप उठी थी. और मैंने चीखकर कहा था, "नहीं-नहीं, मैं नहीं जा सकती. मैं नहीं जाऊंगी."

तब पहली बार उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर थपथपाया. उस स्पर्श के साथ न जाने कैसी भीगी-भीगी संवेदना मेरी रग-रग में प्रवाहित होने लगी. मुझे अच्छा लगने लगा. उस दिन वह चुपचाप चला गया. लेकिन तीसरे दिन, पांचवे दिन, सातवें दिन उसने फिर यही कहा. मैं निरंतर लड़ती रही अपने-आपसे. पंद्रहवें दिन आकर वह बड़े प्यार से बोला, "चलो वे लोग बहुत पास हैं. मैं तुम्हें छोड़ आता हूं. तुम न जाना चाहो तो मैं उन्हें यहां बुला लाऊंगा."

मैं अब पूरी तरह शांत थी. पूरी दृढ़ता से मैंने जवाब दिया, "मैं नहीं जाऊंगी. तुम सब कुछ जानते हो. फिर भी मुझे जाने को कहते हो. . . क्यों. . ?"

तब तक वह मुझे अपनी कहानी सुना चुका था.

कई क्षण मेरी ओर देखता रहा. उसके बाद उसने कभी मुझसे जाने के लिए नहीं कहा. अब मुझे जीवनभर यहीं रहना था.

मेरे दोस्त! घोर अवसाद में डूबे रहने के बावजूद उस दिन मेरे उदास चेहरे पर पहली बार मुस्कराहट उभरी थी. इसी के साथ शुरू हुआ मेरी कहानी का दूसरा अध्याय. एक दिन मैं मां बनी. अत्याचार की राह आये उस नये शिशु को देखती तो मेरी सुबकियां फूट पड़तीं. लेकिन उस मासूम की दृष्टि में न जाने क्या था कि एक निराली पीर कसक उठती मेरे अंतर में और मुझे उन्माद से भर देती. नारी के कारावास की कहानी यहीं से आरंभ होती है!

मेरे दोस्त! क्या आप विश्वास करेंगे कि छह माह बीतते न बीतते मैं फिर मां बनने को हुई. मैं अब नूर की पत्नी थी. उसने मेरे बच्चे को

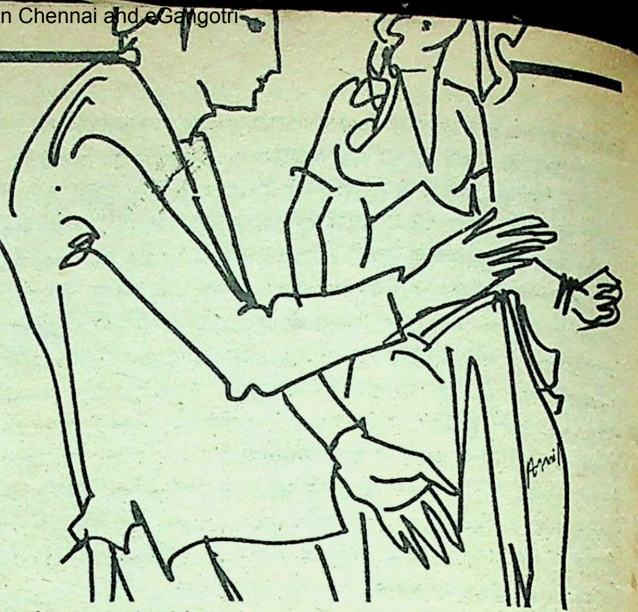

अपना लिया था और मैंने अपने अंतर से पिछले जीवन को धो-पोंछ डाला था. धो-पोंछ डालने की यह प्रक्रिया कितनी मर्मांतक थी. उसकी अब क्या चर्चा करूं. क्यों करूं. पति चले गये थे. उनका परिवार मुझे स्वीकार कर नहीं सकता था. बस, बेटे की याद आती थी. कैसी विडंबना है जो प्यार की राह आया वह दूर हो गया और जो. . .

अब वह कहानी नहीं. लेकिन मेरे कहने मात्र से तो कहानी खत्म नहीं हो सकती. यहां के लोग जानते थे कि नूर जमीन-जायदाद को बचाने के लिए मुसलमान बना है. धीरे-धीरे वे उस पर दबाव डालने लगे. और जैसे ही उसने प्रतिरोध करने की कोशिश की, उन्होंने उसे मार डाला. क्षत-विक्षत तन-मन लिये मैं फिर दोराहे पर खड़ी थी पाषाणवत्. नारी भी तो जमीन ही होती है न, और जमीन के पास उसकी अपनी कोई आवाज नहीं होती. अन्नपूर्णा होकर भी वह संपत्ति होती है किसी नर की. . .

सातवें दिन एक और नूर के पदचाप बिलकुल मेरे पास आकर रुके. मैंने आंखें खोल दीं. वह मेरे पास बैठ गया. बोला, "फारुखी हूं. यहां कालेज में पढ़ाता हूं. मुझे बहुत दुख है कि नूर बेगुनाह मारा गया. वह मेरा दोस्त था. उसने मुझे यह मकान देने का वायदा किया था. नहीं. . . डरो नहीं, मैं तुम्हें जाने के लिए नहीं कहूंगा. तुम यहीं रह सकती हो."

मैं पूरी तरह मोहताज बनी आंखें फाड़े-फाड़े छत की ओर देखती रही. मैं जानती थी, मैं खूबसूरत हूं और जवान हूं. इन दो-ढाई वर्षों में मैंने क्या कुछ नहीं भुगता. लेकिन यौवन का ज्वार तो जैसे मेरे शरीर में अड़ी मारकर बैठ गया था. मौत बार-बार पास आकर लौट जाती थी. इस बार भी लौट गयी. मैं एक जिंदा लाश की तरह जीती रही.

मेरे दोस्त! आपने नर-नारी की समानता के लिए एक-दूसरे के आकर्षण से मुक्ति की बात कही है, पर क्या आप विश्वास करेंगे कि प्रोफेसर फारुखी के इसी आकर्षण ने मुझे एक बार फिर जीवनदान दिया. एक बार फिर मेरे अंगों में वसंत की बयार बहने लगी. हर औरत के अंतर में बराबर एक मर्द रहता है. फारुखी सचमुच मर्द था. और शायर भी. उसके अनेक अशआर आज भी मेरे अंतर को आलोकित करते रहते हैं. उसने मेरे साथ निहायत शरीफाना बरताव किया. उसने मेरे दोनों बच्चों को किसी तरह का अभाव नहीं खटकने दिया. मोहब्बत और इंसानियत की हवा पाकर वे जैसे पनप उठे. और पनप उठा मेरा अंतर्मन. दिलों का रिश्ता शरीर के रिश्ते से जुड़ गया. उसने मुझसे बाकायदा निकाह किया. मेरा नाम सुरैया रखा. चौथा पुरुष था वह मेरे जीवन में. आपने लिखा है पश्चिम की नारी सहज भाव से कह सकती है, 'मेरा चौथा पति.' प्राचीन भारत में भी शायद कुंती ने कहा होगा, 'इंद्र मेरा चौथा पुरुष है.' और द्रौपदी तो एक समय पर पांच पतियों की प्राणवल्लिभा थी. वे सब हमारी प्रातःस्मरणीय-पूज्य हैं. लेकिन क्या मैं कभी कह सकूंगी, 'फारुखी मेरा चौथा पुरुष था. मैं चौथी बार मां बनने जा रही हूं.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय के प्रवाह में नर-नारी के संबंध कहां से कहां बह गये.

मैं फिर उलझने लगी तर्कजाल में लेकिन एक बात मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूं, यदि मैं अपने पहले पुरुष के साथ रहती होती तो मेरे चौथी बार मां बनने पर आनंद और उल्लास से वातावरण महक उठता. अजस्र आशीर्वादों की वर्षा होती मुझ पर. मातृत्व के गौरव से मेरा भाल चमक उठता. मां मैं अब भी बनती थी पर गौरव करने लायक कहीं कुछ नहीं होता था. होती थी एक विवशताजन्य उदासीनता. लेकिन मुझे यह स्वीकार करने में आज तनिक भी लज्जा नहीं है कि उस पठान को छोड़कर जिसका मैं नाम तक नहीं जानती, नूर और फारुखी, दोनों ने मुझको प्यार दिया. जब-तब छा जानेवाले गहरे अवसाद के बावजूद मैंने उस प्यार को जिया. मन की उन बातों को छिपाने का आज कोई कारण नहीं है. किसके लिए छिपाऊंगी इस दुचित्तेपन को? मनुष्य केवल अपनी आंतरिक शक्ति के सहारे नहीं जीता बल्कि उसे उस शक्ति की भी आवश्यकता होती है जो उसे दूसरों की हमदर्दी में से मिलती है.

लेकिन यह आनंद भी स्थायी नहीं हो सका. अचानक एक दिन फारुखी घबराया हुआ आया. बोला, "सुरैया! दुश्मन कामयाब हो गये. मुझे यहां से दूर एक कालेज में बदल दिया गया है. मुझे आज ही जाना होगा."

हठात् जैसे मैं खौलते कढ़ाव में गिर पड़ी हूं. चीख उठी, "नहीं, मैं अकेली नहीं रह सकती. मैं तुम्हारे साथ चलूंगी."

पर मैं कैसे जा सकती थी. मैं अभी-अभी चौथी बार प्रोफेसर फारुखी के बेटे की मां बनी थी. उस रात हम सो नहीं सके. तमाम समय उसे बीतते देखते रहे और वह सांत्वना देता रहा. सवेरा होते न होते वह चला गया. जाते समय उसने सच बात बतायी, "मैं आऊंगा. मैं जानता हूं, यह सब जालसाजी है. मुझसे यह मकान छीन लिया गया है. मुझ पर यह इल्जाम लगाया गया है कि मैंने नूर को मारकर उसकी बीवी को नाजायज तौर पर रखा हुआ है और कि तुम हिंदुस्तान से भगायी एक हिंदू औरत हो. मैं परदेशी हूं. सब हाकिम उनकी तरफ हैं. लेकिन मैं आऊंगा. मैंने तुम्हारे लिए सब इंतजाम कर दिये हैं. आया आती रहेगी तब तक."

उसने अंतिम बार मेरा चुंबन लिया और देर तक मेरी उंगलियों को पकड़े मेरी आंखों में झांकता रहा. उस दृष्टि से बहते प्यार दर्द और क्षमा की एक गुनगुनी धारा ने मेरे बांध को तोड़ दिया. उसके जाते ही मैं सिसकने लगी. . .

तीसरे दिन जब मैं अपेक्षाकृत शांत थी, मैंने मुजफ्फर को अपने सामने पाया. उसकी आंखों में शरारत थी और होंठों पर थी मंद-मंद मुस्कान. वह मुझसे इजाजत लेकर अंदर आया. उसने धीरे-धीरे कहा, "मुझे बहुत अफसोस है, प्रोफेसर साहब तुम्हें छोड़कर चले गये. उम्मीद नहीं कि वह अब लौटेंगे. क्या तुम हिंदुस्तान जाना चाहोगी?"

मैं एक बार फिर जिंदा लाश में बदल चुकी थी. फिर भी मैं झूठ नहीं बोल सकी. कई क्षण देखती रही उस पुष्ट कंधोंवाले पंजाबी युवक को. फिर बोली, "मैं कहीं नहीं जाना चाहती. बस मरना चाहती हूं."

वह मुस्कराया, "ठीक है, मैं दो दिन बाद तुम्हें मैं अपने गांव ले जाऊंगा. वहां तुम्हें यह जाहिर करना होगा कि तुम हिंदुस्तान के लोगों की सताई हुई एक मुस्लिम खातून हो."

मुझे ऐसा लग रहा था जैसे कहीं बहुत दूर से आकर ये शब्द मेरे मस्तिष्क में केंचुओं की तरह रेंग रहे हों. सुनती हूं, केंचुए बहुत बढ़िया किस्म की खाद बनते हैं. मैं तो. . . नहीं शायद मैं भूली, मैं शायद तब खाद बनकर ही रह गयी थी, बढ़िया किस्म की खाद जिसमें से बदबू नहीं उठती. काश, मुझमें से बदबू उठ सकती!

प्यारे दोस्त! एक दिन सचमुच मैंने अपने-आपको एक छोटे-से खुशहाल देहात में पाया. वहां स्त्री-पुरुष सब मिलकर खेती करते थे और फिर हीर-रांझा के गीत गाते थे. कितनी मस्ती थी उस आलम में. वहां की सुहानी धूप तक हमसे लिपट-लिपट जाती थी. बचपन में मां-बाप के साथ ऐसे ही देहातों में रहते हुए मैंने न जाने कितने सतरंगे सपने देखे थे, इसलिए बहुत देर तक मैं उस वातावरण से अछूती न रह सकी. बयार की मादकता ने मेरे उभारों को फिर से आकर्षक बना दिया. मैंने निश्चय किया था कि अब मैं किसी को अपने पास नहीं आने दूंगी. लेकिन पास आने या न आने देनेवाला कोई 'मैं' थोड़े ही होता है. वह तो एक गंध होती है. नर-नारी के संबंधों की गंध जो किसी एक के अंगों से फूटती है और किसी दूसरे के अंगों को खींच लेती है.

फारुखी इस स्वाभाविक आकर्षण को न जाने क्या-क्या नाम दिया करता था पर मुजफ्फर था कि भाषा से नितांत अपरिचित था. उसकी आंखों की शरारत, उसके होंठों की मुस्कान और बाहों की जकड़न इतनी मांसल थी कि लोथ में भी जीवन की चाह पैदा कर देती थी. . .

इसका जो परिणाम हो सकता था वही हुआ. नारी फिर मां बनी. इस बार दो जुड़वा बच्चों की मां. नियति का व्यंग्य कितना क्रूर होता है. मेरे पांच बेटे थे अब. कुंती के भी पांच बेटे माने गये हैं. छटे को, जो उसका पहला था, उसने स्वयं त्याग दिया था. मेरा भी छोटा बेटा है, मेरे प्रेम का प्रतीक पर. . .वही मुझ से छीन लिया गया.

आपको नाम तो बताये ही नहीं उनके. आवश्यक नहीं है पर बिना नाम यहां कुछ नहीं चलता तो, मान लीजिए तब उनके नाम थे—अनवर, अशरफ असगर, अहमद और अली.

आप पूछेंगे, 'छटे बेटे का नाम क्यों नहीं बताया.' जब वह मेरा रहा ही नहीं तब नाम लेकर क्या करूंगी. फिर भी उसका नाम है—आशिम.

तो मेरे दोस्त! मेरी जिंदगी का चक्र इस तरह तेजी से घूम रहा था. उन गांववालों की दृष्टि में मैं पांच बेटों की मां थी, बेहद खुशकिस्मत और सुखी भी. मुजफ्फर को मेरे निगोड़े रूप का जादू पागल बनाये हुए था. लेकिन यह कोई नहीं जानता था कि इस सुख और सौंदर्य को भोगनेवाली मात्र एक जीवत लाश, संस्कार और सभ्यता के आवरण से मुक्त एक कठपुतली है, जो न जाने कौन-सी नियति के इशारे पर यह सब कुछ करने को विवश थी.

इसके पीछे नर-नारी के शाश्वत संबंध थे या वे खतरनाक परिस्थितियां थीं जिनमें मैं अपने बावजूद उलझती जा रही थी. और स्वामित्व जतानेवाले हर पुरुष को मैं प्यार करने का नाटक करती थी. लेकिन नाटक करने की भी एक सीमा होती है. मैं जैसे टूट गयी और मैंने तय कर लिया कि इस उर्वर भूमि पर अपना जीवन गुजार दूंगी. मैं मुजफ्फर की बीवी हूं, उसी की रहूंगी. पांडु की तरह वह मेरे पांचों बच्चों का बाप कहलायेगा. और फिर मैं एक दिन बूढ़ी होकर अपने किसान बेटों के हाथों यहीं की जमीन में दफना दी जाऊंगी. न सही मंत्र-पाठ, कुरान शरीफ की आयतें मेरी मिट्टी को मिट्टी के सुपुर्द कर देंगी.

लेकिन कुरुक्षेत्र का युद्ध अभी पूरा नहीं हुआ था. उस दिन मुजफ्फर घर लौटा तो बेहद परेशान था. उसने कहा, "तुम यहां नहीं रह सकोगी. तुम्हें और दूर पहाड़ी के उस पार जाना होगा. तुम्हारे देशवाले तुम जैसी औरतों को ढूंढते फिर रहे हैं और उन्हें शक है कि एक औरत इस गांव में भी है."

कितनी बार हुआ था यह. मैं स्तब्ध न हो सकी, पथराई आंखों से देखती रह गयी उसे बस. उसने मुझे बाहों में समेट लिया. बोला, "तुम परेशान मत होओ. सब इंतजाम कर दिया है मैंने. मेरा दोस्त है वहां."

"तुम नहीं चलोगे?"

"अभी तो नहीं. . .पर, आऊंगा जल्दी आऊंगा."

हर बार नियति ने मुझसे छल किया. हर बार मुझे लगा कि मैंने स्वयं ही स्वयं की हत्या की है. हर बार मैं अपने से पूछती, 'यह तू ही है क्या. . .?"

उस रात चुपचाप घुप्प अंधेरे में बिना किसी से मिले, अपने पांच बच्चों के साथ मैं एक अनजान प्रदेश की ओर रवाना हुई, अहमद और अली तब एक एक वर्ष के थे. असगर, अशरफ और अनवर क्रमशः दो, तीन और चार वर्ष के हो रहे थे.कई दिन की यात्रा के बाद हम एक छोटे-से

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

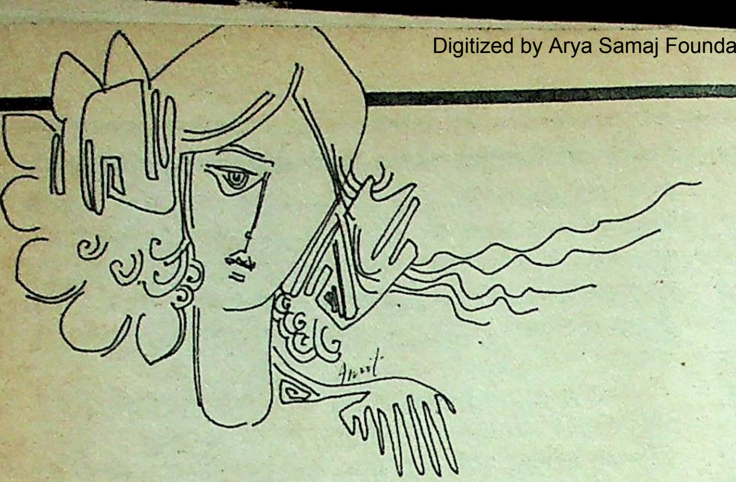

पहाड़ी गांव में पहुंचे. और आप विश्वास नहीं करेंगे, पूरे तीन साल तक यहां से वहां, वहां से कहां-कहां मैं भटकती रही. तीन चार महीने से अधिक कभी एक जगह न रह सकी. सालभर तक मुजफ्फर से संबंध बना रहा. उसके बाद वह कभी नहीं आया. यह सब योंही हुआ या जानबूझकर पैदा किये किसी भ्रम के कारण. मैं बेहासरा, बेपनाह, भीख मांगने को विवश हो गयी. आप पूछेंगे कि क्या मेरे रूप ने अब और किसी को आकर्षित नहीं किया. किया, लेकिन अब मुझमें न जाने कैसी अंध-चेतना जाग उठी थी. न समझ में आनेवाला एक विद्रोह अवसर आने से पूर्व ही मुझे वहां से निकल भागने को विवश कर देता. अपने को बचाने के लिए मैंने अपने-आपको और अपने बच्चों को बार-बार खतरे डाला. . .

क्या करेंगे आप उस लंबी यातना की दास्तान को सुनकर. इतना ही जान लीजिए कि मुजफ्फर का घर छोड़ने के तीन वर्ष बाद मैंने अपने को पेशावर में पाया. तब न मेरे पास रह गया था रूप, न यौवन, लेकिन चलते रहने की एक अदम्य लालसा अभी शेष थी. जीने की लालसा जो हर खतरे को मोहक बना देती है या कहूं कि हमेशा खतरनाक परिस्थितियों से जूझते-जूझते मेरी ताकत निरंतर बढ़ती जा रही थी. जीवित रहना भी कितना विलक्षण है.

मेरे दोस्त!

यही वह अघटित घट गया जिसको न घटने देने के लिए मैं अब तक भागती रही थी. अनवर अब सात वर्ष का हो रहा था. दुख और कष्टों के इस पारावार ने उसमें अद्भुत संवेदना पैदा कर दी थी. वह अनचाहे जालिम बाप का बेटा था लेकिन वही मेरे पांवों के कांटे निकालता था. भीख मांग लाता, मौका पड़ने पर छोटे-मोटे काम भी कर लेता. कहां से आयी उसमें यह चेतना, कैसा है यह प्यार और नफरत का आल-जाल अनबूझ, अनचाहा. . .लेकिन कुछ भी हो वह मेरा हमसफर बन गया. एक ऐसे सफर का साथी जिसके अगले पड़ाव का हमें कुछ पता नहीं होता था.

मेरे दोस्त, जिस डर से मुजफ्फर ने मुझे पहाड़ों में छिपाया था, पीछा करते-करते वही डर यहां आ पहुंचा. हिंदुस्तान के लोग इस इलाके में विशेष रूप से सक्रिय थे. नियति भी कैसे-कैसे खेल खेलती है. उसने एक दिन अनवर को उन्हीं के पास भेज दिया. वह नहीं जानता था कि मैं कभी हिंदू थी. लेकिन उससे बातें करते-करते उन्हें जब पता लगा कि हम कई वर्ष से भागते फिर रहे हैं तो उन्हें शक हो गया. वही शक उन्हें मेरे पास खींच लाया. आश्चर्य उनके पास मेरा चित्र था और पूरा परिचय भी. मेरी आंखों ने मुझे यहां भी धोखा दिया. उन्होंने 'सुरैया' के वेश में 'प्रतिमा' को पहचान लिया. मेरे हाथों से एक और जिंदगी रेत की तरह फिसल गयी. एक बार मैंने फिर मरना चाहा. चाहा कि सब बच्चों को लेकर नदी में कूद जाऊं पर हुआ यह कि मैं क्रोध से भभक उठी और मैंने अनवर को बुरी तरह पीट दिया. वह बिलबिलाता रहा और सुबकियों के बीच कहता रहा, "अम्मी! मैंने उन्हें कुछ नहीं बताया था. कुछ भी नहीं. . .सच अम्मी. . .!"

उस रात उस मासूम बच्चे को छाती में समेटकर मैं कितना रोयी, कोई ले सकेगा थाह मेरे उन जलते आंसुओं की. . .

प्यारे दोस्त! प्रतिमा से सुरैया तक की यह यात्रा नारी होने की त्रासदी की यात्रा है. नर-नारी के संबंधों में नारी के हिस्से में त्रासदी ही तो आती है, जो बार-बार उसे उसकी अपनी धुरी से उखाड़ फेंकती है.

कहानी का अंतिम पर्व आ पहुंचा है. एक दिन पाया कि मैं इस नारी निकेतन में हूं. अर्धमृत, अधेड़, चिथड़ों में लिपटी एक लाश. कितने जीवन जी चुकी थी मैं. शायद अब यह अंत था, ऐसा अंत जो 'अनंत' है. मैं फिर प्रतिमा बन गयी थी. पत्थर की प्रतिमा, जिसका एक-एक अंग तोड़ दिया गया है. जिसकी आत्मा में हजार छेद हैं, जो इस देश की भाषा में पापिष्टा, दुराचारिणी और कलंकिनी है. और उसका सबूत हैं ये मासूम बच्चे, जिनको मैंने अपने शरीर को टुकड़ों में बांट-बांटकर जनमा है और जिन्हें इस आश्रम में फिर नये नाम दिये गये हैं. वे अब अनवर, अशरफ, असगर, अहमद और अली नहीं हैं. अनिल, अशोक, असित, अमित और अजित हैं. शायद इसीलिए अब और अधिक तिरस्कृत अपमानित, लांछित तथा घृणा के पात्र बन गये हैं!

संचालिका ने एक दिन मुझसे कहा, "तुम्हारे ससुरालवालों को सूचना दे दी गयी है, लेकिन कोई आयेगा इसकी संभावना दिखायी नहीं देती. तुम्हारी खोज उनके कहने पर नहीं बल्कि, तुम्हारे पिता के कहने पर की है हमने."

मैंने तड़पकर जवाब दिया, "कौन आता है, कौन नहीं, इसकी मुझे चिंता नहीं है, लेकिन यह जानने का अधिकार मुझे है कि आखिर हमें इधर क्यों लाया गया? क्या आवश्यकता थी हमें अपमानित करने की?"

संचालिका मुस्करायी. बोली, "देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न था वह."

आप सर्जक हैं, क्या मैं आपसे पूछ सकती हूं कि मनुष्य का अपमान करके कोई देश अपनी प्रतिष्ठा कैसे रख सकता है. उधर मैं जैसी भी थी घृणा की पात्र नहीं थी. मां को भगवान के समकक्ष माननेवालों के देश में नारी का अपमान क्या प्रमाणित करता है, क्या यह भी बताना होगा आपको?

संचालिका ने ठीक कहा था. कोई नहीं आया मेरी ससुराल से. आये बस मेरे पिता, लेकिन मिलने का साहस वे भी नहीं बटोर सके. मेरी कहानी सुन चुके थे. अपनी पापिष्टा बेटी से आंखें कैसे मिलाते. संचालिका ने बताया कि वे दूर से ही देखते रहे, रोते रहे. फिर वहीं से लौट गये. बाद में उन्होंने एक हजार रुपया मेरे लिये भेजा था कि मैं किसी गांव में जाकर रह सकूं और अपने पैरों पर खड़ी हो सकूं. आवश्यकता पड़ने पर और भी भेजते रहने का आश्वासन दिया था. लेकिन वह नहीं चाहते थे कि मेरी मां मेरे बारे में कुछ जाने.

सुनकर मैं हंस पड़ी थी. अब मुझे रोना नहीं आता था. पंडित लोग इसे योग की स्थिति बताते हैं. सिद्धावस्था यही नहीं है क्या. . .शास्त्र तो, मैंने सुना था, यह भी कहते हैं कि आदमी कुछ नहीं करता. प्रकृति उसे अपने काम में जोत देती है. यानी हम यंत्र हैं किसी निश्चय करनेवाली शक्ति के. तब वे लोग मुझसे नफरत क्यों करते हैं, क्यों मेरे दोस्त. . .?

लेकिन अभी रहने दीजिए इस प्रश्नाकुलता को. अभी तो कहानी का चरम उत्कर्ष आना शेष है. और शेष है मुझे अभी और कटुता का विष पीना. हर दूसरे-तीसरे दिन मैं अनुभव करती थी कि कोई चुपचाप मुझे और मेरे बच्चों को देख रहा है. चुपचाप संचालिका से बातें कर रहा है. एक दिन संचालिका ने मुझसे पूछा, "तुम यहां से कहीं जाना चाहती हो?"

मैंने एक क्षण उनकी ओर देखा, फिर यंत्रवत बोली, "हां."

उन्होंने कहा, "मैंने तुम्हारे लिए दूर एक पहाड़ी गांव में रहने का प्रबंध कर दिया है. वहां के स्कूल में तुम पढ़ा सकोगी. गृहशिल्प में तुम निपुण हो. गांव की महिलाओं को प्रशिक्षित कर सकती हो. लेकिन तुम अपने इन सब बच्चों को कैसे पालोगी. क्या यह अच्छा नहीं होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम बच गये बेटा

□ अचला

नवंबर अभी शुरू ही हुआ है. मौसम की तबदीली के कारण दिन बहुत जल्द ढलने लगे हैं. रात का अंधेरा शायद सारा दिन बड़ी बेचैनी से शाम के फैलने का इंतजार करता रहता है. दिन में भी सूरज की धूप का रंग फीका पड़ गया है. मैं बसस्टेंड पर आकर खड़ी हुई, तभी कुछ चेहरों ने एक थ्रीव्हीलर स्कूटर को रुकने का इशारा किया. दोनों तरफ के चेहरों ने एक-दूसरे को अजीब नजरों से देखा और एक छोटा-सा सफर, जिसका अंत निश्चित था, एक साथ चलने से इंकार कर दिया. स्कूटर मालिक सिख धर्म का था. तभी कुछ और चेहरों ने उस स्कूटर को इशारा किया और फिर अपना इरादा बदल लिया.

मैं बड़ी देर से किसी सवारी की तलाश में थी, सो मुझे मन मांगी मुराद मिल गयी. मेरे स्कूटर में बैठने और उसके चल देने तक के क्षणों में न जाने कितनी जोड़ी आंखों ने मेरी सलामती की दुआ मांगी होगी.

स्कूटर में बैठते ही मैंने पीछे से उस सिख बुजुर्ग को आंका. ब्राउन मटमैली पेंट और साथ ही गंदी सफेद कमीज पहने वह बुजुर्ग काफी बीबा (शरीफ) लग रहा था. उसका बेतरतीब फैला पेट बड़ी मुश्किल से उसकी कमीज के बटनों तले दबा था. सफेद दाढ़ी और सिर पर घुटी हुई पगड़ी पहने, वह हर तरफ से बेचारगी की चादर लपेटे था.

अचानक उन लोगों का हुजूम मेरी आंखों के सामने तैर गया, जो मेरे घर के सामने खड़े ट्रक पर पत्थर बरसा रहा था. घर की चारदीवारी के भीतर खड़ी मैं न जाने किसकी सलामती की दुआएं मांग रही थी. ऐसा लग रहा था जैसे हर पत्थर मेरे शरीर का कोना-कोना जख्मी कर देना चाहता है. पता नहीं, वह भीड़ और क्या-क्या चाहती थी. चारों तरफ भीड़ ही भीड़ थी और थे जलते हुए घर, दूकानें और रूहें. कैसी दहशत देखी थी उस दिन भीड़ के चेहरे पर!

घर के पास पहुंचकर मैंने स्कूटर को एक तरफ रुकने का इशारा किया. अचानक मेरे मुंह से निकला, "सरदारजी, आप किधर रहते हैं. आपका कुछ नुकसान तो नहीं हुआ?" हम दोनों को इस आवाज पर आश्चर्य हुआ. फिर वह बड़ी मुश्किल से हलका-सा मुस्कराया, जैसे बड़े दिनों बाद उसको यह क्षण नसीब हुआ हो. बिना मेरी ओर देखे, कहने लगा, "नहीं बेटा, हम बच गये. आसपास के लोग निकल आये थे, इसलिए ज्यादा नुकसान नहीं हुआ." यकायक लगा कि हम अपने आकार से बहुत छोटे हो गये हैं. □

कि इनमें से कुछ को भले घरों में गोद दे दिया जाये. . . ?"

उस दिन पहली बार मेरे भीतर सोयी नागिन जाग उठी. आवेग इतना प्रबल था कि शब्द मुंह से नहीं निकल रहे थे. चाहा कि धक्का देकर उन्हें दीवार से दे मारूं. . . . . .

संचालिका, जो सचमुच मेरे प्रति अतिरिक्त सदय हो उठी थी, मेरा यह रूप देखकर घबरा गयी, तुरंत बोली, "नहीं-नहीं, यह जरूरी नहीं है. जल्दी भी नहीं है. मेरे मन में एक विचार उठा था, कह दिया. सोच देखना तुम."

और वे तुरंत मेरे सामने से हट गयी. दो क्षण बाद आवेग कुछ शांत हुआ तो मैं स्वयं अपने पर चकित थी और किंचित लज्जित भी. मैं जानती थी, मैं जीवनभर किसी पर आश्रित नहीं रह सकती. कुछ न कुछ प्रबंध मुझे करना ही होगा. गांव जाने को मैं इसलिए तैयार थी कि मैं अपने तथाकथित परिजनों से अब और अपमानित नहीं होना चाहती थी. पिताजी का दान लेना स्वयं अपना अपमान करना था. दुर्बलता के किन्हीं क्षणों में चाहा था कि उन्हें पत्र लिखूं. याद करूं लाड़-प्यार के उन दुर्लभ क्षणों की. फिर सोचा कि जो संस्कारों की जड़ता को तोड़कर मेरी वेदना में सहभागी नहीं हो सकता उसको पीड़ा पहुंचाना आत्मपीड़न ही नहीं होगा क्या? . . गांव चली जाऊंगी और अपनी संतान को पालूंगी मैं स्वयं.

प्यारे दोस्त ; मैंने आपको बताया न, जो पाप और पीड़ा की राह आया और जिसकी हत्या करनी चाही मैंने, वही अनवर यानी अनिल मुझे सबसे अधिक प्यार करता है. मेरी सारी घृणा पी गया है वह नील-कंठ महादेव की तरह. ऐसे बर्ताव करता है जैसे वही मेरा गार्जियन है. पूछता है कभी-कभी, "अम्मी ! मैं अब अनिल कैसे हो गया ? अनवर और अनिल में क्या फर्क है ? अम्मी ! ये सब हमें ऐसे क्यों देखते हैं ?"

आयु के आठवें वर्ष में ही विधाता ने कितना बोझ रख दिया इसके कंधों पर. इसके विपरीत नूर का बेटा अशरफ जो अब अशोक है, बेहद उद्दंड है. हर समय हर किसी से फौजदारी करने पर तुला रहता है, लेकिन पढ़ने में बहुत होशियार है. असगर उर्फ असित सचमुच शायर का बेटा है. छह वर्ष का हुआ नहीं अभी पर, न जाने कहां खोया रहता है. कभी-कभी उनींदी आंखों से मुझे ऐसे देखता है कि मेरे दिल में फारुखी की याद कसक उठती है !

कितनी यादें, कितने मंजर, किसको भूलूं, किसको याद करूं. मुजफ्फर शायद मुझे अब भी ढूंढता फिरता होगा. कहीं अपने बच्चों का दावा करने न आ पहुंचे वह. उसके दोनों बच्चे अहमद और अली जो अब अमित और अजित के नाम से पुकारे जाते हैं अपने पिता के बारे में कुछ नहीं जानते. कभी-कभी पूछते हैं, सभी पूछते रहे हैं और मैं झूठ बोलती रही हूं. किसी को कभी मैंने सच नहीं बताया. सच कुछ होता है क्या? किसी के सच को नापने का यंत्र अभी कोई वैज्ञानिक नहीं बना पाया है.

स्कूल के रजिस्टर में मां का नाम कभी नहीं लिखा जा सकता. बाप; अनिल, अशोक, असित, अमित और अजित का कोई है नहीं. है तो अशरफ, असगर, अहमद और अली के हैं. अनवर के बाप को तो कोई जान ही नहीं सकेगा. कैसा अच्छा था उपनिषद काल का भारत. उस काल के परमतत्ववेत्ता सत्यकाम की दासी मां जाबाला में यह कहने का साहस था, 'मैं नहीं जानती तुम्हारे पिता कौन थे. तुम मेरे बेटे हो. मेरा ही नाम लिखा दो गुरू के रजिस्टर में.'

और तब सत्यकाम का नाम हुआ—सत्यकाम जाबाल. क्या आज मेरे बेटों को वह अधिकार मिल सकता है. क्या वे गर्व से सिर उठाकर कह सकेंगे कभी, 'हमें नहीं पता हमारा पिता कौन था. हम मां को जानते हैं और उनका नाम है प्रतिमा. वही लिख लीजिए अपने रजिस्टर में.'

मातृत्व को नारी का चरम सौंदर्य माना है. वह मुझे मुक्तकंठ से मिला है. किस ओर से मिला यह प्रश्न गौण है. . . . . इसे एक और दृष्टि से भी देखिए, आर्य परंपरा में मां का पद सर्वोच्च है इसीलिए तो उसे जहर भी सबसे अधिक पीना पड़ता है, नारी होने के अपमान का जहर. मुझे कहने दो मेरे दोस्त ! जिसे सबसे अधिक अपमानित करना होता है उसे ही सबसे सुंदर विशेषण दिये जाते हैं. बलि के बकरे को हृष्ट-पुष्ट न करेंगे तो कौन खरीदेगा उसे. आपने नर-नारी के संबंधों के सौंदर्य में इस तथ्य की चर्चा नहीं की है. पुरुष है न अंततः . . .

आप सोचेंगे मैं इतनी क्रूर क्यों हो उठी हूं!

उस दिन तभी वर्षा होकर चुकी थी. वातावरण एक सौंधी-सौंधी गंध से महक रहा था. मैं अपने कमरे की खिड़की खोलने का लोभ संवरण न कर सकी. यह वही खिड़की है जिसकी सलाखों पर अपना भीगा चेहरा टिकाकर मैंने आपको देखा था.

उस दिन देखा एक किशोर होते बालक को; स्वस्थ्य, सुंदर, स्कूल की शुभ्र श्वेत पोशाक, पीठ पर बस्ता, धीरे-धीरे चौकन्ना-सा वह आश्रम के मुख्य द्वार तक आया और वहीं से उचक-उचककर मेरी खिड़की की

CC-0. In Public D

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri.

स्याह हाशिया

□ मंटो

चलती गाड़ी रोक ली गयी. जो दूसरे मजहब के थे उनको निकाल-निकालकर तलवारों और गोलियों से हलाक कर दिया गया. उनसे फारिग होकर गाड़ी के बाकी मुसाफिरों की हलवे, दूध और फलों से खातिर की गयी. गाड़ी चलने से पहले खातिर करनेवालों के प्रबंधक ने मुसाफिरों को मुखातिब करके कहा, "भाइयो और बहनो! हमें गाड़ी के आने की खबर बहुत देर से मिली. यही वजह है कि हम जिस तरह चाहते थे, उस तरह आप की खिदमत न कर सके." □

● अनुवाद : सुरजीत

ओर देखने लगा. मैं चौंकी,मेरा कौतुहल जाग आया. मैंने सलाखों पर चेहरा टिकाकर उसे गौर से देखा. वह भी तब टकटकी बांधे इधर ही देख रहा था. हमारी दृष्टि मिली, उसने जैसे प्रेत देखा हो, तेजी से मुड़ा और तावड़-तोड़ भागने लगा. एक बार भी मुड़कर नहीं देखा उसने.

हतप्रभ-स्तब्ध एक क्षण तो समझ न पायी. फिर तो एक ठंडी सिहरन मेरे रेशे-रेशे में उतरती चली गयी, "कहीं . . . . . कहीं. . . . !"

"नहीं. . . . . नहीं. . . ." मैं तेजी से मुड़ी. अनिल सामने आ गया. मेरी ओर देखा उसने. चेहरे पर प्रश्न उभरा, "क्या है मम्मी ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं बेटे." मैंने अपने को सहेज लिया, पर भीतर...

"एक बात बताऊं मम्मी ?"

क्या बात ?" मैं फिर सिहरी.

मैं बताना भूल गया था," अपराधी की तरह उसने कहा, "कई दिन से एक लड़का यहां आता है."

"यहां तो बहुत लोग आते हैं. लड़के भी होते हैं उनमें. तुम किस लड़के की बात कर रहे हो ?"

"वही जो अभी आया था."

"वही." मैं सिहरती-सिहरती फुसफुसाई, "वही. . . . . ."

अनिल कहता रहा, "वह बहुत अच्छा है. उसने मुझे चाकलेट दी थी. उसने पूछा था, "यहां कोई प्रतिमा है ?"

"मैंने एकदम कहा, "हां, अब मेरी अम्मी का यही नाम है."

"उसने पूछा—अब यह नाम है. पहले नहीं था."

"मैंने कहा, पहले तो उनका नाम सुरैया बेगम था. जैसे मेरा नाम अनवर था. अब मैं अनिल हूं."

"वह बोला, "तब वह कोई और है, लेकिन क्या तुम मुझे उन्हें दिखा सकते हो."

मैंने कहा, "हां-हां, उस खिड़कीवाले कमरे में रहते हैं हम. आओ मेरे साथ."

"नहीं-नहीं, फिर आऊंगा. . .कहता हुआ वह भाग गया था. वही आज फिर आया था. . ."

न जाने वह कौन-सी 'मैं' थी जो यह सब सुन रही थी और न जाने वह भी कौन-सी 'मैं' थी जिसने पूछा था, "उसका नाम जानते हो ?"

"हां-हां, आशिम है उसका नाम."

दोनों हाथों से दीवार न थाम लेती तो निश्चय ही गिरकर बेहोश हो गयी होती. पसीने से तर हो आयी थी. अनिल ने सहज भाव से पूछा, "तुम उसे जानती हो अम्मी ?"

मैंने तीव्रता से प्रतिवाद किया मानो चीख उठी हूं, "नहीं-नहीं, मैं किसी को नहीं जानती यहां."

अनिल ने अब मेरी ओर देखा. मेरे श्वेत हो आये चेहरे को देखकर घबरा गया वह, बोला, "तुम्हारी तबियत खराब है अम्मी, तुम लेट जाओ."

बेचारा अनिल ! क्या बताऊं उसे. अपने को बटोरकर इतना ही कहा, "नहीं बेटे ! तबियत मेरी ठीक है, लेकिन तुम अब उससे बात मत करना. हमें अजनबियों से दोस्ती नहीं. . "

मैं अपना वाक्य पूरा नहीं ही कर पायी. उसने दीर्घ निश्वास खींचकर कहा, "अच्छा."

उसका यह 'अच्छा' शब्द सुनकर मुझे आपकी याद आ गयी. आपने भी तो उस दिन इसी तरह कहा था, 'अच्छा.' पर कहां आप, कहां यह बच्चा. मैं पागल हो उठी उसके मुंह से यह शब्द सुनकर. चाहा कि दोनों हाथों से उसका गला घोटती रहूं, घोटती रहूं. . . . लेकिन हुआ यह कि मैंने खींचकर उसे अपनी छाती में भर लिया और अपने को और रोकने में असमर्थ फूट-फूटकर रोने लगी.

जानते हो, दो क्षण बाद मुझे क्या लगा था. लगा था वह अनिल नहीं है, आशिम है और मैं ताबड़-तोड़ उसका मुंह चूम रही हूं. . . . .

कई दिन तक मैं सींखचों पर मुंह टिकाये उसी दिशा में टकटकी बांधे देखती रही पर वह फिर नहीं आया. आया एक सपना. . .

. . .भटकते-भटकते किसी शानदार बंगले में पहुंच गयी हूं. कैसी एय्याशी. . .कैसी प्रचुरता! पर यह चीख कैसी है, किसी बच्चे की मांतक चीख. . . भागी-भागी मैं अंदर जाती हूं, देखती हूं कि एक क्रूर युवक एक आठ-नौ वर्ष के बच्चे को बेंतों से पीट रहा है, "कम्बख्त, अगर अब कभी उधर पैर भी रखा तो जमीन में गाड़ दूंगा."

बच्चा चीखता है, "नहीं-नहीं, मैं नहीं जाऊंगा. मुझे मारो मत. . . मुझे मारो मत."

पहचान लेती हूं, वह क्रूर युवक मेरा देवर है. उसके पीछे खड़ी है मेरी सास. मैं तड़पकर आगे बढ़ती हूं और युवक के हाथ से बेंत छीन लेती हूं, "उस मासूम को क्यों मारते हो. अपराधी मैं हूं, मुझे मारो!"

वे सकपकाकर मेरी ओर देखते हैं, पहचान लेते हैं. दूसरे ही क्षण आशिम भागता हुआ मुझसे आ चिपकता है, और मेरी बाहों में बेहोश हो जाता है. . .

मेरी सास चीख रही है, "निर्लज्ज कलंकनी, तुझसे मरा नहीं गया. तेरी लाश पाकर हम कितने गौरवान्वित होते!"

तभी नींद खुल जाती है. अंधेरे में बार-बार आंखें फाड़े देखती रहती हूं. सोचती रहती हूं, 'क्यों, क्यों, आदमी अपने से ही छल करता है, अपने ही मैं से अजनबी हो जाता है. . .जो नितांत मेरा अपना है, जो प्यार का प्रतिरूप है, उसी से वंचित हूं मैं. कारण कुछ भी रहा हो, कुंती कर्ण के पास जा सकी थी पर मैं. . .

उसी दिन संचालिका के पास गयी मैं. बोली, "आप मुझे दूर किसी पहाड़ी गांव में भेज रही हैं न. मैं तैयार हूं आज ही जाने को. पर मेरे बच्चों को मुझसे अलग मत कीजिए. मैं उनका अपमान नहीं होने दूंगी."

मेरे दोस्त! मैं अगले हफ्ते जा रही हूं एक और जीवन जीने के लिए. न जाने क्यों आपको देखने की चाह उभर आयी है मन में. क्यों लगने लगे हैं आप अपने. इसी अपनेपन के कारण ही आपको दोस्त कहकर संबोधित किया है मैंने. मन दोस्त के सामने ही खोला जा सकता है. कैसा है यह अनोखा रिश्ता. . .सपनों में जुड़ा और आंख खुली तो हाथ लगा एक विराट शून्य . . .फिर भी भरोसा मुझे है और वह मेरे अंदर से आया है बिना किसी के दखल के. जिस घोर यंत्रणा और संत्रास के दौर से मैं गुजरी हूं उसने मुझे यही संपदा तो बख्शी है. यह मेरे अंदर की गहराइयों में समा गयी है. इसे भौतिक नेत्रों से नहीं देखा जा सकता.

अच्छा! बाहर वर्षा होने लगी है, होनी चाहिए. चाहिए न ठूंठ में नयी कोपलें फोड़ने के लिए. . .

आपकी, प्रतिमा उर्फ आयशा उर्फ सुरैया उर्फ प्रतिमा. . . □

● 818, कुंडेवालान, अजमेरीगेट, दिल्ली-110006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिये शाहनी जब दरिया के किनारे पहुंची तो पौ फट रही थी. आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी. शाहनी ने कपड़े उतारकर एक ओर रखे और 'श्री राम, श्री राम' करती पानी में हो ली. अंजलि भरकर सूर्य देवता को नमस्कार किया, अपनी उनींदी आंखों पर छींटे दिये और पानी से लिपट गयी.

चनाब का पानी आज भी पहले-सा सर्द था, लहरें लहरों को चूम रही थीं. दूर सामने कश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ पिघल रही थी. उछल-उछल आते पानी के भंवरों से टकराकर कगार गिर रहे थे लेकिन दूर-दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी. शाहनी ने कपड़े पहने, इधर-उधर देखा, कहीं किसी की परछाईं तक न थी. पर नीचे रेत में अगणित पांवों के निशान थे. वह कुछ सहम-सी उठी!

आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है. वह पिछले पचास वर्षों से यहां नहाती आ रही है. कितना लंबा अरसा है! शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुल्हन बनकर उतरी थी. और आज. . . . . .

सिक्का बदल गया

कृष्णा सोबती

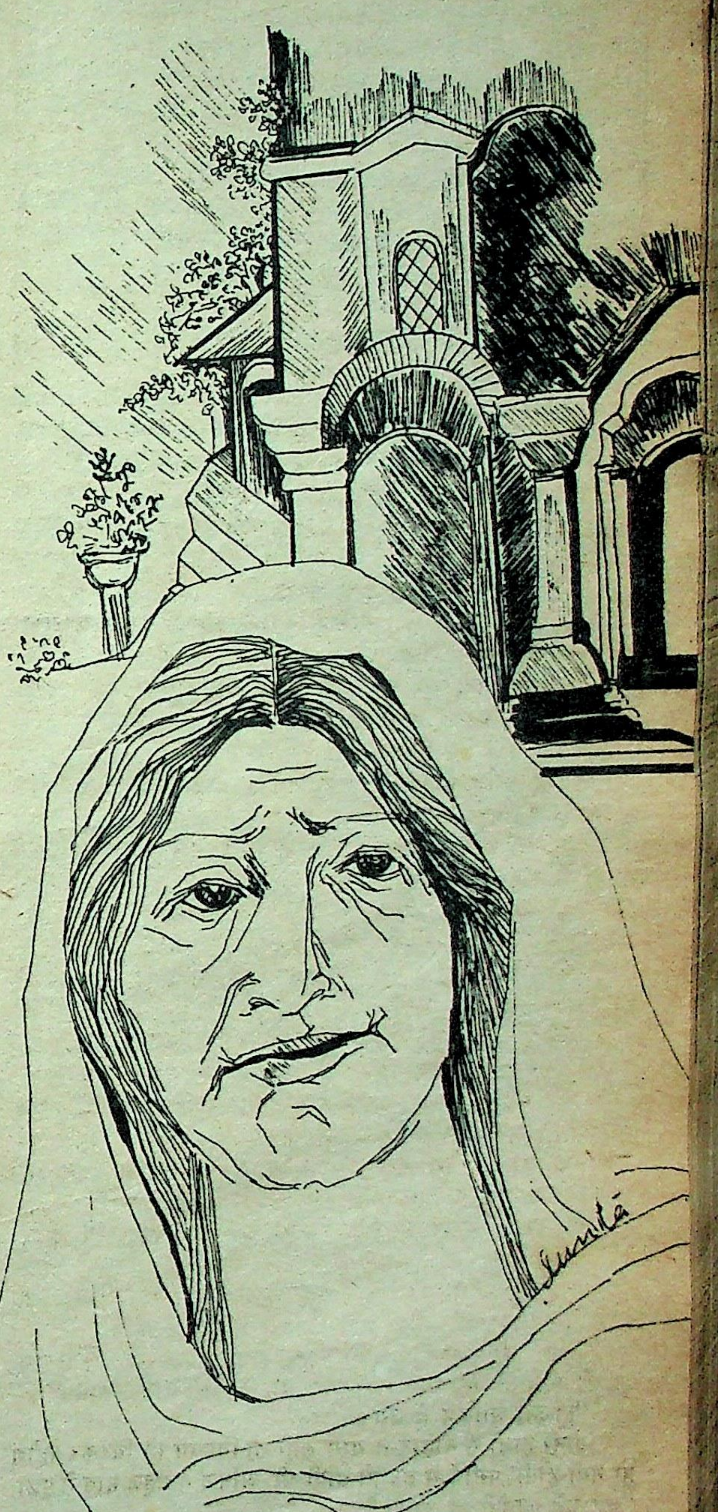

शेरे ने बढ़कर शाहनी के पांव छुए, "शाहनी, कोई कुछ नहीं कर सका. राज भी पलट गया." शाहनी ने कांपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रखा और रुक-रुककर कहा, "ओ चांद, तेरे भाग्य जागें !"—पढ़िए बंटवारे की राजनीति और जन-समूह की संवेदना को उकेरती—यारों के यार, मित्रो मर जानी, सूरजमुखी अंधेरे के, जिंदगीनामा जैसी कृतियों की विशिष्ट कथाकार की मार्मिक कहानी. . .

आज शाहजी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाहजी की लंबी-चौड़ी हवेली में अकेली है. पर नहीं. . .यह क्या सोच रही है वह सवेरे-सवेरे. अब भी दुनियादारी से मन नहीं फिरा उसका. शाहनी ने लंबी सांस ली और 'श्रीराम, श्रीराम' करती बाजरे के खेतों से होती घर की राह ली. कहीं-कहीं लिपे-पुते आंगनों पर से धुआं उठ रहा था. टन-टन—बैलों की घंटियां बज उठती हैं. फिर भी. . . फिर भी कुछ बंधा-बंधा-सा लग रहा है. शाहनी ने नजर उठायी. यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं. भरी-भरायी नयी फसल को देखकर शाहनी किसी अचानक के मोह में भीग गयी. यह सब शाहनी की बरकतें हैं. दूर-दूर गांवों तक फैली हुई जमीनें, जमीनों में कुएं—सब अपने हैं. साल में तीन फसल, जमीन तो सोना उगलती है. शाहनी कुएं की ओर बढ़ी, आवाज दी, "शेरे, शेरे, हसैना, हसैना. . ."

शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है. वह न पहचानेगा! अपनी मां जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ. उसने पास पड़ा गंडासा 'शटाले' के ढेर के नीचे सरका दिया. हाथ में हुक्का पकड़कर बोला, "ऐहे—सैना—सैना. . . ." शाहनी की आवाज उसे कैसे

CC-0. In Public Do

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिल गयी है. अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी की ऊंची हवेली की अंधेरी कोठरी में पड़ी सोने चांदी की संदूकचियां उठाकर . . . . कि तभी 'शेरे शेरे . . . .' शेरा गुस्से से भर गया. किस पर निकाले अपना क्रोध? शाहनी पर चीखकर बोला, "ऐ मर गयीं एं—रब्ब तैनूं मौत दे. . . ."

हसैना आटेवाली कनाली एक ओर रख, जल्दी-जल्दी बाहर निकल आयी, "ऐ आयी आं . . . क्यों छावेले (सुबह-सुबह) तड़पना एं?"

अब तक शाहनी नजदीक पहुंच चुकी थी. शेरे की तेजी सुन चुकी थी. प्यार से बोली, "हसैना, यह वक्त लड़ने का है? वह पागल है तो तू ही जिगरा कर लिया कर."

"जिगरा!" हसैना ने मानभरे स्वर में कहा, "शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है. कभी शेरे से भी पूछा है कि मुंह-अंधेरे क्यों गालियां बरसायी हैं इसने?" शाहनी ने लाड़ से हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हंसकर बोली, "पगली, मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है! शेरे. . ."

"हां शाहनी!"

"मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहां?" शाहनी ने गंभीर स्वर में कहा.

शेरे ने जरा रुककर घबराकर कहा, "नहीं. . . . शाहनी!" शेरे के उत्तर को अनसुनी कर शाहनी जरा चिंतित स्वर से बोली, "जो कुछ भी हो रहा है, अच्छा नहीं. शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते. पर. . . . ." शाहनी कहते-कहते रुक गयी. आज क्या हो रहा है. शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है . . शाहजी को बिछड़े कई साल बीत गये, पर. . .पर आज कुछ पिघल रहा है. . शायद पिछली स्मृतियां. . . . . आंसुओं को रोकने के प्रयत्न में उसने हसैना की ओर देखा. और हल्के-से हंस पड़ी. और शेरा सोच ही रहा है, क्या कह रही है शाहनी आज! आज शाहजी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता. यह हो के रहेगा—क्यों ना हो? हमारे ही भाई-बंदों से सूद ले-लेकर शाहजी सोने की बोरियां तोला करते थे. प्रतिहिंसा की आग शेरे की आंखों में उतर आयी. गंडासे की याद हो आयी. शाहनी की ओर देखा—नहीं नहीं, शेरा इन पिछले दिनों में तीस-चालीस कत्ल कर चुका है पर. . .पर वह ऐसा नाशुक्रा नहीं. . . . . सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आंखों में तैर गये. वह सर्दियों की रातें—कभी-कभी शाहजी की डांट खा के वह हवेली में पड़ा रहता था और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहनी के ममता-भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए— 'शेरे-शेरे उठ, पी ले.' शेरे ने शाहनी के झुर्रियां पड़े मुंह की ओर देखा तो शाहनी धीरे-धीरे से मुस्करा रही थी. शेरा विचलित हो गया. आखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा? शाहजी की बात शाहजी के साथ गयी, वह शाहनी को जरूर बचायेगा, लेकिन कल रात वाला मशवरा वह कैसे मान गया था. फिरोज की बात, "सब कुछ ठीक हो जायेगा. . सामान बांट लिया जायेगा."

"शाहनी, चलो तुम्हें घर तक छोड़ आऊं."

शाहनी उठ खड़ी हुई. किसी गहरी सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे-पीछे मजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है. शंकित-सा इधर-उधर देखता जा रहा है. अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूंज रही हैं. पर क्या होगा शाहनी को मारकर?

"शाहनी !"

"हां शेरे !"

शेरा चाहता है कि सिर पर आनेवाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे ?

"शाहनी. . . ."

शाहनी ने सिर ऊंचा किया. आसमान धुएं से भर गया था. "शेरे. . . . ."

शेरा जानता है यह आग है. जबलपुर में आज आग लगनी थी, लग गयी. शाहनी कुछ न कह सकी. उसके नाते-रिश्ते सब वहीं हैं.

हवेली आ गयी. शाहनी ने शून्य मन से ड्योढ़ी में कदम रखा. शेरा कब लौट गया उसे कुछ पता नहीं. दुर्बल-सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी. दुपहर आयी और चली गयी. हवेली खुली पड़ी है. आज शाहनी नहीं उठ पा रही है. जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है. शाहजी के घर की मालकिन. . . लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा है मानो पत्थर हो गयी हो. पड़े-पड़े शाम हो गयी; पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही. अचानक रसूली की आवाज सुनकर चौंक उठी.

"शाहनी-शाहनी, सुनो ट्रकें आती हैं लेने?"

"ट्रकें. . . . . . ?" शाहनी इसके सिवाय और कुछ न कह सकी. हाथों ने एक-दूसरे को थाम लिया. बात की बात में खबर गांव भर में फैल गयी. बीबी ने अपने विकृत कंठ से कहा, "शाहनी, आज तक कभी ऐसा

लघुकथा

मशाल और मशाल

■ बलराम

वह वैज्ञानिक था, प्रसिद्ध वैज्ञानिक. वे सब उसका आमंत्रण पाकर सहर्ष पधारे थे—धार्मिक, वादी और सांप्रदायी. उसने मंच पर आकर उनसे प्रश्न किया, "आपके अभिप्रेत मशाल बनकर रोशनी कर रहे हैं न?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं!"

"फिर भी इतना अंधकार क्यों?" वैज्ञानिक के इस प्रश्न से वे सब मौन हो एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे. अपने पीछे आने का संकेत कर वह चल पड़ा और उन सबको ले जाकर एक विशाल मंदिर के प्रांगण में खड़ा कर दिया. स्विच ऑन किया तो गेट के ऊपर लगी नियॉन लाइट चमक उठी—'दुनिया एक मंदिर है.' सब ने इसे पढ़ लिया तो वह उन्हें मंदिर के अंदर ले गया. मंदिर के अंतःशिखर पर लगा सूर्याकार बल्ब जल रहा था. उसे घेरते हुए बल्ब-कलर में चमकते अक्षरों की तरफ उसने इशारा किया—"रो. . .श. . .नी. . ."

उन लोगों ने उसे पढ़ लिया तो बाहर बैठे कुछ मुसाफिरों को उसने बुलाया और उनके हाथ में जलती हुई मशालें थमा दीं. उसके बाद उसने पूछना शुरू किया, "मशालों से क्या निकल रहा है?"

"धुंआ!"

"शिखर पर लिखे अक्षरों को पढ़ो."

"रो. . .रो. . .रो. . ."

"आगे पढ़ो."

"रो. . .रो. . .रो. . .श. . ."

"पूरा पढ़ो. . ."

"धुएं के कारण आंखों का खुला रहना अब मुश्किल है."

"अब आप लोग जा सकते हैं." कहकर वैज्ञानिक ने मुसाफिरों को विदा कर दिया, लेकिन उन लोगों को ले जाकर लॉन में हरी-हरी घास पर बिठा दिया और कहा, "वे साधारणजन थे, मामूली लोग, जो मशालों के धुएं के कारण रोशनी को पढ़ तक नहीं पा रहे थे. कुछ प्रयास करते हैं तो 'रो-रो' तक पढ़ पाते हैं और जिंदगी भर रोते रहते हैं. कुछ लोग उनसे आगे बढ़कर 'रोश-रोश' तक पढ़ते हैं और रोष करने लगते हैं. अपने से भिन्न विचारों के लोगों के खून के प्यासे हो जाते हैं, जिसका परिणाम होते हैं दंगे और दंगे, खून और खून, लेकिन किसलिए?"

"किसलिए?" सभी ने चौंककर बौड़मों की तरह वैज्ञानिक से वही प्रश्न दोहरा दिया.

"यह तो आप लोगों को सोचना चाहिए." वैज्ञानिक ने कहा और उठकर वहां से चला गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हुआ, न कभी सुना. गजब हो गया, अंधेर पड़ गया."

शाहनी मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही. नवाब बीबी ने स्नेहसनी उदासी से कहा, "शाहनी, हमने कभी न सोचा था."

शाहनी क्या कहे कि उसी ने ऐसा कब सोचा था? नीचे से पटवारी बेगू और जैलदार की बातचीत सुनायी दी. शाहनी समझी कि वक्त आ पहुंचा. मशीन की तरह नीचे उतरी, पर ड्योढ़ी न लांघ सकी. किसी गहरी, बहुत गहरी आवाज से पूछा, "कौन?... कौन है वहां?"

कौन नहीं है आज वहां? सारा गांव है, जो उसके इशारे पर नाचता था कभी. उसकी असामियां हैं जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तों से कभी कम नहीं समझा. लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है? यह भीड़ की भीड़, उनमें कुल्लूवाल के जाट. वह क्या सुबह ही न समझ गयी थी?

बेगू पटवारी और मसीत के मुल्ला इस्माइल ने जाने क्या सोचा? शाहनी के निकट आ खड़े हुए. बेगू आज शाहनी की ओर देख नहीं पा रहा. धीरे-से जरा गला साफ करते हुए कहा, "शाहनी, रब्ब नु एही मंजूर सी."

शाहनी के कदम डोल गये. चक्कर आया और दीवार के साथ लग गयी. इसी दिन के लिए छोड़ गये थे शाहजी उसे? बेजान-सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है, 'क्या गुजर रही है शाहनी पर! मगर क्या हो सकता है सिक्का बदल गया है.... '

शाहनी का घर से निकलना छोटी-सी बात नहीं. गांव का गांव खड़ा है, हवेली के दरवाजे से लेकर उस दारे तक, जिसे शाहजी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था. तब से लेकर आज तक सब फैसले, सब मशविरे यहीं होते रहे हैं. इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गयी थी.

यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो. वह जानकर भी अनजान बनी रही. उसने कभी बैर नहीं जाना. किसी का बुरा नहीं किया. लेकिन बूढ़ी शाहनी यह नहीं जानती कि सिक्का बदल गया है. ....

देर हो रही थी. दाऊद खां जरा अकड़कर आगे आया और ड्योढ़ी पर खड़ी निर्जीव छाया को देखकर ठिठक गया. वही शाहनी है जिसके शाहजी उसके लिए दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे.... यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मंगेतर को सोने के कर्नफूल दिये थे, मुंह दिखायी में. अभी उसी दिन जब वह 'लीग' के सिलसिले में आया था तो उसने उद्दंडता से कहा था, "शाहनी, भागोवाल मसीत बनेगी. तीन सौ रुपया देना पड़ेगा." शाहनी के अपने उसी सरल स्वभाव से तीन सौ रुपये आगे रख दिये थे. और आज.... ?

"शाहनी!" दाऊद खां ने आवाज दी. वह थानेदार है, नहीं तो उसका स्वर शायद आंखों में उतर आता.

शाहनी गुमसुम, कुछ न बोल पायी.

"शाहनी!" ड्योढ़ी के निकट जाकर बोला, "देर हो रही है शाहनी. (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो. कुछ साथ बांध लिया है? सोना-चांदी..."

शाहनी अस्फुट स्वर से बोली, "सोना-चांदी!" जरा ठहरकर सादगी से कहा, "सोना-चांदी. बच्चा, वह सब कुछ तुम लोगों के लिए है. मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है."

दाऊद खां लज्जित-सा हो गया, "शाहनी, तुम अकेली हो. अपने पास कुछ होना जरूरी है. कुछ नकदी ही रख लो. वक्त का कुछ पता नहीं."

"वक्त," शाहनी अपनी गीली आंखों से हंस पड़ी, "दाऊद खां, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिंदा रहूंगी." किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने.

दाऊद खां निरुत्तर है. साहसकर बोला, "शाहनी, कुछ नकदी जरूरी है."

"नहीं बच्चा, मुझे इस घर से ..." शाहनी का गला रुंध गया, "नकदी प्यारी नहीं. यहां की नकदी यहीं रहेगी."

शेरा पास आ खड़ा हुआ. दूर खड़े-खड़े उसने दाऊद खां को शाहनी के पास देखा तो शक गुजरा कि हो न हो कुछ मार रहा हो शाहनी से.

"खां साहब, देर हो रही है..."

शाहनी चौंक पड़ी. देर... मेरे घर में मुझे देर! आंसुओं की भंवर में न जाने कहां से विद्रोह उमड़ पड़ा. मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पले हुए... नहीं, यह सब कुछ नहीं. ठीक है... देर हो रही है. शाहनी के जैसे कानों में यही गूंज रहा है—देर हो रही है... पर नहीं, शाहनी रो-रोकर नहीं शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से. मान से लांघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन वह रानी बनकर आ खड़ी हुई थी.

अपने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर शाहनी ने दुपट्टे से आंखें पोंछीं और ड्योढ़ी से बाहर हो गयी. बड़ी बूढ़ियां रो पड़ीं. उनके दुख-सुख की साथिन आज इस घर से निकल पड़ी है. किसकी तुलना हो सकती थी इसके साथ! खुदा ने सब कुछ दिया था, मगर दिन बदले, वक्त बदले...

शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढांपकर धुंधली आंखों से हवेली को अंतिम बार देखा. उसने दोनों हाथ जोड़ लिये—यही अंतिम दर्शन था; अंतिम प्रणाम था. शाहनी ने जोर मारा...सोचा, एक बार घूम-फिरकर पूरा घर क्यों न देख आऊं मैं? जी छोटा हो रहा है, पर जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है उनके सामने वह छोटी न होगी. इतना ही ठीक है. बस हो चुका. सिर झुकाया. ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आंखों से निकलकर कुछ बूंदें चू पड़ीं. शाहनी चल दी—ऊंचा भवन पीछे खड़ा रह गया. दाऊद खां, शेरा, पटवारी, जैलदार और छोटे-बड़े बच्चे, बूढ़े मर्द, औरतें सब पीछे-पीछे.

ट्रकें अब तक भर चुकी थीं. शाहनी अपने को खींच रही थी. गांव-वालों के गलों में जैसे धुंआ उठ रहा है. शेरे, खूनी शेरे का दिल टूट रहा है. दाऊद खां ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवाजा खोला. शाहनी बढ़ी. इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज से कहा, "शाहनी, कुछ कह जाओ, तुम्हारे मुंह से निकली असीस झूठ नहीं हो सकती." और अपने साफे से आंखों का पानी पोंछ लिया. शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुंधे-रुंधे गले से कहा, "रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, खुशियां बक्खे...!"

वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया. जरा भी दिल में मैल नहीं शाहनी के. और हम...हम शाहनी को नहीं रख सके. शेरे ने बढ़कर शाहनी के पांव छुए, "शाहनी, कोई कुछ नहीं कर सका. राज भी पलट गया..." शाहनी ने कांपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रक्खा और रुक-रुककर कहा, "तैनू भाग जगण चन्ना." (ओ चांद, तेरे भाग्य जागें) दाऊद खां ने हाथ का संकेत किया. कुछ बड़ी-बूढ़ियां शाहनी के गले लगीं और ट्रक चल पड़ी.

अन्न-जल उठ गया. वह हवेली, नयी बैठक, ऊंचा चौबारा, बड़ा 'पसार' एक-एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आंखों में. कुछ पता नहीं—ट्रक चल रहा है या वह स्वयं चल रही है. आंखें बरस रही हैं, दाऊद खां विचलित होकर देख रहा है इस बूढ़ी शाहनी को. कहां जायेगी अब वह?

"शाहनी, मन में मैल न लाना. कुछ कर सकते तो उठा न रखते. वक्त ही ऐसा है. राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है..."

रात को शाहनी जब कैंप में पहुंचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा, 'राज पलट गया है... सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आयी...'

और शाहनी की आंखें और भी गीली हो गयीं.

आसपास के हरे-भरे खेतों से घिरे गांवों में रात खून बरसा रही थी.

शायद राज भी पलटा खा रहा था और... सिक्का बदल रहा था... □

● एन-8, रेबीरा फ्लैट्स, माल रोड, दिल्ली-6

CC-0. In Public D...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोबा टेक सिंह

सआदत हसन मंटो

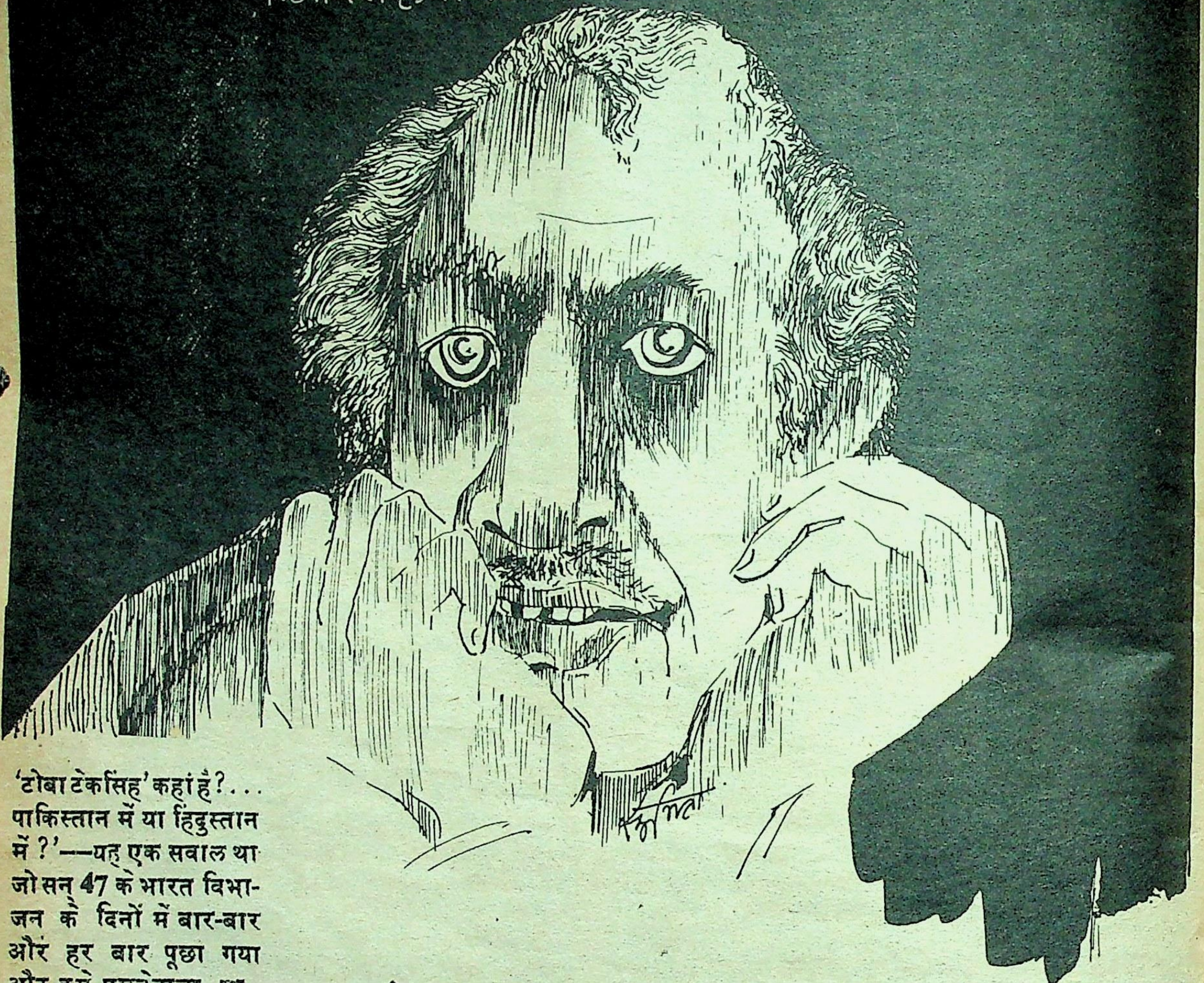

'टोबा टेकसिंह' कहां है?... पाकिस्तान में या हिंदुस्तान में?'—यह एक सवाल था जो सन् 47 के भारत विभाजन के दिनों में बार-बार और हर बार पूछा गया और इसे पूछनेवाला था—एक पागल!... बंटवारे के बाद पाकिस्तान के एक पागलखाने के पागलों पर क्या बीती, इसे कलमबद्ध करते हुए धरती और संवेदना के स्तर पर मानव समाज की शिद्दत को व्यक्त कर रहे हैं, उर्दू के विवादास्पद और सरताज कथाकार—सआदत हसन मंटो, जिन्हें अपने जीवन के अंतिम दिनों में स्वयं पागलखाने में दाखिल होना पड़ा था...

बंटवारा होने के दो-तीन साल बाद पाकिस्तान और हिंदुस्तान की सरकारों को समझ आयी कि नागरिक कैदियों की भांति पागलों का भी तबादला होना चाहिए. मतलब कि जो मुसलमान हिंदुस्तान के पागलखानों में हैं, उन्हें पाकिस्तान पहुंचाया जाये और जो हिंदू-सिख पाकिस्तान के पागलखानों में हैं, उन्हें हिंदुस्तान के हवाले कर दिया जाये.

मालूम नहीं, यह मसला जरूरी भी था या नहीं, लेकिन फैसले के मुताबिक दोनों मुल्कों में ऊंचे स्तर पर बातचीत हुई और पागलों के बंटवारे का दिन तय हो गया. छानबीन की गयी. जिन मुस्लिम पागलों के वारिस हिंदुस्तान में ही थे, उन्हें वहीं रहने दिया गया और बाकी पागलों को सरहद पार भेज दिया गया.

इधर पाकिस्तान से क्योंकि हिंदू-सिख, हिंदुस्तान जा चुके थे. इसलिए किसी को रखने का सवाल ही नहीं था. जितने भी हिंदू-सिख पागल थे, सब पुलिस की निगरानी में सरहद पर पहुंचा दिये गये. अब उधर की तो मालूम नहीं, लेकिन इस तबादले की खबर जब लाहौर के पागलखाने में पहुंची तो बड़ी दिलचस्प कारगुजारियां होने लगीं. एक मुसलमान पागल बारह साल से लगातार 'जमींदार' अखबार बिला नागा पढ़ा करता था. उसके एक दोस्त ने उससे पूछा, "क्यों मौलवी साहब, यह पाकिस्तान क्या होता है?"

वह काफी देर तक सोच-विचार करता रहा और फिर बड़े विश्वास से बोला, "पाकिस्तान, हिंदुस्तान में एक ऐसी जगह है, जहां उस्तरे बनते हैं."

यह उत्तर सुनकर उसके दोस्त को तसल्ली हो गयी. इसी तरह एक सिख पागल ने दूसरे सिख पागल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूछा, "सरदारजी, हमें हिंदुस्तान क्यों भेजा जा रहा है, हमें तो वहां की बोली ही नहीं आती."

दूसरा मुस्कराकर कहने लगा, "मुझे तो हिंदश-तोड़ों की बोली आती है—हिंदुस्तानी बड़े शैतानी, आकड़-आकड़ (अकड़-अकड़कर) फिरते हैं."

एक दिन नहाते-नहाते एक मुसलमान पागल ने 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' का नारा इतने जोर से लगाया कि वह फिसलकर फर्श पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया.

कई पागल भी ऐसे भी थे जो दरअसल, पागल नहीं थे. इनमें बहुत-से ऐसे भी थे, जो कातिल थे मगर उनके रिश्तेदारों ने अफसरों को खिला-पिलाकर उन्हें पागलखाने भिजवा दिया था ताकि वे फांसी के फंदे से बच जायें. ऐसे लोग कुछ-कुछ समझते थे कि हिंदुस्तान का बंटवारा क्यों हुआ और यह पाकिस्तान क्या है, लेकिन असली घटनाक्रम उनके पल्ले नहीं पड़ता था और पहरेदार सिपाही अनपढ़ और उजड्ड थे. उनकी बातचीत से भी कोई नतीजा नहीं निकल पाता था. उन्हें सिर्फ यह मालूम था कि एक आदमी मुहम्मद अली जिन्ना है, जिसे 'कायदे आजम' कहते हैं. उसने मुसलमानों के लिए एक अलग देश बनवा दिया है और इसका नाम पाकिस्तान है. यह कहां है? इसका इलाका कौन-सा है? वे कुछ नहीं जानते थे. यही वजह है कि पागलखाने में जिन लोगों का दिमाग पूरी तरह खराब नहीं हुआ था, वे भी इस उलझन में उलझे हुए थे कि वे पाकिस्तान में हैं या हिंदुस्तान में. अगर वे हिंदुस्तान में हैं तो पाकिस्तान कहां है और पाकिस्तान में हैं तो भला यह कैसे हो सकता है कि वे एक अर्से से यहां रहते हुए भी हिंदुस्तान में थे.

एक पागल तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान और पाकिस्तान-हिंदुस्तान के चक्कर में ऐसा चकराया कि और भी पागल हो गया. वह झाड़ू लगाते-लगाते एक पेड़ पर चढ़ गया और टहनी पर बैठकर हिंदुस्तान और पाकिस्तान के नाजुक मसले पर दो घंटे लगातार भाषण देता रहा. सिपाहियों ने उसे नीचे उतरने को कहा तो वह और भी ऊपर चढ़ गया. उन्होंने उसे डराया-धमकाया तो कहने लगा, "मैं न हिंदुस्तान में रहना चाहता हूं न पाकिस्तान में. . .मैं इस पेड़ पर ही रहूंगा."

काफी देर बाद उसका दौरा ठंडा पड़ा. वह नीचे उतरा और अपने हिंदू-सिख साथियों को गले लगकर रोने लगा. उसका दिल डूबा जा रहा था, महज इस खयाल से ही कि वे उसे छोड़कर चले जायेंगे.

वहां एक एम. एस-सी. पास मुसलमान भी था. पागल होने से पहले यह रेडियो इंजीनियर हुआ करता था. वह सब पागलों से अलग, अहाते के एक खास कोने में चुपचाप टहलता रहता था. इन दिनों उसमें एक अनोखी तबदीली आ गयी. उसने अपने कपड़े उतारकर जमादार को दे दिये और नंग-धड़ंग ही पूरे अहाते में घूमने लगा.

एक मोटा मुसलमान पागल 'मुस्लिम लीग' का कार्यकर्ता रह चुका था. वह दिन में पंद्रह-सोलह बार नहाया करता था. उसने यह आदत एकदम छोड़ दी. उसका नाम मुहम्मद अली था. इसलिए उसने एक दिन अपने जंगले के भीतर ऐलान कर दिया कि वह कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना है. उसकी देखा-देखी एक सिख-पागल, मास्टर तारा सिंह बन गया. तब इस अंदेशे से कि जंगले में खून-खराबा न हो जाये, दोनों को खतरनाक पागल करार देकर अलग-अलग बंद कर दिया गया.

वहां लाहौर का एक नौजवान हिंदू वकील भी था, जो प्यार में धोखा खाकर पागल हो गया था. उसे जब मालूम हुआ कि अमृतसर, हिंदुस्तान में चला गया है तो वह बेहद दुखी हो उठा. उसका प्यार उसी शहर की एक लड़की से हुआ था. उसने चाहे वकील की मुहब्बत ठुकरा दी थी, किंतु पागलपन की हालत में भी वह उसे भूल नहीं पाया था. वह दिन-रात हिंदू और मुस्लिम नेताओं को गालियां दे-देकर कोसता रहता कि उन्होंने हिंदुस्तान के दो टुकड़े कर दिये. उसकी माशूका हिंदुस्तानी बन गयी और वह पाकिस्तानी!

जब तबादले की बात चली तो कई पागलों ने उसे समझाया कि वह दिल न तोड़े, उसे हिंदुस्तान भेज दिया जायेगा. . .उस हिंदुस्तान में जहां उसकी प्रेमिका बसती है. मगर वह लाहौर भी नहीं छोड़ना चाहता था. उसका खयाल था कि अमृतसर में उसकी वकालत नहीं चलेगी.

यूरोपी वार्ड में दो एंग्लो-इंडियन पागल थे. जब उन्हें पता लगा कि अंग्रेज हिंदुस्तान को आजाद करके चले गये हैं तो वे उदास हो गये. वे छुप-छुपकर आपस में घंटों इस गंभीर मसले पर बातचीत करते रहते कि अब पागलखाने में उनकी हैसियत किस तरह की होगी? यूरोपी वार्ड रहेगा या खत्म कर दिया जायेगा? कहीं उन्हें डबलरोटी की बजाय कसूती हिंदुस्तानी चपाती तो नहीं निगलनी पड़ेगी?

एक सिख था, जिसे पागलखाने में आये पंद्रह साल गुजर चुके थे. उसके मुंह से हर वक्त अनोखे और अजीब लफ्ज सुनने में आते थे 'उपड़ दी गड़बड़ ऍक्स की बेध्यानयां की मुंग की दाल ऑफ दी लालटेन. . !' वह न दिन में सोता था न रात को. पहरेदारों का कहना था कि वह पंद्रह साल के लंबे अरसे में पल भर के लिए भी नहीं सोया था. हां, कभी-कभी दीवार का सहारा ले लेता था.

हमेशा खड़े रहने के कारण उसके पांव सूज गये थे. पिंडलियां भी सूज गयी थीं. परंतु इतनी जिस्मानी तकलीफ के बावजूद वह आराम नहीं करता था. कभी हिंदुस्तान-पाकिस्तान और पागलों की तबदीली के बारे में होनेवाली बातें बड़े ध्यान से सुनता रहता. . और अगर कोई पूछ लेता कि इस बारे में उसका क्या खयाल है तो वह बड़ी संजीदगी से जवाब देता, "उपड़ दी गड़बड़ ऍक्स दी बेध्यानयां दी मुंग दी दाल ऑफ दी पाकिस्तानी गोरमेंट."

बाद में 'ऑफ दी पाकिस्तानी गोरमेंट' की जगह वह 'ऑफ दी टोबा टेकसिंह गोरमेंट' कहने लगा और उसने दूसरे पागलों से पूछना शुरू कर दिया कि टोबा टेकसिंह कहां है, जहां का कि वह रहनेवाला है. पर किसी को पता नहीं था कि वो तो पाकिस्तान में है या हिंदुस्तान में. जो लोग बताने की कोशिश करते, वे खुद भी इस उलझन में फंस जाते कि सियालकोट पहले हिंदुस्तान में होता था और अब सुना है कि पाकिस्तान में है. क्या पता कि लाहौर जो अब पाकिस्तान में है, कल हिंदुस्तान में चला जाये या सारा हिंदुस्तान ही पाकिस्तान बन जाये. तिस पर यह बात भी कौन माई का लाल छाती पर हाथ रखकर कह सकता था कि पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनों सिरे से ही गायब न हो जायें!

उस सिख पागल के केश झड़-झड़कर कम हो गये थे. वह बहुत कम नहाता था. इसलिए दाढ़ी और सिर के बाल आपस में जुड़कर जम गये थे. इस कारण उसकी शक्ल बड़ी डरावनी लगती थी, पर आदमी वह बेलाग था. पंद्रह साल में उसने कभी किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं किया था. पागलखाने के कर्मचारी उसके बारे में इतना ही जानते थे कि टोबा टेकसिंह में उसकी जमीनें वगैरह हैं. अच्छा-भला, खाता-पिता जमींदार था कि अचानक कुछ लोग उसे मोटी-मोटी जंजीरों में बांधकर लाये और पागलखाने में दाखिल कर गये. महीने में एक बार वे मुलाकात करने आते थे और कुशल क्षेम पूछकर लौट जाते थे. काफी समय तक यह सिलसिला चलता रहा. मगर जबसे बंटवारे की गड़बड़ शुरू हुई थी, उनका जाना-जाना बंद हो गया था.

उसका नाम बिशन सिंह था. मगर सब उसे 'टोबा टेकसिंह' कहते थे. उसे बीते हुए या बीत रहे दिन-महीने या साल का कोई अंदाज नहीं था. लेकिन हर महीने जब उसके रिश्तेदार उसे मिलने के लिए आते थे तो उसे अपने-आप पता लग जाता था. वह दफेदार को कहता कि उसकी मुलाकात आ रही है. उस दिन वह साबुन मल-मलकर नहाता और सिर पर तेल लगाकर कंघी भी करता. अपने कपड़े, जिन्हें वह कभी नहीं पहनता था, निकलवाकर पहनता और सज-धजकर मिलनेवालों के पास जाता. वे उससे कुछ पूछते तो वह चुप ही रहता या कभी-कभी 'उपड़ दी गड़बड़ दी ऍक्स बेध्यानयां दी मुंग दी दाल ऑफ दी लालटेन' कहकर रह जाता.

CC-0. In Public D

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी एक बेटी हर साल अंगुल-अंगुल बढ़ती, पंद्रह सालों में जवान हो गयी थी. वह बच्ची थी, तब भी अपने बाप को देखकर रोती थी और जवान हुई तब भी उसकी आंखों में आंसू बहते थे.

'टोबा टेकसिंह कहां है?' इस बारे में कोई संतोषजनक जवाब न मिलने पर बिशन सिंह की चिंता बढ़ी ही गयी. अब उसकी मुलाकात भी नहीं आती थी. उसके दिल की वह आवाज भी मानो बंद हो गयी थी, जो उसे पहले ही बता देती थी कि मुलाकात आ रही है. उसकी दिली इच्छा था कि वे लोग आयें, जो उससे हमदर्दी जताते थे और उसके लिए फल तथा मिठाइयां लेकर आते थे. उसे यकीन था कि वे लोग जरूर बता देंगे कि टोबा टेकसिंह कहां है—हिंदुस्तान में या पाकिस्तान में? क्योंकि उसका अंदाजा था कि वे टोबा टेकसिंह से ही आते हैं.

पागलखाने में एक ऐसा पागल भी था, जो अपने-आपको 'रब्ब' कहता था. एक दिन बिशन सिंह ने उससे भी पूछ लिया तो वह अपनी आदत के अनुसार हंसकर बोला, "टोबाटेकसिंह न पाकिस्तान में है और न हिंदुस्तान में, क्योंकि हमने अभी तक ऐसा हुक्म ही नहीं दिया." बिशन सिंह ने उस रब्ब को बहुत मनाया, मिन्नतें कीं, खुशामद मारी कि वह हुक्म जारी कर दे ताकि झंझट खत्म हो जाये. पर रब्ब बहुत व्यस्त था, क्योंकि उसे अभी और भी बहुत से हुक्म सुनाने थे. एक दिन तंग आकर बिशन सिंह उस पर चढ़ ही बैठा, "उपड़ दी गड़बड़ दी ऐंक्स दी वाहे गुरुजी की फतह. . . जो बोले सो निहाल . . .सत्श्री अकाल!" . . . इसका मतलब शायद यह था कि तू मुसलमानों का रब्ब है; अगर सिक्खों का होता तो मेरी जरूर सुनता!

तबादला होने में कुछ ही दिन रह गये थे कि अचानक टोबा टेकसिंह से बिशन सिंह का एक मुसलमान दोस्त उससे मिलने आ पहुंचा.

बिशन सिंह ने फजलदीन को सिर से पांव तक देखा और कुछ बुदबुदाने लगा. फजलदीन ने आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रख दिया, "मैं काफी दिनों से सोच रहा था कि तुझे मिलूं, पर वक्त ही नहीं निकला. तेरे सब लोग राजी-खुशी हिंदुस्तान पहुंच गये हैं. मुझसे जितनी मदद हो सकी मैंने की. . . तेरी बेटी रूप कौर. . . " वह कुछ कहता-कहता रुक गया. बिशन सिंह कुछ याद करने लगा.

"बेटी रूप कौर. . . .भी ठीक-ठाक है. . . .उनके साथ ही चली गयी थी."

बिशन सिंह चुप रहा. . फजलदीन बोलता गया, "उन्होंने कहा था कि मैं तेरी खबर पूछता रहूं. अब मैंने सुना है कि तू भी हिंदुस्तान जा रहा है. . . भाई बलबीर सिंह और भाई बधावा सिंह को मेरा सलाम कहना . . . और बहन अमृतकौर को भी. . . भाई बलबीर सिंह को कहना कि फजलदीन राजी-खुशी है. . . और मेरे लायक कोई सेवा हो तो बताओ. . . मैं हर वक्त तैयार हूं. . . हां, यह तेरे वास्ते थोड़े से मरूंडे लाया हूं. . ."

बिशन सिंह ने मरूंडोंवाली पोटली पकड़कर सिपाही को थमा दी और फजलदीन से पूछा, "टोबा टेकसिंह कहां है?"

फजल सिंह हैरान-सा होकर बोला, "होना कहां है, वहीं है जहां पहले था."

बिशन सिंह ने फिर पूछा, "पाकिस्तान में है या हिंदुस्तान में?"

"पाकिस्तान में."

बिशन सिंह बुड़बुड़ करता चला गया, "उपड़ दी गड़गड़ दी ऐंक्स दी बेध्यानयां दी मुंग दी दाल ऑफ दी पाकिस्तान एंड हिंदुस्तान गोरमेंट दी दुरे फिटे मुंह (लानत)!"

तबादले की तैयारियां हो चुकी थीं. इधर से उधर और उधर से इधर आने-जानेवालों की सूचियां भी भेजी जा चुकी थीं. और तबादले का दिन भी तय हो चुका था.

वे सख्त सर्दियों के दिन थे. लारियां आयीं और लाहौर के पागलखाने से हिंदू-सिख पागलों को लादकर पुलिस की निगरानी में रवाना हो गयीं. संबंधित सरकारी अफसर भी साथ थे. बाघा सीमा पर दोनों तरफ के अधीक्षक परस्पर मिले और औपचारिक कार्यवाही खत्म होने के बाद तबादले का काम शुरू हो गया. यह तबादला सारी रात होता रहा. पागलों को लारी से निकालना और दूसरे अफसरों के हवाले करना बहुत मुश्किल काम था, कई तो बाहर ही न निकलते. जो निकल आते उन्हें संभालना भारी हो जाता. जो नंगे थे, उन्हें कपड़े पहनाये जाते तो वे फिर उन्हें चीर-फाड़कर फेंक देते. नजारा यह बन गया कि. . . कोई गालियां बक रहा है, कोई गा रहा है, कुछ आपस में लड़ रहे हैं, कुछ रो रहे हैं, बिलख रहे हैं, . . . कानों पड़ी आवाज सुनायी नहीं पड़ती थी. पागल औरतों का शोर तो बस तोबा ही था. ठंड भी इतनी कड़ाके की थी कि दांत से दांत बज रहे थे.

ज्यादातर पागल इस तबादले के हक में नहीं थे, क्योंकि उन्हें समझ ही नहीं आ रहा था कि वे यहां से उखाड़कर कहां फेंके जा रहे हैं. जो पागल थोड़ा-बहुत सोच-समझ सकते थे, वे 'पाकिस्तान जिंदाबाद' और 'पाकिस्तान मुर्दाबाद' के नारे लगा रहे थे. दो-तीन बार तो फसाद होते-होते बचा, क्योंकि कुछ मुसलमान और सिखों को ये नारे सुन-सुनकर तैश आ गया था.

बिशन सिंह की बारी भी आ गयी. अफसर उसका नाम रजिस्टर में लिखने लगा तो उसने छूटते ही पूछा, "टोबा टेकसिंह कहां है. . पाकिस्तान में या हिंदुस्तान में?"

"पाकिस्तान में." सुनते ही बिशन सिंह उछलकर मुड़ा और भागता हुआ अपने साथियों में पहुंच गया. पाकिस्तानी सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और दूसरी तरफ ले जाने लगे, पर बिशन सिंह टस से मस नहीं हुआ. उसने चलने से इंकार कर दिया और जोर-जोर से चीखने लगा, "टोबा टेकसिंह किधर है? . . . .टोबा टेकसिंह किस तरफ है?. . . .उपड़ दी गड़गड़ दी ऐंक्स दी बेध्यानयां दी मुंगे दी दाल ऑफ टोबा टेकसिंह एंड पाकिस्तान. . ."

उसे बहुत समझाया गया कि 'टोबा टेकसिंह' अब हिंदुस्तान में चला गया है. . .और नहीं गया तो जल्दी ही भेज दिया जायेगा. मगर वह नहीं माना. आखिर उसे जबरदस्ती दूसरी तरफ ले जाने की कोशिश की गयी तो वह एक जगह पर बीचोंबीच अपनी सूजी हुई टांगों के बल इस तरह खड़ा हो गया मानो अब दुनिया की कोई ताकत उसे वहां से हटा नहीं सकेगी.

वह वो आदमी था, जिस पर कोई पार पा नहीं सकता था. इसलिए उसके साथ ज्यादा जोर-जबरदस्ती नहीं की गयी. सिपाहियों को विश्वास था कि वह अब नहीं तो थोड़ी देर बाद खुद ही मान जायेगा. इसलिए उसे वहीं खड़ा रहने दिया गया और तबादले का काम चलता रहा.

सूरज निकलने ही वाला था कि अचानक बिशन सिंह के हलक से आसमान चीरती हुई आवाज निकली. दोनों तरफ से सिपाही और अफसर दौड़े आये. . .और उन्होंने देखा कि वह आदमी जो पंद्रह साल तक दिन-रात अपनी टांगों पर खड़ा रहा था, औंधे मुंह गिरा पड़ा है. इधर कंटीली तारों के पीछे हिंदुस्तान था, उधर उसी तरह की तारों के पीछे पाकिस्तान. बीचों-बीच जमीन के उस टुकड़े पर, जिसका कोई नाम नहीं था, टोबा टेकसिंह पस्त पड़ा हुआ था □

स्याह हाशिया

▣ मंटो

दो दोस्तों ने मिलकर कुछ लड़कियों में से एक लड़की चुनी और बयालीस रुपये देकर उसे खरीद लिया.

एक दोस्त ने लड़की के साथ रात गुजारकर उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

लड़की ने अपना नाम बताया. नाम सुनते ही वह अपने दोस्त के पास गया और बोला, "हमारे साथ धोखा हुआ है. हमारे ही मजहब की लड़की वे दी हमें. चलो वापस करके आयें." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लंघन

भैरप्पा

आजादी के इतने साल गुजर गये, साल-दर-साल हम धर्मनिरपेक्षता की कसमें खाते रहे और सोचते रहे कि देश से जात-पांत दूर हो रहा है, पर क्या वह दूर हुआ? जवाब दे रहे हैं साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता कन्नड़ उपन्यासकार, एस. एल. भैरप्पा, अपने उपन्यास 'उल्लंघन' में. प्रस्तुत है उपन्यास का कथासार—

तिरुमलापुर नाम क्यों पड़ा, यह पता लगाना कोई मुश्किल काम नहीं है. यहां तिरुमल अर्थात तिरुपति के भगवान श्रीनिवास का मंदिर है और इसी कारण इस गांव का यह नाम पड़ा. जो असली तिरुपति नहीं जा सकते, वे यदि यहीं श्रद्धापूर्वक श्रीनिवास की पूजा करें तो उनकी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं. अरसीकेरे के पास मालेकल्लु एक टेकड़ी पर है और उस रूप में असली तिरुपति से मिलता-जुलता है, लेकिन तिरुमलापुर का मंदिर न टेकड़ी पर है और न मैदान में ही, बल्कि वह गांव के बाहर तालाब के बांध की निचली सतह पर नाले के पास स्थित है. मंदिर को जानेवाले रास्ते के दोनों ओर नारियल के बाग और खेत हैं. नाला पार किया तो खेत और बाड़ियां मिलती हैं. इसके उस पार टेकड़ी पर गांव का भंगी और चमारवाड़ा है.

मंदिर के पुजारी का नाम वेंकटरमणैया है. उनके इकलौते बेटे का नाम वेंकटेश है. उसकी छोटी बहन सत्यभामा है. वेंकटेश जब बारह साल का था, उसकी मां की मृत्यु हो गयी थी. फिर भी वेंकटरमणैया ने दूसरी शादी नहीं की. वेंकटेश इंटर में फेल होकर जब शहर से गांव लौटा तो अपने पिता की तरह पुजारी नहीं बना. बस अडडे के सामने उसने चाय की दूकान खोल ली.

सत्यभामा ने इतिहास में एम. ए. किया. लेक्चरर की नौकरी ढूंढ़ने वह मैसूर गयी, लेकिन नौकरी न लगने पर उसने शोध के लिए आवेदन किया.

बड़े आंगन और भीतरी हाल के अतिरिक्त सामने कुप्पणैयंगारजी के घर के अहाते में भी पत्तलें बिछायी गयीं. गांव के वृद्ध वैष्णव और श्री वैष्णवों को छोड़कर दूसरे सभी भोज में आये. वेकटरमणैया जी जीम रहे लोगों की खातिरदारी कर रहे थे. तभी पोस्ट मास्टर नारायणैया आ गये. उनके हाथ में लिफाफा था, जिसकी लिखावट देखकर ही वेंकटरमणैया समझ गये कि पत्र बेटी सत्यभामा का है. तुरंत लिफाफा खोल कर पत्र पढ़ना शुरू किया—'बेंगलूर के देशीय कालेज में लेक्चरर की नौकरी मिल गयी.' पत्र पढ़कर मन को तसल्ली मिली, लेकिन पत्र का दूसरा पैरा पढ़ते समय मन तिलमिला उठा. आगे पढ़ते भय-सा हुआ. मुख्य विषय स्पष्ट हुआ कि उसने मंत्री मेलगिरि गौड़ के बेटे श्रीनिवास के साथ शादी करने का फैसला किया है और पिता का आशीर्वाद चाहा है.

"वेंकटेश, जरा इधर आना." कहकर वेंकटरमणैया भीतर गये. वेंकटेश भी पत्र पढ़कर गुस्से में भर उठा. तब पिता बोले, "बेंगलूर जाकर इस गधी को चार लातें जमाकर घसीट लाओ. जाओ, अभी जाओ."

"पिताजी, ऐसे वक्त में सब्र से काम नहीं लगे तो हमारी इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी."

"हमारी इज्जत को मिट्टी में मिलाने के लिए ही तो इस कुलच्छनी ने इस घर में जन्म लिया है. . . . . बिन मां की बेटी समझकर मैंने खुद मां बनकर इसे पाला-पोसा, पापिन, चुड़ैल. . . . ." कहते हुए वे सिसक-सिसककर रोने लगे. फिर बेटे के कहने पर वे मंदिर चले गये. लौटने पर बेटे ने उनसे कहा, "मैं बेंगलूर जाकर उससे बात करूंगा."

"उसका स्वभाव तू नहीं जानता."

"वह घोड़ी की तरह है. वह आवेश में आयी जरूर है, लेकिन वे गधे मानें तब न!"

"इतनी उम्र हो गयी, पर तुझे अक्ल नहीं आयी. वे क्यों नहीं मानेंगे? ब्राह्मण लड़की से शादी करके हमारी जाति का अपमान करने पर तुला हुआ वह ब्राह्मण-द्वेषी छोड़ेगा थोड़े ही यह मौका. हम दोनों साथ पढ़े हैं. उसकी योग्यता मुझे मालूम है. अब जब यह रांड खुद उनके पास गयी है तो वे क्यों चूकने लगे मौका?"

"पिताजी, अगर घोड़ा जबरदस्ती घुसना चाहे तो भी गधे उसे अपने बाड़े में घुसने नहीं देंगे. यह जितना आप समझते हैं, उतना आसान है नहीं. अब चलिए, खाना खा लें. सोच-विचार करके मैं कोई रास्ता निकालूंगा."

मंत्री मेलगिरि गौड़ के पिता पटेल तिरुमले गौड़जी इसी गांव में रहते हैं. बेटा बेंगलूर में रहता है. बीच-बीच में आकर पिता को देख जाता है. छोटी उम्र से ही राजसी ठाट-बाट से पटेलगीरी करके आस-पास के देहातों की न्याय पंचायतों में शासन किये हुए पटेल अब बुढ़ापे में आध्यात्मिकता की ओर झुके हैं. अब तो खेती-बाड़ी बाग-बगीचे की ओर भी नहीं देखते. केवल पूजा-पाठ और जप में ही समय बिताते हैं. वेंकटेश जब उनके पास पहुंचा, वे पलंग पर बैठे थे. सामान कोने में रखवा लिया. तमाम बातें हुईं, पर सत्या की बात वह नहीं कर सका, जिसे करने का इरादा लेकर वह आया था. पिता ने पूछा तो उसने बताया और कहा, "यह शादी नहीं होगी."

"यह कैसे कहते हो?"

"वे लोग हम ब्राह्मणों से भी श्रेष्ठ ब्राह्मण बनते जा रहे हैं. हमारी लड़की वे अपने घर नहीं लेंगे."

"उस बूढ़े की बात छोड़ो. उस मेलगिरि की नीयत तुम नहीं जानते. ब्राह्मणों से उसे द्वेष है. हमारी जाति को नीचा दिखाने के लिए ही वह शादी करायेगा."

तिपटूर के मार्ग से बेंगलूर जानेवाली पहली बस सुबह साढ़े छह बजे तिरुमलापुर आती है. बस स्टैंड तक वेंकटेश ने साथ दिया. स्टैंड के सामने ही उसका होटल है. उनके पहुंचने के दस मिनट बाद हरिजन नेता बेट्टैया वहां आ गये. खादी की धोती-कमीज और गांधी टोपी पहने थे.

CC-0. In Public D...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ में खादी का थैला था. काले रंग और मध्यम ऊंचाई के बेट्टैया भाई वेंकटरमणैया से छह-सात साल बड़े हैं, स्वतंत्रता आंदोलन के समय साबरमती आश्रम में महात्मा गांधी के साथ छह वर्ष रहे थे. अब दलित जातियों के चुनाव क्षेत्र से विधानसभा के सदस्य हैं.

बेट्टैयाजी ने वेंकटरमणैयाजी को नमस्कार किया. बस आने पर वेंकटरमणैयाजी से पांच सीट पीछे बेट्टैयाजी बैठे. वे पास नहीं बैठते. जब कभी उन्हें बस की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, वे वेंकटेश के होटल से एक गिलास कॉफी मंगवा लेते हैं, वहां खुद नहीं जाते.

बेट्टैया को देखकर वेंकटरमणैया सोच रहे थे कि यह स्वभाव से अच्छा आदमी है. असेंबली का सदस्य होने के बावजूद इसे अहंभाव छू तक नहीं गया. हरिजन बस्ती में बड़ा-सा घर है. साठ-सत्तर हजार की जायदाद है, किंतु बेटा अहंकारी है.

रास्ते में वेंकटरमणैया ने बेट्टैया से पूछा, "देशी कालेज कहां है?"

"जी, बेंगलूर में, बसवनगुड़ी में." इसके बाद बेट्टैया को भला आदमी समझकर वेंकटरमणैया ने बेटी का पत्र उसे पढ़ा दिया. बेंगलूर पहुंचकर दोनों कलासीप्पालयम् में उतरे और कालेज पहुंच गये. बेट्टैया अंदर जाकर सत्यभामा को बुला लाये. बेटी के साथ वे उसके कमरे पर पहुंचे और तेज आवाज में बोले, "यह क्या लिखा है, बोल!"

"पिताजी, जरा धीमे से बोलिए. ऊपरी मंजिल पर दूसरा परिवार रहता है." सत्यभामा ने कहा तो वे दांत पीसते हुए बोले, "तुम्हारे इस काम के बाद तुम्हें सम्मान भी चाहिए, रांड कहीं की." और फिर जूता उतारकर बेटी को पीटना शुरू कर दिया.

"शांति-शांति, आप जैसों के हाथ में जूता शोभा नहीं देता." बाहर खड़े बेट्टैया कहते ही रहे और वेंकटरमणैया बेटी को पीटते-पीटते बेदम होकर गिर पड़े.

जिस दिन सत्यभामा ने अपने पिता को चिट्ठी लिखी, उसी दिन श्रीनिवास को अपने घर में सारी बात बतानी थी. सत्या दूर शहर में थी, इसलिए उसने चिट्ठी लिखने का साहस किया, लेकिन श्रीनिवास को पिता के सामने खड़े होकर सारी बातें बताना कठिन लगा. ऐसे मामलों में वह अपने पिता का स्वाभिमान जानता था. वे एक साल साबरमती में गांधीजी के आश्रम में रहकर स्वतंत्रता आंदोलन में शरीक हुए थे और जातपांत का भेदभाव माननेवाले आदमी नहीं थे. श्रीनिवास ने भी पत्र लिखकर अपने पिता मेलगिरि गौड़ को दिया. पत्र पढ़कर मंत्री मेलगिरि गौड़ को एक तरह से खुशी ही हुई, पर पत्नी रंगम्मा यह सुनकर घबरा गयी, "यह बेंरबादी का काम है." वह बेटे श्रीनिवास से बोली, "यह शादी मत करना बेटे, वरना मैं आत्महत्या कर लूंगी."

एक शूद्र से विवाह करने का सत्यभामा का निर्णय कालेज के प्रिंसिपल को भी रास नहीं आया. और फिर एक दिन उसने सत्यभामा को एक कागज का टुकड़ा थमा दिया—'ठीक से क्लास न लेने की वजह से आपको नौकरी से निकाला जाता है.'

कुछ दिन बाद लोगों ने ऐसा-वैसा सब कुछ कहा, किंतु वेंकटरमणैया जी को सत्या की अनेक अंतरंग बातें याद आने लगीं. वह कहती थी कि 'अंतरंग ही सच बोलेगा, रूढ़ि अंतरंग को छिपा लेती है.' तब रह रहकर उनको मातंगी की याद आने लगी.

तब पत्नी को मरे हुए दो साल हो चुके थे. मन का वैराग्य समाप्त हो रहा था. मंदिर में पूजा के समय मन कहीं का कहीं चला जाता. यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी, लेकिन दूसरी शादी कर लेने से बच्चे अपने ही घर में पराये हो जायेंगे, यह बात सोचकर वे मन मारकर रह जाते. तभी उनका ध्यान मातंगी पर गया था. छब्बीस-सत्ताईस साल की वह विधवा हरिजन बस्ती में रहती थी. ये भी अपनी उम्र के बत्तीसवें साल से गुजर रहे थे. मातंगी के साहचर्य में उन्होंने तीन साल यों गुजारे कि पत्नी की सुध तक न आयी. एक दिन मातंगी ने उनसे कहा, "शायद कुछ गड़-बड़ हो गयी है."

"क्या बात है री!" उन्होंने घबराकर पूछा.

"शायद मेरे पांव भारी हो रहे हैं." सुनकर उन्हें सांप-सा सूंघ गया. वे सिर पर हाथ रखकर बैठ गये. उस दिन वेंकटरमणैया ने मातंगी को छुआ तक नहीं.

अगले दिन अन्य दिनों की तरह बगीचे में जाकर रात तक उसकी प्रतीक्षा की, किंतु वह नहीं आयी. महीनों तक उसकी कोई खबर उन्हें नहीं मिली. उन्होंने बगीचे जाना ही छोड़ दिया और मन लगाकर भगवान की पूजा करने लगे. इस घटना को आज दस साल होने को आये. इस बीच दुनिया में क्या-क्या नहीं हुआ. बेट्टैया का बेटा मोहनदास बी.ए. में फेल होकर तुमकूर में जूतों की दूकान चलाने लगा. उसकी बहन मीरा ने मैट्रिक कर लिया, लेकिन तभी सत्यभामा की करतूत की याद ने वेंकटरमणैया को बेचैन कर दिया. सत्या पर उन्हें बहुत गुस्सा आया, लेकिन मातंगी की याद के साथ वह घुल गया.

अब वेंकटरमणैया एकदम से खामोश रहते हैं. किसी से कुछ बोलते-चालते भी नहीं. एक दिन अपने बेटे वेंकटेश से उन्होंने कहा, "देख, मैंने बहुत सोच-विचार कर लिया है. ईश्वर क्या है, यह पत्थर की बटिया. पत्थर को क्या पूजना और क्या न पूजना! कल से यह पुजारीगीरी मैं छोड़ रहा हूं." वेंकटरमणैया थोड़ी देर बाद उठे और नौकर के साथ बगीचे चले गये. उससे एक झोंपड़ी बनाने को कहा.

उधर श्रीनिवास ने सत्यभामा को एक पत्र लिखा—'सत्या, मैं अनपेक्षित और दुखदायक निर्णय पर पहुंचा हूं. वर्ण व्यवस्था में मुझे अब भी विश्वास नहीं है, लेकिन रूढ़ियों ने जो अंतर पैदा किया है, उसे लांघ सकने का समय अभी नहीं आया है. शादी केवल स्त्री-पुरुष के आपसी सुख के लिए की जानेवाली व्यवस्था नहीं है, सबकी स्वीकृति से होनेवाला काम है वह. शायद दो-तीन पीढ़ियों के बाद समाज की आस्थाएं, भावनाएं उदार बनें और तब हमारे देश के युवक-युवतियां इस वर्णव्यवस्था की दहलीज लांघने में समर्थ हो पायें, मगर अभी हम ऐसा प्रयास करें तो अनर्थ हो सकता है. . . मेरी मां आत्महत्या कर सकती है. तुम्हारे पिता चिंता में घुल-घुलकर मर सकते हैं. ऐसा कुछ हुआ तो हममें से कोई भी सुख से जी नहीं सकेगा. तुम्हारी स्मृतियां ही मेरा भावी जीवन हैं. तुम्हारे अलावा किसी और का मेरे मन में प्रवेश पाना कदापि संभव नहीं है, पर तुम मुझे भुला दो.' लेकिन कुछ दिन बाद मंड्य के विधायक केंपण्ण की लड़की कुमुदनी से श्रीनिवास की शादी हो गयी.

एक दिन बेट्टैया ने सत्यभामा को फोन किया, 'आपके पिताजी पागल हो गये हैं. साधु-संतों की तरह रहते हैं. बिना किसी लापरवाही के आपको गांव जाना चाहिए.' और सचमुच बिना किसी लापरवाही के वह शाम को करीब सात बजे गांव आ गयी. डर तो लगा, लेकिन खाना खाकर वह बगीचे में पिता के पास पहुंच गयी. उसे उन्होंने प्यार से अपने पास बिठाया.

प्रातःकाल उठकर सत्या ने हाथ-मुंह धोया तो पिता कहीं भी नजर नहीं आये. थोड़ी दूर मंदिर के दाहिनी तरफ एक चट्टान पर वे कच्छा बांधे सोये पड़े थे. वह कुछ देर खड़ी उन्हें देखती रही, फिर बोली, "पिताजी, चलिए, झोंपड़ी में सोइए." वे उठकर बगीचे की ओर चल दिये. दो दिन बाद बेट्टैया के लड़के मोहन दास ने करीब एक दर्जन लोगों को लेकर वेंकटरमणैया को घेरा और उनसे मातंगी संबंधी न्याय मांगा. दूसरे दिन सुबह किसी ने आकर दरवाजा खटखटाकर कहा, "वेंकट-रमणैया जी मर गये हैं. पत्थर बांधकर वे तालाब में डूब गये थे."

कुमुदिनी से शादी के बाद कुछ दिन तक श्रीनिवास प्यार करता रहा. वह बहुत ही रूपवती थी. वह उसे एक दिन के लिए भी अकेला न छोड़ता. वह जल्दी ही गर्भवती हो गयी और प्रसव के लिए मायके गयी और मरा बच्चा जनने के बाद खुद भी मर गयी.

कुछ दिन बाद श्रीनिवास ने घरवालों से साफ-साफ कह दिया कि वह अब सत्या से ही शादी करेगा. वह सुबह-सुबह सत्या के पास पहुंच गया. उसको सब कुछ नया-नया-सा लग रहा था. सत्या ने बताया, "यह लड़की बेंगलूर के एक कालेज में पढ़ती है. मीरा नाम है इसका." फिर सत्या ने श्रीनिवास को खाना परोसकर खिलाया. तभी पूछा, "तुम्हें जात-पांत पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहू और लोहे का इतिहास

▣ सआदत हसन मंटो

चौदह अगस्त, 1947 का दिन मेरे सामने बंबई में मनाया गया. पाकिस्तान और भारत, दोनों देश स्वतंत्र घोषित किये गये थे. लोग बहुत प्रसन्न थे, मगर कत्ल और आग की वारदातें बाकायदा जारी थीं. स्वतंत्र भारत की जय के साथ-साथ पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे भी लगते थे. कांग्रेस के तिरंगे के साथ इस्लामी परचम भी लहराता था. पंडित जवाहरलाल नेहरू और कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना—दोनों के नारे बाजारों में गूंजते थे. समझ में नहीं आता था कि भारत अपनी मातृभूमि है या पाकिस्तान अपना वतन! और वह लहू किसका है, जो हर रोज इतनी बेदर्दी से बहाया जा रहा है... वे हड्डियां कहां जलायी जायेंगी या दफन की जायेंगी, जिन पर से मजहब और धर्म का गोश्त चीलें और गिद्ध नोच-नोचकर खा गये थे?

हिंदू और मुसलमान धड़ाधड़ मर रहे थे. कैसे मर रहे थे, क्यों मर रहे थे—इन प्रश्नों के उत्तर भी भिन्न-भिन्न थे—भारतीय उत्तर, पाकिस्तानी जवाब, अंग्रेजी आंसर. हर सवाल का जवाब मौजूद था, मगर इस जवाब में वास्तविकता तलाश करने का सवाल पैदा होता तो उसका कोई उत्तर न मिलता. कोई कहता, इसे गदर के खंडहरों में ढूंढो. कोई कहता, नहीं, यह ईस्ट इंडिया कंपनी की हुकूमत में मिलेगा. कोई और पीछे हटकर उसे मुगलिया खानदान के इतिहास में टटोलने के लिए कहता. सब पीछे-ही पीछे हटते जाते थे और पेशेवर कातिल और लुटेरे बराबर आगे बढ़ते जा रहे थे और लहू और लोहे का ऐसा इतिहास लिख रहे थे, जिसका उदाहरण विश्व-इतिहास में कहीं भी नहीं मिलता. □

विश्वास तो नहीं है?"

"मैं जातिभेद नहीं मानता."

"अपनी संकल्प शक्ति को याद कर कहो."

"विश्वास है."

"तब मीरा से शादी कर लो. वह तुम्हारे योग्य पत्नी है."

श्रीनिवास मौन बैठा था. सत्या की आंखों में आंसू भर आये. श्रीनिवास की आंखें भी भर आयी थीं.

एक दिन मीरा ने सत्या को एक पत्र लिखा—'मेलगिरि गौड़ के पुत्र श्रीनिवास अक्सर मेरे होस्टल आते हैं. आज जबर्दस्ती अपनी कार में बिठाकर बाग ले गये थे. बता रहे थे कि मेरे बारे में आपने कुछ कहा है. आपने क्यों कहा ऐसा? कह रहे थे, मीरा, सत्या ने ठीक ही कहा था. मैं जात-पांत से नहीं डरता. तुम मुझे नहीं छोड़ना. आप ही मुझे सलाह दीजिए. आपने उनसे ऐसी बात क्यों की?'

पत्र पढ़कर सत्या गंभीर हो गयी. फिर सोचा कि दोनों की शादी हो जाये तो अच्छा रहे, किंतु मंत्री? श्रीनिवास के पिता क्या इसे स्वीकार करेंगे? उसे लगा, यह संभव नहीं होगा. बात हुई भी यही. श्रीनिवास के पिता ने ऊपर से तो कुछ नहीं कहा, लेकिन ऐसी व्यवस्था कर दी कि वे दोनों एक दूसरे से मिल ही न सकें.

अंततः श्रीनिवास ने फिर हथियार डाल दिये. उसने मीरा को एक खत और लिखा—'मुझे भूल जाओ. मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता. मरते दम तक मैं अकेला रहूंगा.' पत्र पढ़कर मीरा को रोना आ गया. सत्या को भी बहुत दुख हुआ. रात में सत्या को जल्दी नींद नहीं आयी. मीरा की चिंता उसे लग गयी थी. दूसरे दिन सुबह सत्या को सूचना मिली कि मीरा ने तालाब में डूबकर आत्महत्या कर ली है.

प्रतिपदा के दिन हरिजनों को मंदिर में प्रवेश दिलाने का निश्चय मोहन दास ने कर लिया था, लेकिन... सत्या के पास आकर उसने सब कुछ जान लिया. खेती-बाड़ी और बगीचे के कामों में सत्या की रुचि समाप्त हो गयी थी. एक दिन रात दस बजे मोहन दास ने आकर सत्या से कहा, "इसी समय आप एक फर्लांग दूर गांव चली जाइए. आपकी जान को खतरा है, लेकिन यहां मेरे आने की बात आप किसी को मत बतलाइएगा."

रात के बारह बज गये—ढम... ढम की आवाज आयी और फिर तालाब का बांध टूटने की आवाज. वह बाहर आयी. चारों ओर पानी ही पानी. वह दक्षिण की तरफ भागी.

टेकड़ी से होती हुई वह गांव की तरफ आयी. किले के पास से पानी अधिक दिखाई दे रहा था. गांव और किले की खंदक तालाब से ऊंची होने के कारण गांव को किसी तरह का खतरा नहीं रहा. गांव के कुछ आदमियों को सत्या पहचान गयी. गांववालों के साथ पुलिसवाले भी दौड़-धूप कर रहे थे. वहां देखिए बहन, जैसे प्रलय आ गया है. गाड़ियां, पेड़, डालियां, जाने क्या-क्या पानी में बहते दिखाई दे रहे हैं. मल्लनायक बोला. सत्या की दृष्टि पानी की ओर गयी. दूर मंदिर की ओर वेग से बढ़ता हुआ पानी चारों ओर भंवर-जाल बन गया है. पानी के बहाव में बहकर घास-फूस नारियल के रेशे ही नहीं, गाड़ी, पेड़, डालियां लकड़ी के टुकड़े भी किले के पास दीख रहे थे. अरे, मरे हुए गाय-बैल भी दिखाई दे रहे हैं. आदमियों के एक-दो शव पहचान में आ रहे हैं. सत्या ने सिर उठाकर देखा. पानी घट नहीं रहा है. बहाव इसी वेग में कब से जारी है. कम होना तो दूर, बढ़ता ही लगता है. आकाश में चांदनी है. पता नहीं, आज पूर्णिमा है या नहीं, लेकिन कहते हैं, पूर्णचंद्र समुद्र को आकर्षित करता है. कल्पनातीत बहाव ने खेतों और बाड़ियों को तहस-नहस कर दिया है. समुद्र-सा फैल गया है. प्रलय शायद ऐसी ही होती है.

सौद्रे गौड़ ने पूछा, "क्यों साहब, बांध टूटा कैसे?"

"नहीं जानते? बेट्टैयाजी के बेटे ने डाइनामाइट से उड़ा दिया."

"यह किसने बताया?" पास खड़े सभी ने अचंभे में पड़कर पूछा.

"मातंगी का बेटा होन्नेश है न, जो तुमकूर में पढ़ रहा है, कहते हैं वह भाग रहा था. शक से किसी ने उसे पकड़ लिया. उसके पास तार, मोटर के शेल और न जाने क्या-क्या मिला. पुलिस सब-इंस्पेक्टर भी वहां पहुंच गया. कहते हैं, उसे खूब पीटा तो उसने कबूल किया कि उसने और बेट्टैया के बेटे ने मिलकर डाइनामाइट रखा था."

"बेट्टैया का बेटा मिला?"

"कहते हैं, दोनों एक-एक छोर पर थे. वह भाग निकलना चाहता था कि डाइनामाइट तभी फूट पड़ा. यह दूसरी तरफ था. इसलिए बच गया. कुछ देर तो इसे सूझा नहीं. सुध-बुध खोकर खड़ा रहा. जैसे ही सूझा, भागने लगा, पर घबराहट में यह भूल गया कि हाथ के शेल आदि पानी में फेंक देने चाहिए, इसलिए फंस गया."

यह सुन सत्या उद्विग्न हो गयी. मोहनदास और उसकी क्रांति की बातें याद आने लगीं. उसका आधी रात को आकर बाड़ी से बाहर चले जाने के लिए उससे अनुनय करना याद आया. तुरंत आंखें भर आयीं. इस बात की चिंता किये बिना कि सम्मुख खड़े कुप्पण्णै यंगारजी क्या कहेंगे, वह सिसक उठी. होन्नेश की नफरत एवं तिरस्कार से भरी आंखें उसके सामने घूम गयीं. तुरंत अपने पिता की भी याद आयी. मृत्यु से एक दिन पहले उनके कहे हुए पानी और जल प्रलय आदि शब्द याद आये. सामने का दृश्य अचल चित्र-सा लग रहा था—सर्वत्र पानी ही पानी. बाड़ी में नारियल के पेड़ों की कहीं फुनगियां भी नजर नहीं आतीं. सारे पेड़ जड़ सहित उखड़कर धराशायी हो गये हैं. सर्वत्र पानी ही पानी. बीच में मंदिर का सोने का कलश! गौर से देखा. पहले बहुत दूर से भी दिखाई दे रहा था, अब पास आने पर भी दिखाई नहीं देता. □

संक्षिप्त रूपांतर : बलराम

CC-0. In Public D

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैष्णवजन

राजेंद्र राव

सोफे की जली हुई स्प्रिंगों में उलझा एक नीले रंग का अधजला चीथड़ा पड़ा था. यह बेबी की जानी-पहचानी ओढ़नी का टुकड़ा था! . . . क्या घृणा और प्रतिहिंसा का दावानल उन्हें समूचा लील गया? इस आशंका ने मुझसे एक विश्वास छीन लिया कि पप्पी लोग इतने भले हैं, उनका कोई क्यों कुछ बिगाड़ेगा! उनका तो कभी किसी से झगड़ा भी नहीं हुआ! —फिर भी अंततः दंगे-फसाद में नेकी पर बदी ही क्यों हावी हो जाती है? जवाब दे रहे हैं—हिंदी के चर्चित कथाकार राजेंद्र राव.

चौथे दिन कर्फ्यू तीन घंटे के लिए किसी तरह खुला. दोपहर बाद. लोग रोजमर्रा की जरूरतों का सामान लेने के लिए घरों से बाहर आये. तीन दिन तक घरों में कैद होकर रहे लोगों ने बाहर की खुली हवा का मुंह देखा. नहीं तो ऐसा लगता था जैसे चूहे की तरह पिंजरे में बंद हो गये हों. सब्जी, फल, दूध को छोड़िए, चाय की पत्ती, चीनी और नमक के लिए मांग-तुंगकर कइयों को काम चलाना पड़ा. अंडे और डबल रोटी को लोग तरस गये. अखबार या तो पहुंचता ही नहीं था या फिर चार गुने पैसे देकर मिलता था, जिसे सब आस-पड़ोस के लोग मिल बांटकर पढ़ते थे.

मैंने भी साइकिल पर झोले और घी-तेल के डिब्बे लटकाये और बाजार के लिए निकला. सीधी सड़क से भी जा सकता था मगर मन नहीं माना तो पप्पी के घरवाली गली से होकर गया.

पप्पी के घर का हाल देखकर मेरे होश उड़ गये. साइकिल से गिरते-गिरते बचा. वह वीभत्स दृश्य नहीं भूलेगा. किसी के घर की ऐसी हालत बनायी जा सकती है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी. बगीचे का ही नहीं, पूरे घर के दरवाजे उखाड़कर ले गये थे. कमरों का फर्श खोद दिया गया था और तमाम दरो-दीवार लगायी गयी आग में झुलसे हुए थे. बगीचे का अरण्य-रोदन हो चुका था. चारों तरफ उन गमलों के टुकड़े पड़े थे जिनमें बड़े जतन से फूलों के खूबसूरत पौधे रोपे गये थे. छज्जे के ऊपर चढ़ी मालती की बेल जलकर काली हो गयी थी. हालांकि अभी भी अपनी जड़ से अलग नहीं हुई थी. घर के सामान को बाहर इकट्ठा करके जो होली जलायी गयी होगी उसके अवशेष बाहर बिखरे पड़े थे.

मुझे लगा कि मैं किसी रक्तरंजित स्लाटर हाउस के सामने खड़ा हूं. हवा में बेपनाह हिंसा की, जले मांस की सड़ांध व्याप्त थी. वह घर दहशत और खौफ का बसेरा बन चुका था. मेरे बदन में एक झुरझुरी-सी उठी. हाथ-पांव ठंडे हो गये. सोफे की जली हुई स्प्रिंगों में उलझा एक नीले रंग का अधजला चीथड़ा पड़ा था जिस पर मेरी निगाह ठहरकर रह गयी. यह बेबी की जानी-पहचानी ओढ़नी का टुकड़ा था. मेरा हृदय कसमसा उठा. क्या घृणा और प्रतिहिंसा का दावानल उन सबको समूचा ही लील गया? इस आशंका ने मुझसे एक विश्वास छीन लिया जिसके भरोसे मैं तीन दिन से घर में निश्चिंत बैठा था. . .कि पप्पी लोग इतने भले हैं, उनका कोई क्यों कुछ बिगाड़ेगा! उनका तो कभी किसी से झगड़ा भी नहीं हुआ.

कहां है पप्पी? मेरा हमदम, मेरा दोस्त, मेरा सहपाठी. हम दोनों साथ-साथ बी-एस-सी. फाइनल के छात्र थे. कर्फ्यू लगने के पहलेवाले रोज हम दोनों कालेज से एक ही साइकिल पर लौटे थे. . . वह साइकिल जली हुई बगीचे में पड़ी थी.

अगले दिन फिजां ही बदल गयी. अपने और पराये का नये सिरे से बंटवारा होने लगा. अखबार में, रेडियो पर, अफवाहों में, घरेलू बातचीत में. हर जगह. मगर मुझे फिर भी पप्पी का परिवार बेगाना नहीं लगा. उसके पापा को मोहल्ले के बच्चे अंकल कहते थे, उसकी मम्मी को आंटी. उससे ज्यादा किसी पहचान की जरूरत अभी तक किसी को पड़ी हो ऐसा याद नहीं आता. मैं लगभग रोजाना उसके घर जाता था.

पप्पी लोगों की एक चक्की थी, एक आयल एक्सपेलर था. पप्पी के पापा दिनभर उसी में लगे रहते थे. बहुत सादे कपड़े पहनते थे और हर किसी को पहले ही नमस्ते कर लेते थे. मैं तो हमेशा से मोहल्ले में औरतों के बीच उनके लिए यही सुनता आया था कि. . .बड़े शरीफ आदमी हैं. बड़े नेक बंदे हैं. बड़े कारीगर हैं. हां, सचमुच वह कारीगर थे. घड़ी, सिलाई की मशीन, मोटरसाइकिल, यहां तक कि रेडियो भी ठोंक-बजाकर सही कर देते थे.

प्रकाश ने आवाज दी तो मेरा ध्यान टूटा. वह बाजार करके आ रहा था, "अबे जल्दी जाओ, वहां बाजार खाली हुआ जा रहा है, जब तक तुम पहुंचोगे कुछ नहीं बचेगा."

मैंने रुककर उससे पूछा, "प्रकाश, पप्पी लोगों का क्या हुआ?"

वह उदास होकर बोला, "उनके साथ बहुत बुरा हुआ मगर जान बच गयी. सामान सब जाता रहा. परसों रात पुलिस की गाड़ी में बैठकर वो लोग कैंप में चले गये. पहले तुम बाजार हो आओ फिर मौका मिला तो मेरी तरफ आना, तब तुम्हें सब बताऊंगा."

बाजार में पहुंचकर देखा, बाजार को फालिज मार गया था. आधा बाजार जिंदा था, आधा मर चुका था. जो दुकानें लुटी थीं वो पूरी तरह लुटी थीं और जो बची थीं वो भी पूरी तरह बची थीं. एक-एक दुकान पर ग्राहक छत्ते की तरह छाये हुए थे.

बाजार में खरीददारों से ज्यादा पुलिसवाले थे. अपनी गाड़ियों और राइफलों के साथ. शायद इसी वजह से दुकानदारों ने चीजों के भाव नहीं बढ़ाये थे. देहात से सब्जीवाले गट्ठर बांधे चले आये थे. और बगैर मोल-तोल के अंदाजे से उठा-उठाकर बेच रहे थे. पंसारियों के यहां चीख-पुकार मची थी. चाय थी तो चीनी खत्म हो गयी थी, तेल था तो घी नहीं था. मिट्टी के तेल की कहीं खुशबू भी बाकी नहीं रह गयी थी.

मैं उस दुकान पर जा खड़ा हुआ जहां से हमारे यहां माहवारी भुगतान पर सामान जाता था. उसने इशारे से मुझे कुछ देर ठहरने को कहा. इसका मतलब था— अरे भई तुम्हारे, लिए मेरे पास सब कुछ है, बस जरा भीड़ कम हो जाने दो.

दुकान पर खड़े लोग बाजार लुटने का किस्सा कह-सुन रहे थे. लब्बोलुआब यह था कि एक भीड़ थी जिसमें कुछ लोगों के पास शटर और ताले तोड़ने की विद्या और औजार थे. एक-एक करके शटर उठते और भीड़ उन्मुक्त होकर दुकान पर टूट पड़ती. जिसके हाथ जो लग जाये, आपस में भी नोंच-खसोट चल रही थी. गल्ला, जूते, शृंगार प्रसाधन, ऊन, कपड़े, बर्तन और फ्रिज-टी.वी. लूटे गये. इस भीड़ में, लोग कह रहे थे कि झोंपड़पट्टी में रहनेवाले मजदूर किस्म के लोग ज्यादा थे जिन्होंने पैदा होने के बाद से अब तक इस आधुनिक संसार का शायद ही कोई सुख भोगा हो. उन्हें सिर्फ लूटने से मतलब था. फ्रिज, टी.वी. और गीजर ले तो गये मगर अपने दड़बे में पहुंचकर एहसास हुआ कि बगैर बिजली के सब बेकार हैं. हां, क्रीम पाउडर, ब्रेसरी, स्टील के बर्तन, बिस्कुट, ग्लूकोज जैसी चीजों का जायका उनमें से कुछ तक जरूर पहुंचा होगा.

"हां जी, आप बताइए, क्या-क्या चाहिए." दुकानदार ने कहा तो मैं चौंककर फिर से खुले हुए कर्फ्यू के बीच लौट आया. मैं घर से सामान की सूची बनाकर लाया था, वही थैले और डिब्बों समेत उसे थमा दी.

अपना पूरा सामान बटोरकर साइकिल पर लादा, आगे चला तो क्या देखता हूं कि एक हलवाई के यहां जलेबी बन रही है और लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्मागर्म जलेबी तुलवाने के लिए लाइन लगाकर खड़े हैं. लाइन में लगकर सौम्यता और धैर्यपूर्वक कोई भी काम किया जाना सभ्यता का सूचक है. मैं इस सभ्य पंक्ति में जा खड़ा हुआ. सोचा पांच सौ ग्राम जलेबी लेता चलूं. घरभर के मुंह का स्वाद अच्छा हो जायेगा. लाइन में खड़े-खड़े मैंने दो-तीन भयावह किस्से सुन जिन्हें अफवाह माना. नहीं मानता तो दिल में और ज्यादा दहशत पैदा होती.

जलेबी की लाइन में एक मोटा काला आदमी मेरे पीछे खड़ा था. बड़बड़ाते हुए बोला, "बहुत कस के कटाई हुई है इन सबकी."

मेरे मुंह से निकल गया, "मगर यह तो बहुत बुरा हुआ."

वह नाराज हो गया. ज्यादा बड़बड़ाने लगा. उसके कहने का मतलब यही था कि मेरे जैसे लोग, जिनका चिड़िया जैसा दिल होता है, हमेशा ज्यादा मार खाते हैं, और जब मार खाते हैं तो कोई नहीं पसीजता. . ...जब किसी और को मार पड़ने लगती है तो चिड़ी जैसे दिलवाले यह भूलकर कि वह खुद भी मार खा चुके हैं, सहानुभूति से भर उठते हैं.

मैं सहमकर चुप हो गया क्योंकि लोग उसकी हां में हां मिलाने लगे थे. शुकर हुआ कि मेरा जलेबी का नंबर आ गया. ताजा जलेबी की सोंधी-सोंधी खुशबू मेरे दिलो-दिमाग पर छा गयी. मैंने लिफाफा झोले में डाला कि मुझे पप्पी का खयाल आ गया. कहां होगा वह ? कैंप में, वहां पता नहीं खाना भी ठीक से मिलता होगा या नहीं? मन में एक उमंग जागी कि साइकिल पर तेजी से पूछता-पाछता कैंप तक हो आऊं. वहां पप्पी दिखायी दे तो उसे जलेबी देकर चला आऊं. मुझे याद आया कि बेबी को मिठाई बहुत पसंद थी. उसे कुछ न मिलता तो हर समय गुड़ ही खाया करती थी. उसकी मम्मी उसे 'चीनी की चींटी' कहती थीं.

कर्फ्यू के दिनों में अखबार सब लोग मिल-बांटकर पढ़ते थे. अखबार में कई कैंपों के चित्र और विवरण मैं पढ़ चुका था. मैं सोच रहा था कि हो न हो पप्पी लोग हमारे नजदीकी थाने के पासवाले कैंप में होंगे. वहां तक जाने का इरादा करके साइकिल पर सवार हुआ कि पुलिस की जीप माइक्रोफोन पर 'कर्फ्यू लागू हो गया है. आप लोग अपने-अपने घरों के अंदर जायें' की घोषणा करती हुई निकली. उसके बाद तो बाजार में भगदड़ मच गयी.

पैट्रोल कार में फिट किये गये भोंपू की घर्र-घर्र सुनकर बाजार से लोग उल्टे पैर घर की ओर चले जा रहे थे. मेरा मन अजीब-सी ऊहापोह में था. साइकिल घर की ओर थी लेकिन दिमाग में एक फितूर उठ रहा था—लगे हाथ एक चक्कर कैंप का भी लगा आऊं. कौन ज्यादा दूर है. जब तक सड़कों पर शमसानी सन्नाटा आये, कच्चे रास्ते से थाने के पासवाले कैंप में एक बार हो आऊं. शायद पप्पी से मुलाकात हो जाये!

मैं और पप्पी लंगोटिया यार थे. बचपन में जितनी शैतानियां हो सकती थीं, हमने मिलकर कीं. दोपहर को सन्नाटे में पेड़ों पर चढ़ना, अमरूद और अनार चुपके-से तोड़ लाना, कंचे, गिल्ली, काई-डंडा और स्टापू. यह स्टापू ऐसा खेल था जिसे हम लड़कियों के साथ खेलते थे. बेबी स्टापू में हम दोनों को आसानी से हरा देती. मगर पेड़ पर नहीं चढ़ पाती थी. इसके लिए उसने हम लोगों की बहुत खुशामद की. पसीजकर एक दिन मैंने उसे पेड़ पर चढ़ना सिखाया. उसके बाद हम जब भी काई-डंडा खेलते वह भी पेड़ पर चढ़कर बैठ जाती. एक बार हमने घर से पैसे चुराये और कई तरह की मजेदार चीजें खायीं. मसलन चूरन, आमपापड़, लैय्या पट्टी, आइसक्रीम, गोलगप्पे वगैरह. गलती यहीं हो गयी कि एकाध चीज बेबी को भी खिला दी. उस समय तो उसने बहुत खुश होकर आइसक्रीम खायी लेकिन घर में जाकर शिकायत भी कर दी. हम दोनों की अपने-अपने घर में कस के कुटैया हुई. नतीजन, हमने बेबी को अपने साथ खिलाना बंद कर दिया. पर वह कहां माननेवाली थी.

साइकिल का अगला पहिया एक गढ़े में जा घुसा तो मैंने पाया कि मैं घर के बजाय, एक कच्ची पगडंडी पर बढ़ता जा रहा हूं, थाने की तरफ. सड़क-सड़क जाने पर थाना मुश्किल से डेढ़-दो किलोमीटर दूर रहा होगा. इस कच्चे रास्ते के शार्टकट से दस मिनट में वहां पहुंचा जा सकता था. यह रास्ता कुछ खेतों के बीच से होकर जाता था. यह खेत अवकाश प्राप्त कुछ फौजियों के थे. कुल मिलाकार इस रास्ते में पुलिस होने की संभावना नहीं के बराबर थी. खतरा वापसी के समय था जब मुझे घर जाने के लिए सड़क पर आना पड़ता. हमारे तो नजदीकी चौराहे पर ही पुलिस के ठट्ठ के ठठ्ठ जमा थे. उनके रहते क्या मजाल कि चिड़िया का पूत भी बगैर घुड़की या डंडा खाये वहां से गुजर जाये. पप्पी के पास जाने की उमंग में पुलिस की चिंता ज्यादा देर नहीं टिकी.

बचपन में साथ खेले. एक साथ पढ़ाई शुरू की. एक ही क्लास में पास-पास बैठते रहे. पप्पी के चेहरे पर एक दुर्लभ किस्म का भोलापन उन दिनों भी था, अब भी है. एक बहुत रगोचड़ मिजाज के टीचर थे. एक दिन मजाक में, उनके आने से पहले, मैंने अपनी क्लास के ब्लैक-बोर्ड पर उनका कार्टून बना दिया. आये तो देखते ही आग बबूला हो गये. काफी तफशीश की मगर कोई सुराग उनके हाथ नहीं लगा. उन्होंने क्या किया कि पप्पी को धर दबोचा. शायद उसके भोलेपन को देखकर, "बताओ. किसने बनाया है, नहीं तो हड्डी-पसली एक कर दूंगा." वह

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपचाप पिटता रहा. बहुत तरह से सजा मिली थी उसे. मुर्गा भी बनाया गया मगर उसने नहीं बताया. उसे पिटते देखकर मुझे मन ही मन क्लेश हो रहा था. मगर जानता था कि अपराध स्वीकार कर लूंगा, तो भी बहुत कस के धुनाई होगी. उन टीचर के मन में दया-माया का नाम भी न था. पप्पी को एक कोने में खड़ा रहना पड़ा, पूरे पीरियड.

मैंने झोले में रखा जलेबी का लिफाफा हथेली से छूकर देखा. गर्म था. इतना तो नहीं जितना दूकान से लेते समय था मगर दौड़कर आये किसी धावक के शरीर की तरह उष्ण तो था ही . . .वहां शरणार्थी कैंप में पप्पी भूखा-प्यासा और उदास होगा. शायद वह मेरे आने की राह देखता हो. याद तो खैर बार-बार करता होगा. अब तक तो सोचने भी लगा हो कि अच्छा तोताचश्म निकला मेरा दोस्त. एक दफे हाल पूछने भी नहीं आया.

लौट जाने का विचार त्यागा. सोच लिया, चलते हैं, जो होगा देखा जायेगा. चार दिन बाद बाजार खुला था. हलवाइयों की दुकानें यूंही कम खुली थीं. खुली थीं तो कोई ताजा मिठाई उनमें नहीं हो सकती थी. एक ने हिम्मत करके जलेबियां निकाल दीं तो लोग कैसे टूट पड़े थे. सचमुच शहर की पिछले चार दिनों से जो हालत थी उसमें गर्म जलेबियों से अच्छा उपहार कुछ नहीं हो सकता था. चाहे घर ले जाता या कैंप में पप्पी लोगों के लिए.

जलेबियों की रचना ही कितनी अजीब है. छोटे-छोटे व्यूह, आपस में गड्ड-मड्ड जैसे मोहल्ले में अलग-अलग परिवार एक दूसरे से जुड़े हुए रहते हैं. मुझे उस घड़ी जलेबी मिठाई नहीं एक अबूझ पहेली-सी लगी. अपने तमाम पेंचओखम के बावजूद इसमें कितनी चाशनी भरी होती है. उष्ण चाशनी जिसका कोई मुकाबला नहीं. जलेबी कितनी ही शुष्क हो जाये. चाशनी अंदर बनी रहती है. लेकिन मेरे शहर के लोगों के अंदर की चाशनी कैसे सूख गयीं. हम अपने मोहल्ले में जाने कब से घुले-मिले रहते आये थे. छोटी-मोटी खटपटों को छोड़ दें तो जाने कितना लगाव था आपस में. कई तरह के अपरिमापित रिश्ते थे, रिश्ते हैं, फिर ऐसी गाज क्यों आन गिरी!

मैं देख रहा था, सुन रहा था, पढ़ रहा था कि नये सिरे से अपने और पराये बनाये जा रहे हैं. . . खेत में पौधे ज्यादा नहीं उठे थे. एक जगह मटर के फूल देखकर नीली आंखोंवाली बेबी फिर याद आ गयी. मेरे और पप्पी के सामने भले ही बक-झक कर लेती हो लेकिन बाहर-वालों के लिए एकदम छुई-मुई-सी थी. लाजवंती. उस मासूम ने इस झंझावत को कैसे झेला होगा.!

मुझे लग रहा था कि बेबी चाहे कितनी ही दुखी क्यों न हो, अगर मैं उसके लिए जलेबियां लेकर पहुंच जाऊंगा तो कुछ देर के लिए ही सही, वह खुश जरूर हो जायेगी. पप्पी तो मुझे देखकर जी उठेगा. . . इन्हीं खयालों में डबा में कब खेत-खेत होते थाने के सामने जा निकला, यह पता ही नहीं चला.

कैंप के प्रवेशद्वार पर राइफलधारी संतरी सन्नद्ध खड़े थे. मगर कोई रोक-टोक नजर नहीं आयी. वाहन बाहर ही पार्क करने का निर्देश एक तख्ती पर लिखकर लगाया गया था. मेरी समझ में नहीं आया कि साइकिल का क्या करूं.

तभी एक रिक्शे पर अमरूद के टोकरों के साथ दो स्वयंसेवक वहां आये. उन्हें रिक्शे सहित अंदर जाने दिया गया. मुझे अपनी समस्या का हल मिल गया. मैं भी झोलों से लदी साइकिल लेकर अंदर चला गया, जैसे सहायता सामग्री लेकर अंदर जा रहा होऊं. मेरी मुद्रा इतनी सटीक थी कि भीतर जाते ही एक स्वयंसेवक बोला, "कृपया सामान सहायता-शिविर में जाकर दें. वहीं से वितरण की व्यवस्था की जायेगी."

मैं अंदर का दृश्य-देखकर द्रवित हो उठा. जगह-जगह हताश, दुखी और जख्मी परिवार जमीन पर बैठे थे. डबलरोटियां बंट रहीं थीं. इसके लिए एक लंबी लाइन लगी थी. मैंने देखा, कुछ देर तक पूरी रोटी बांटी गयी फिर इच्छुक भीड़ को देखते हुए आधी-आधी दी जाने लगी. उस बड़े मैदान में इतने लोग भरे थे कि पप्पी को ढूंढ लेना आसान नहीं था. जगह-जगह कंबल डालकर लोग बैठे या लेटे थे. कुछ चूल्हे जल रहे थे, जिन पर बटलोइयां चढ़ी थीं.

वहां दानखाता ही नहीं था, नगदनारायण के चाहनेवाले भी कुछ वेंडरनुमा लोग थे जो चाय, बिस्कुट, पान मसाला और रोटियां बेच रहे थे. हर चीज दोगुनी महंगी थी. मगर यही क्या कम था कि उस कर्फ्यू-ग्रस्त आलम में पैसे देकर मिल रही थी. चाय का कप एक रुपये का था.

मैं एक सिरे से दूसरे तक पहुंच गया लेकिन न तो पप्पी कहीं दिखा, न ही उसके घर का कोई प्राणी. डाक्टरी सहायता के कैंप में भी देख आया. कैंप में बीसियों लोग ऐसे थे जिन्हें चोटें लगी थीं या जल गये थे. हर तरफ मातम और उदासी का साम्राज्य था. शिविरार्थियों के कुछ स्वयंभू नेता भी भाग-दौड़, बहस-मुबाहिसें करते नजर आ रहे थे. कैंप के अंतिम छोर पर एक नल था जिस पर उस समय बगैर किसी परदे के औरतें नहा रही थीं. कुछ कपड़े धो रही थीं, बगैर साबुन के.

हां, बच्चे, खासतौर पर छोटे बच्चे भय और आतंक से ही नहीं असुविधा से भी बेपरवाह होकर खेल रहे थे. मैं हैरान हो रहा था कि पप्पी कहां गया. . . तभी किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा, नाम लेकर पुकारा. देखा, हमारे मोहल्ले का बंटी था, हमारे साथ ही पढ़ता था. बड़े प्यार से मिला. मैंने उससे पप्पी के बारे में पूछा तो उसने इशारे से बताया कि थाने के कंपाउंड में एक नाली के पास जमीन पर कंबल बिछाकर पप्पी के घर के लोग बैठे थे. मैं भागकर उनके पास गया.

पप्पी नहीं था, बाकी सब थे. मैंने साइकिल खड़ी की और हाथ जोड़कर सबको नमस्ते की. पहले तो वे कुछ हैरान-से हुए फिर चेहरों पर कोमल भाव उभर आये. उसके पापा उठ खड़े हुए. उनके हाथ जुड़े हुए थे. मुझे बहुत संकोच हुआ, फिर उन्होंने मुझे गले से लगा लिया.

"मेरा सब कुछ स्वा (हा) हो गया मेरे बच्चे, मेरा सब कुछ स्वा हो गया! हम तो लुट गये!" कहते-कहते उनका गला रुंध गया और वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे.

कुछ देर तक मैं अपराधबोध से ग्रस्त, खामोश रहा फिर हिम्मत बांधकर पूछा, "पप्पी कहां है?"

अंकल दुखी स्वर में बोले, "देखो, किसी लाइन में खड़ा होगा. यहां एक आदमी तो दिन भर लाइन में खड़ा होने के लिए चाहिए. वह शायद बिस्कुट लेने गया है."

उसकी मम्मी, बेबी की ओर नाराजी से देखते हुए बोलीं, "इस मरी को बिस्कुट के बिना चैन नहीं, रोटी तो इसने छुई भी नहीं. समझती है कि घर में बैठी है. इसको तो मीठा चाहिए . . . वो बिचारा सुबह से बिस्कुट के चक्कर में दौड़ रहा है. वहां आते हैं और खत्म हो जाते हैं."

बिस्कुट और मेरी जलेबियों को सबने चखा. मैं उनके साथ कंबल पर बैठ गया. सबने एक-एक जलेबी ही खायी. बंटी को बुलाकर भी खिलायी. बाकी सब जलेबियां पप्पी के चाचा ने बेबी के सामने रख दीं. उसने शरमाकर हथेलियों में अपना मुंह छिपा लिया.

बाद में मैं और पप्पी दूर जाकर बातचीत करने लगे. पप्पी ने उस भीषण हादसे के बारे में बताया जो उसके घर पर हुआ था. वे लोग दरवाजे बंद करके डर के मारे दुबके पड़े थे. बाहर से गर्जन-तर्जन की आवाजें आ रही थीं. उसके पापा को पूरी उम्मीद थी कि उनको कोई कुछ नहीं कहेगा. शुरू में ऐसा ही हुआ भी. भीड़ दो-तीन बार उनके घर से गुजर गयी. दोपहर तक वे काफी आश्वस्त हो चुके थे और खाना बनाने की तैयारी हो रही थी कि पड़ोस के मास्टर साहब दबे पांव उनके घर आये. बोले, "अभी तक किसी तरह उन लोगों को यहां से दूर रखा गया है मगर अब ज्यादा देर नहीं कि आपके घर पर भी वही सब हो. . . आप सब पीछे के दरवाजे से मेरे घर में आ जायें." जैसे ही वे मास्टरजी के घर पहुंचे, उनकी गली में उन्मत्त भीड़ ने प्रवेश किया. उस गली में एक इनका ही घर था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पप्पी ने बताया कि कैंप में शुरू के दो दिन तो खाने के नाम पर सिर्फ ब्रेड स्लाइस मिले जिन्हें पानी की मदद से गले उतार लिया गया. अब हरेक परिवार को दाल-चावल और लकड़ी दी गयी है लेकिन नमक, चीनी, चाय की पत्ती वगैरह कुछ भी नहीं है.

मैंने अपनी साइकिल के हैंडिल से सामान से भरे झोले उतारकर पप्पी की मम्मी के सामने रख दिये, "आंटी, मेरी मम्मी ने आपके लिए यह सामान भेजा है. आप देख लीजिए.

उन्होंने थैले से चाय, चीनी मसाले आदि निकालते हुए कहा, "तुम्हारी मां बड़ी भली औरत है. मेरी और उसकी बड़ी पुरानी दोस्ती है. हमेशा कीर्तन में आती है."

उधर कैंप में हलचल मची . . . 'नेताजी आ रहे हैं!' जिसे देखो प्रवेश-द्वार की ओर जा रहा है. शरणार्थियों के नेता अपनी मांग सूचियां लेकर दौड़े. नेताजी की शोभायात्रा ने कैंप में प्रवेश किया. उनके चेले-चांटी जिंदाबाद करने लगे. एक सरकारी सूटवाला वीडियो कैमरा लिये नेताजी के आगे पीछे फिल्म उतारता चला——नेताजी द्वारा मांगपत्र ग्रहण, नेताजी द्वारा कंबलों का वितरण, नेताजी द्वारा बीमार और घायलों को फलों का दिया जाना, एक जार-जार रोती बुढ़िया को ढाढस बंधाते हुए नेताजी, यह फिल्मीकरण बराबर चलता रहा. इस बीच किसी ने कह दिया कि यह फिल्म दूरदर्शन पर दिखायी जायेगी. फिर क्या था? हर कोई कैमरे की जद में पहुंचने के लिए बेकरार. एक अजीब हंगामा उपस्थित हो गया. नेताजी के सहायक वहां व्यवस्था बनाने की प्राणप्रण से चेष्टा करते रहे मगर कौन सुनता है. नतीजतन जब तक नेताजी कैंप में रहे, सब कुछ कृत्रिम और नाटकीय रहा. त्रासदी की विभीषिका सिमटकर छोटी हो गयी. ऊबकर हम दूर हट गये.

मैंने पप्पी से पूछा, "तुम लोग कब वापस आओगे?"

वह मायूसीभरे स्वर में बोला, "अब क्या वापस आयेंगे. घर तो जल गया. सामान सब लुट गया. जान बच गयी यही बहुत है."

मैंने कहा, "नहीं पप्पी, घर का कुछ नहीं बिगड़ा है. नये खिड़की दरवाजे लग जायें तो दीवारों को मैं और तुम मिलकर पोत लेंगे. घर कहां जला है, सिर्फ दीवारें झुलस गयी हैं."

वह गहरी निश्वास छोड़कर बोला, "पापा के ऊपर है. वो तो कह रहे थे कि हम लोग अपने गांव चले जायेंगे. गांव में हमारा बहुत बड़ा घर है. . . यहां का क्या भरोसा! तुमने वो सीन देखा नहीं. . ."

मैंने उसे बांहों में भरकर कहा, "अब कुछ नहीं होगा पप्पी! तुम लोग कहीं मत जाओ. हम सब मिलकर तुम्हारे मकान को फिर से नया कर डालेंगे." प्रत्युत्तर में उसने मुझे एक दो-ढाई साल की सुनहरे बालों-वाली लड़की दिखाते हुए कहा, "जानते हो, इस नन्हीं के घर में छोटे-बड़े मिलाकर ग्यारह लोग होते थे. अब सिर्फ यही बची है. इसे यहीं किसी ने गोद ले लिया है. . . अब तो बहुत डर लगने लगा है."

मैंने खामोशी से आसमान की ओर देखा. इस उम्मीद से कि शायद वहां से प्रेम की वर्षा हो. भाईचारे के बादल खूब उमड़-घुमड़कर बरसें इतना बरसें कि धरती जलमग्न हो जाये. लेकिन आसमान एकदम तटस्थ था, शांत. सांझ घिर रही थी. मुझे लौटने की फिक्र हुई. यहां से कर्फ्यू की पाबंदियों के बीच डेढ़-दो किलोमीटर का फासला एक नंगे रास्ते पर तय करना था.

मैंने साइकिल उठायी, तब तक पप्पी की मम्मी ने भी चूल्हा जला लिया था. मुझसे मानो मजाक में कहने लगीं, "कहां जाते हो, रोटी खाकर जाना. बना रही हूं."

खेतों के बीच साइकिल चलाते हुए मैं बराबर भगवान से प्रार्थना करता रहा कि आज किसी तरह बचा ले प्रभु! पुलिसवालों का क्या भरोसा. दो डंडे मार के छोड़ दें तो ठीक है लेकिन हाथ-पैर तोड़कर बंद कर दें तो इस समय कोई बचाने भी नहीं आयेगा! अंधेरा छाने लगा था. ऐसे में मुझे खतरनाक किस्म का आदमी समझकर वह गोली भी दाग सकते थे.

कच्चे रास्ते से सड़क पर आया तो वहां लंबी होकर पड़ी मुर्दनी को देखकर मेरी रूह कांप गयी. जहां तक नजर जाती थी एक खौफनाक सन्नाटा दिखायी देता था. मैंने साइकिल की गति बढ़ायी. चौराहे पर पुलिस वाले नहीं थे. जान में जान आयी. मन ही मन अपने इष्टदेव को प्रणाम किया...दीन दयालु बिरद संभारी...चौराहे पर आकर मैं गली की ओर मुड़ा. घरों के दरवाजे बंद थे. दूर कहीं से गश्त करते हुए सिपाहियों के बूटों की आवाज और सीटियां सुनायी पड़ रही थीं. जैसे ही मैंने गली में प्रवेश करना चाहा, पीछे से किसी ने कसकर साइकिल के कैरियर पर लाठी से प्रहार किया.

मेरा सर्वांग हिल उठा. तब तक एक मेरी पीठ पर और अगले ही क्षण मैं सड़क पर लेटकर मछली की तरह तड़पने लगा. साइकिल कहां जा गिरी, मुझे होश नहीं रहा.

"देखो साले को कर्फ्यू में मटरगश्ती कर रहा है. . . जैसे बहन. . . मजिस्ट्रेट का बाप हो! तोड़ दो साले को!"

वह दो थे. दोनों के हाथ में लाठी, "कौन है तू?"

मैंने छटपटाते हुए नाम बताया. उनमें से एक आगे बढ़ा. उसने लाठी से मुझे कोंचा, "उठ साले, उठ. . ." मुझमें उठने की ताकत नहीं थी. फिर भी कोशिश करके किसी तरह उठ बैठा. उसने कड़ककर कहा, "उठता है कि ये डंडा तेरे. . . !" डर के मारे मैं जल्दी से खड़ा हो गया. दूसरे ने मेरी तलाशी ली. जेबों में कुछ था ही नहीं.

"क्या करता है? चोरी?"

"नहीं साहब, पढ़ता हूं. बी. एस-सी. का स्टूडेंट हूं."

"तेरी बी. एस-सी. करवा दूं यहीं! कहां गया था तू मां के?"

"जी कैंप में सामान देने गया था."

"क्यों किसी नेता की औलाद है क्या? पास है तेरे पास?"

"नहीं जी." यह सुनते ही दोनों मुझ पर पिल पड़े.

जब उन्हें लगा कि खुराक काफी हो गयी तो उनमें से एक ने मेरे हाथ में साइकिल पकड़ाकर कहा, "अब मत निकलना कर्फ्यू में घर से बाहर. . .चला जा सीधे-सीधे!"

दूसरा बोला, "देखो साले बी. एस-सी. को. . . दो हाथ पड़े कि मूत निकल गया."

मेरे बदन की एक-एक हड्डी दर्द से कराह रही थी. लग रहा था किसी ने मुझे पूरा खोलकर फिर से जोड़ दिया है.

पप्पी के घर के सामने से गुजरा तो अंधेरा, धुंए से काली पड़ी दीवारों को अपने आगोश में समेटे था. आदमियों के बिना वह मकान मृतहा लग रहा था. मैंने अपने-आपसे कहा कि आज स्कूल के दिनों का उधार चुकता कर दिया. एक दिन पप्पी ने मेरी वजह से मास्टर से मार खायी थी. रही सही कसर घर पहुंचकर पूरी हो जायेगी जब घर के लोग देखेंगे कि कर्फ्यू के बावजूद मैं मटरगश्ती करके आ रहा हूं और सामान तो क्या, झोले और डिब्बे भी कहीं दे आया हूं. भले ही घर में आज चाय न बने, खाना न बने. □

● 245/6, जे. के. कालोनी, कानपुर-208010

स्याह हाशिया

□ मंटो

"देखो यार! तुमने ब्लैक-मार्किट के दाम भी लिये और ऐसा रद्दी पेट्रोल दिया कि एक दुकान भी न जली." ■

CC-0. In Public D

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आदमी

इरविंग वैलेस

दोपहर के सवा तीन बजे के करीब एडना फास्टर ने अपना टेलीविजन बंद कर दिया. अभी-अभी जो घिनौना दृश्य उसने टेलीविजन पर देखा था, उसे अपने मन से पोंछ डालने के उद्देश्य से नयी पोशाक पहनकर बाहर जाने का प्रोग्राम बना लिया.

जो कुछ घटा था और घट रहा था, उसके बावजूद वह सोच रही थी कि क्या उसे राष्ट्रपति के सैक्रेटरी के पद से त्यागपत्र देकर जार्ज मुर्डोक की पत्नी बन जाना चाहिए, जिसे एक विशाल समाचारपत्र समूह में एक अच्छी नौकरी मिल गयी है.

लेकिन जब से राष्ट्रपति पर महाभियोग की कार्रवाई मुख्य न्यायाधीश जानसन के समक्ष आरंभ हुई थी, उसका सारा समय इस चिंता में ही जाता था कि पता नहीं, इस महाभियोग को लगानेवाले काले राष्ट्रपति को अपदस्थ करने की अपनी साजिशों में कामयाब होंगे या नहीं. राष्ट्रपति के लिए उसके मन में बड़ा आदर था.

राष्ट्रपति पर जो महाभियोग लगाये गये थे, उनकी एक धुंधली-सी ही याद उसे थी. ईटन में जो गोलीबार हुआ था, उसका आदेश देते समय राष्ट्रपति ने कानून-का उल्लंघन किया था. दूसरा महाभियोग था कि वे कभी-कभी बहुत ज्यादा शराब पीकर नशे में धुत्त हो जाते थे. तीसरा अभियोग यह था कि उन्होंने अपने स्टाफ की एक महिला सैली वाटसन के साथ दुर्व्यवहार किया था. महाभियोग से जुड़े लोगों ने उसके अपार्टमेंट पर भी धावा बोला था और उसका हलफिया बयान तथा डायरी लेकर ही उन्होंने उसका पीछा छोड़ा था.

अगले दिन दोपहर को हर अमरीकी की भांति वह भी टेलीविजन पर महाभियोग की कार्रवाई देख रही थी. जो नाटक वह टेलीफोन पर देख रही थी, उसके घिनौने पात्रों को वह अर्से से देखती आ रही थी और उनके झूठ सुनते-सुनते तंग आ चुकी थी. . . उसने टेलीविजन बंद कर दिया और राष्ट्रपति कार्यालय की ओर चली. उसे आशा थी कि वहां के संवाददाता-कक्ष में उसकी भेंट मुर्डोक से हो सकेगी.

एडना अपने कार्यालय की ओर बढ़ी ही थी कि उसने सहसा मुर्डोक को अपने सामने मुस्कराते हुए पाया. वह कह रहा था, "तुम कब आयीं."

"मैं यहीं थी. तुम्हें देखा भी था, मगर मैं तुमसे मिलना नहीं चाहती थी, मुझे तुमसे यह आशा नहीं थी मुर्डोक." उसका स्वर बड़ा तीखा था, "क्या. . .क्या बात है डियर, तुम इतनी नाराज क्यों हो?"

"इसलिए कि तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया. मैंने राष्ट्रपति महोदय के निजी जीवन की बातों के बारे में अपने भावी पति मुर्डोक को बताया था, पत्रकार मुर्डोक को नहीं. तुमने वे सब बातें महाभियोग पक्ष के लोगों को बता दीं और उन्होंने मेरे अपार्टमेंट में ही मुझे कितना जलील किया कि तुम्हें क्या बताऊं. बताने से अब कोई लाभ भी नहीं है. मैंने तुम्हारी एंगेजमेंट रिंग तुम्हें लौटा दी है. तुम्हें अपने उप-कक्ष में मिल जायेगी." कहकर वह तेजी से आगे बढ़ गयी.

राष्ट्रपति के कार्यालय का भारी दरवाजा खोलकर जब वह अंदर घुसी तो उसने देखा, राष्ट्रपति डिलमैन गौर से टेलीविजन देख रहे हैं. महाभियोग की सुनवाई का कार्यक्रम था. वे इस कार्यक्रम को देखने में इतने अधिक व्यस्त थे कि उन्हें कार्यालय में एडना की मौजूदगी का पता उसके हल्के से खांसने पर ही चला. एडना को देखकर उनकी भौंहों पर हल्की-सी सलवटें पड़ीं और उन्होंने टेलीविजन बंद कर दिया और कोमल तथा सहानुभूतिपूर्ण स्वर में पूछा, "गुड आफ्टरनून मिस फास्टर, अब कैसी हो तुम?"

"मैं बीमार थी राष्ट्रपति महोदय, लेकिन अब पूरी तरह स्वस्थ हूं, मगर मैं काम करूं या नहीं, यह आपकी इच्छा पर ही निर्भर होगा. वैसे आप इजाजत दें तो मैं अपनी सफाई में कुछ कहना चाहूंगी."

"मिस फास्टर, जल्दी ही एक जरूरी मीटिंग शुरू होने वाली है. क्या तुम अपनी निजी समस्याओं को भुलाकर अपना पूरा ध्यान इस पर केंद्रित करने की स्थिति में हो?"

"जी राष्ट्रपति महोदय!" एडना के दिल की तेज धड़कनें अब नार्मल हो चली थीं. एक चुस्त सैक्रेटरी की भांति उसने अपना काम शुरू कर दिया. इंटरकाम बजते ही बाहर बैठे महत्वपूर्ण अधिकारी अंदर आये.

सबसे पहले प्रवेश किया सी. आई. ए. के डायरेक्टर मांट गुमरी स्कॉट ने. उनके पीछे आये जनरल जॉस्काविच. दोनों डिलमैन का इशारा पाकर उनके सामने रखी कुर्सियों पर बैठ गये.

चेयरमैन पिट फोर्टेने ने बड़े आक्रमणशील अंदाज में अपनी टोपी मेज पर फेंकी और सुरक्षा-सचिव कार्ल स्टीनबोनर की बगल में बैठते हुए कहा, "राष्ट्रपति महोदय, हम दोनों को यहां एक साथ किस जरूरी काम के लिए बुलाया गया है? दुनिया में चारों ओर अमन-चैन है और मेरी जानकारी के मुताबिक ऐसा कोई जरूरी सुरक्षा-संबंधी मसला नहीं है, जो हम दोनों के यहां आने का कारण बन सके."

डिलमैन ने जनरल के गुस्ताखी भरे कथन की ओर कोई ध्यान न देते हुए सुरक्षा सचिव को संबोधित करते हुए कहा, "आप दोनों को यहां इसलिए बुलाया गया है कि दूर अफ्रीका में एक ऐसा संकट विकसित हो रहा है, जिसकी ओर लापरवाही बरत कर हम अमरीका की सुरक्षा के लिए एक भीषण खतरा पैदा कर सकते हैं. मैंने और मिस्टर स्कॉट ने कल आपको इस संकट के बारे में आवश्यक सूचनाएं भेजी थीं."

"ओह!" फनफनाते हुए जनरल फोर्टेने ने कहा.

डिलमैन ने फिर जनरल की उपेक्षा करके सुरक्षा सचिव को संबोधित करते हुए कहा, "हां, वही! जब तक दुनिया में कोई भी ऐसा प्रजातंत्रीय देश है, जो हमारा दोस्त है, जिसकी स्वतंत्रता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रूस से खतरा है, तब तक हमें उस देश की सहायता करने को तैयार रहना होगा. अफ्रीका का बराजा देश ऐसा ही एक देश है, जिसकी स्वतंत्रता रूस की वजह से खतरे में है. हमारे पास इस बात के पक्के सबूत हैं कि रूस बराजा के राष्ट्रपति अंब्रोको को अपदस्थ करके उसके स्थान पर अपना कोई आदमी बैठाना चाहता है. हम रूस को ऐसा नहीं करने देंगे."

स्कॉट ने अपना ब्रीफकेस खोलकर उसमें से कुछ कागज निकाले और कहा, "सज्जनों, जैसे ही आप अपने कार्यालय में वापस लौटेंगे, आपको अपनी मेज पर इस सूचना की प्रतिलिपि मुहरबंद लिफाफे में रखी मिलेगी. इस सूचना के अनुसार रूस के 13000 सैनिक बराजा की सीमा पर प्रधानमंत्री कसातकिन के निर्देश की प्रतीक्षा में बैठे हैं. उसका इशारा पाकर वे बराजा में घुसकर या तो राष्ट्रपति अंब्रोको को गिरफ्तार कर लेंगे या मार डालेंगे और उसके स्थान पर कसातकिन को गद्दी पर बिठा देंगे. ये सैनिक और उनके अधिकारी आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों से लैस हैं."

डिलमैन ने कहा, "हमारे सामने दो ही विकल्प हैं. या तो हम साम्यवादियों को बराजा पर हमला करने दें या उसे नाकाम करने के लिए तुरंत ठोस और प्रभावी कदम उठायें. हमें अपनी मुस्तैद और कार्यक्षम डिवीजन फौरन वहां भेजकर रूस को बता देना चाहिए कि हम उसे बराजा पर अधिकार नहीं करने देंगे. क्या आप अपनी सबसे अच्छी डिवीजन को पंद्रह मिनट के नोटिस पर बराजा भेज सकते हैं?"

"हमारे पास इस समय सिर्फ एक ही ऐसी डिवीजन है, जिसे तत्काल बराजा भेजा जा सकता है और जो वहां रूस की ताकतवर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना का सफलतापूर्वक सामना कर सकती है." सुरक्षा सचिव ने डिलमैन से कहा, "उसके पास गाइडेड मिसाइल्स के आर्टिलिरी बटैलियंस भी हैं. फाइटर्स बांबर्स हैं, राकेट प्लेटफार्म हैं, इस डिवीजन का नाम हमने ड्रेगन फ्लाइज रखा है. आपने इसके बारे में. . . "जनरल ने कहा.

"ड्रैगन फ्लाइज, अच्छा नाम है. तो आप इस डिवीजन को तत्काल बराजा भेजने की व्यवस्था करें." राष्ट्रपति डिलमैन ने कहा.

'मिस्टर प्रेसीडेंट," जनरल फोर्टने ने उठकर कहा, "क्या इस कार्यालय में कोई ऐसा नहीं है, जिसे कुछ समझाया जा सके? हम जिस बराजा के प्रजातंत्र की रक्षा के लिए रूस के साथ न्यूक्लीय युद्ध की जोखिम उठाने वाले हैं, उसमें कौन रहते हैं, काले हब्शी लोग, अनपढ़ असभ्य, वे रूस के चंगुल में न फंसे, इसलिए हम सुसभ्य और आधुनिकतम सैनिक प्रशिक्षण-प्राप्त गोरे अमरीकियों की जानें दांव पर लगा रहे हैं. मैं नहीं समझता कि बराजा के काले हब्शी लोगों की खातिर एक भी गोरे अमरीकी सैनिक को अपने प्राण गंवाने चाहिए. अगर वहां अमरीकी भेजने ही हैं तो काले नीग्रो सैनिकों की एक डिवीजन भेजी जा सकती है और मैं उसकी व्यवस्था कर दूंगा."

"जनरल फोर्टने! . . . "राष्ट्रपति डिलमैन ने हठी स्वर में कहा, "मैं बराजा में सिर्फ ड्रेगन फ्लाइज को ही भेजना चाहता हूं."

"राष्ट्रपति महोदय, आप ऐसा नहीं कर सकते. मैं स्पष्टवादी आदमी हूं. इसलिए मैंने आपको साफ-साफ बता दिया है कि ड्रेगन फ्लाइज के सैनिक, जो सौ फीसदी गोरे अमरीकी हैं, कभी बराजा नहीं भेजे जा सकते. और चूंकि आप स्वयं काले हैं, इसलिए शायद आपके मन में यह सवाल चक्कर लगा रहा होगा कि इस डिवीजन में एक भी काला सैनिक क्यों नहीं है. . .? इसका सीधा-सादा उत्तर यह है कि हम आधुनिकतम सूक्ष्म अस्त्र-शस्त्रों को काले लोगों के हाथों में सौंपने की भूल नहीं कर सकते. और, इससे भी बड़ा कारण यह है कि काले लोग मोटे और मामूली कामों के लिए तो ठीक रहते हैं, लेकिन उनसे बारीक और गैरमामूली कामों की ज्यादा अपेक्षा नहीं की जा सकती है."

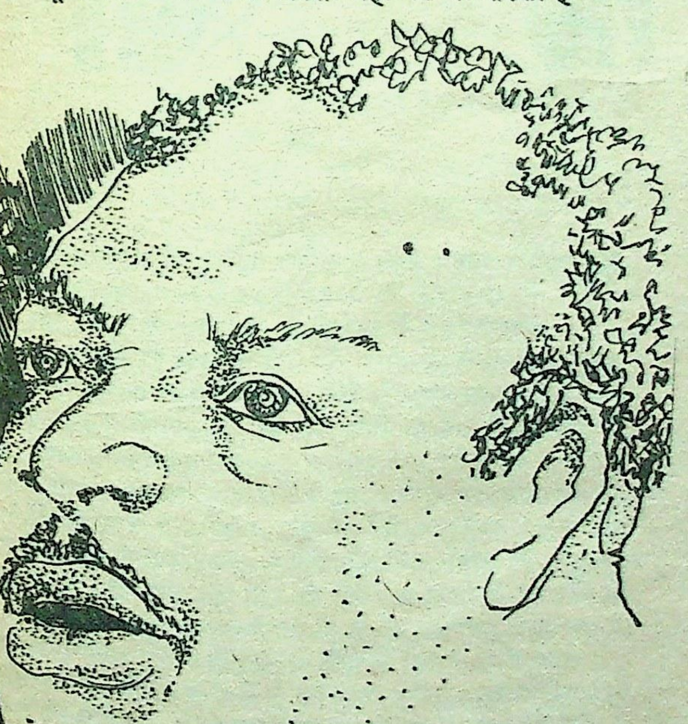

वह चाहे अमरीका हो या ब्रिटेन! वर्ग, वर्ण और रंगभेद पर आधारित सांप्रदायिक समस्याओं से भारत की तरह वे भी मुक्त नहीं हैं, पर उनकी समस्याओं के आकार-प्रकार कुछ और हैं. अमरीका की सांप्रदायिक समस्या का रूप क्या और कैसा है, इसका खुलासा कर रहे हैं अपने उपन्यास 'द मैन' के प्रस्तुत अंश में अमरीका के बहुपठित उपन्यासकार इर्विंग वैलेस—

यह जानते हुए भी कि जनरल अप्रत्यक्ष रूप से खुद उन्हीं पर वार कर रहा है और उन्हें नीचा दिखाने पर तुला है. डिलमैन चुप रहे और बड़े धैर्य के साथ जनरल की अपमानजनक बातों को सुनते रहे.

"अब जब कि मैंने आपको सारे सैनिक तथ्य साफ-साफ बता दिये हैं, मुझे उम्मीद है कि आप ड्रेगन फ्लाइज को बराजा भेजने के अपने निश्चय पर पुनर्विचार करेंगे. यदि मेरे सुझाव के बाद भी आपने ड्रेगन फ्लाइज को बराजा भेजने की अपनी जिद कायम रखी तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि सिर्फ इसी बात को लेकर गोरों और कालों के बीच सांप्रदायिक दंगे शुरू हो जायें. मैं भी एक अमरीकी नागरिक हूं और जानता हूं कि अमरीकी जनता कभी यह सहन नहीं करेगी कि जंगली काले लोगों की रक्षा के लिए, गोरे अमरीकी सैनिक अपने देश से हजारों मील दूर जाकर रेगिस्तान में या दलदले क्षेत्रों में जाकर लड़ें. और मेरा खयाल यह भी है कि अमरीकी कांग्रेस एक सेकंड के लिए भी इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करेगी. और अमरीकी सेना के एक उच्चाधिकारी की हैसियत से भी मेरा खयाल है कि आपको और आपके चमचों को छोड़कर कोई भी अमरीकी ड्रेगंस फ्लाइज को बराजा भेजने का अनुमोदन नहीं करेगा. और आपको यह बताने की जरूरत नहीं कि आप पर महाभियोग की सुनवाई सीनेट में मुख्य न्यायाधीश के सामने हो रही है और सारा अमरीका इस तमाशे को टेलीविजन पर देख रहा है. ऐसी हालत में आप यह निश्चय लेकर अपनी समस्याओं को और क्यों बढ़ा रहे हैं मिस्टर प्रेसीडेंट? क्यों आप अपनी राजनीतिक आत्म-हत्या करने पर तुले हैं? मैं आपको एक बार फिर यह याद दिलाना चाहता हूं कि जैसे ही यह खबर फैलेगी कि आपने गोरे अमरीकियों की एक डिवीजन काले लोगों की जान बचाने के लिए अफ्रीका भेजी है, सब गोरे अमरीकी बिना किसी भेदभाव के आपके विरुद्ध हो जायेंगे."

जनरल जॉस्काविच ने जनरल फोर्टने के इस लंबे भाषण को बीच में काटते हुए कहा, "आप राष्ट्रपति महोदय को बहुत-सी बातों की याद दिला रहे हैं जनरल फोर्टने, मैं भी आपको एक बात याद दिलाने की गुस्ताखी कर रहा हूं. यह बात किसी से छिपी नहीं है कि ड्रेगन फ्लाइज में सिर्फ गोरे सैनिक इसलिए हैं कि आज से दस वर्ष पूर्व इस डिवीजन का गठन करते समय आपने और पेंटागन के आपके साथियों ने पहले से ही यह तय कर लिया था कि उसमें काले नीग्रो सैनिकों को न प्रशिक्षण दिया जायेगा और न भर्ती किया जायेगा."

अब राष्ट्रपति डिलमैन से न रहा गया. उन्होंने भी खड़े होकर कहा, "जनरल, यदि आप यह आशा कर रहे हैं कि आगे चलकर ह्वाइट हाउस में फिर गोरा राष्ट्रपति आ जायेगा तो आपकी यह आशा निर्मूल नहीं है, लेकिन मैं तब तक बराजा के बारे में अपनी कार्रवाई को स्थगित नहीं कर सकता. ऐसा करके मैं अमरीका के प्रति विश्वासघात करूंगा. मैं आपको आदेश देता हूं कि आप ड्रेगन फ्लाइज डिवीजन को फौरन बराजा भेजने की तैयारी करें."

सुरक्षा-सचिव ने खड़े होकर कहा, "बेशक राष्ट्रपति महोदय, यदि आप यही चाहते हैं तो. . . "जनरल ने कहा, लेकिन डिलमैन ने उसकी बात बीच में ही काटकर कहा, "मैं सिर्फ चाहता ही नहीं, आपको बाकायदा हुक्म दे रहा हूं." □

अनुवाद : हरि.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

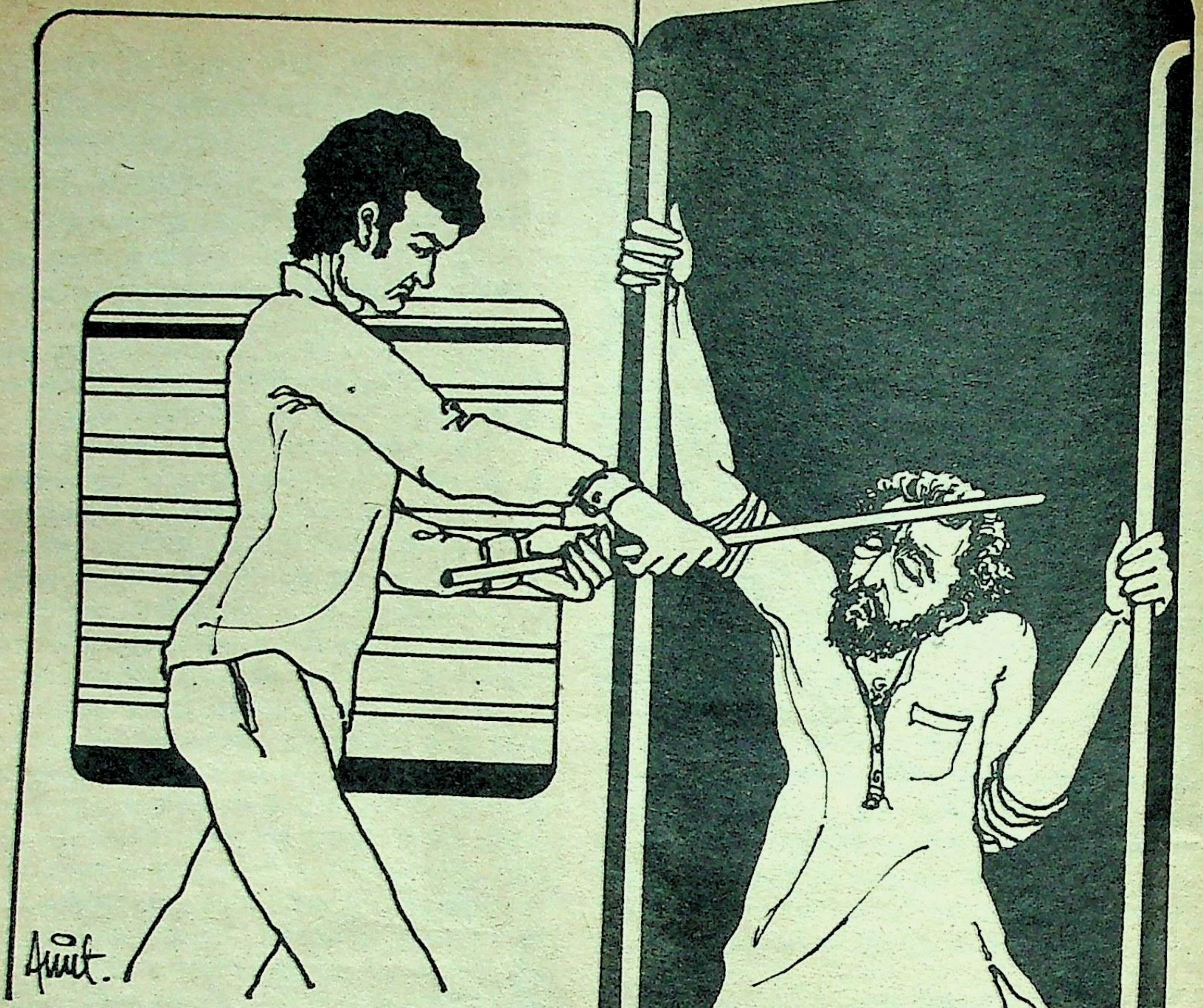

अमृतसर आ गया है....

भीष्म साहनी

'सारिका' के इस रजत जयंती वर्ष में जनवरी प्रथम अंक से प्रारंभ इस स्तंभ में हम गत चौबीस वर्षों में 'सारिका' में प्रकाशित प्रत्येक वर्ष की श्रेष्ठ कहानी का पुन.प्रकाशन कर रहे हैं. इसके साथ ही हम कहानी पर एक वरिष्ठ रचनाकार की टिप्पणी भी आमंत्रित करते हैं. इस क्रम में इस बार प्रस्तुत है 'सारिका' के मार्च १९७१ अंक में प्रकाशित यह कहानी तथा इस पर हिंदी के सुपरिचित समीक्षक राजकुमार सैनी की टिप्पणी.

गाड़ी के डब्बे में बहुत मुसाफिर नहीं थे. मेरे सामनेवाली सीट पर बैठे सरदारजी देर से मुझे लाम के किस्से सुनाते रहे थे. वह लाम के दिनों में बर्मा की लड़ाई में भाग ले चुके थे और बात-बात पर खी-खी करके हंसते और गोरे फौजियों की खिल्ली उड़ाते थे. डब्बे में तीन पठान व्यापारी भी थे, उनमें से एक हरे रंग की पोशाक पहने हुए ऊपर वाली बर्थ पर लेटा हुआ था. वह आदमी बड़ा हंसमुख था और बड़ी देर से मेरे साथ वाली सीट पर बैठे एक दुबले से बाबू के साथ उसका मजाक चल रहा था. वह दुबला बाबू पेशावर का रहने वाला जान पड़ता क्योंकि किसी-किसी वक्त वे आपस में पश्तो में बातें करने लगते थे. मेरे सामने दायीं ओर कोने में एक बुढ़िया मुंह-सिर ढांपे बैठी थी और देर से माला जप रही थी. यही कुछ लोग रहे होंगे. संभव है दो-एक और मुसाफिर भी रहे हों. पर वे स्पष्टतः मुझे याद नहीं.

गाड़ी धीमी रफ्तार से चली जा रही थी; और गाड़ी में बैठे मुसाफिर बतिया रहे थे, और बाहर गेहूं के खेतों में हलकी-हलकी लहरियां उठ रही थीं, और मैं मन-ही-मन बड़ा खुश था क्योंकि मैं दिल्ली में होने वाला स्वतंत्रता दिवस समारोह देखने जा रहा था.

उन दिनों के बारे में सोचता हूं तो लगता है, हम किसी झुटपुटे में जी रहे थे. शायद समय बीत जाने पर अतीत का सारा व्यापार ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुटपुटे में बीता जान पड़ता है. ज्यों-ज्यों भविष्य के पट खुलते जाते हैं, यह झुटपुटा और भी गहराता चल जाता है.

उन्हीं दिनों पाकिस्तान के बनाये जाने का ऐलान किया गया था और लोग तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे थे कि भविष्य में जीवन की रूपरेखा कैसी होगी. पर किसी की भी कल्पना बहुत दूर तक नहीं जा पाती थी.

मेरे सामने बैठे सरदारजी बार-बार मुझसे पूछ रहे थे कि पाकिस्तान बन जाने पर जिन्ना साहिब बंबई में ही रहेंगे या पाकिस्तान में जाकर बस जायेंगे, और मेरा हर बार यही जवाब होता, "बंबई क्यों छोड़ेंगे, पाकिस्तान में आते-जाते रहेंगे, बंबई छोड़ देने में क्या तुक है." लाहौर और गुरदासपुर के बारे में अनुमान लगाये जा रहे थे कि कौन-सा शहर किस ओर जायेगा. मिल बैठने के ढंग में, गप-शप में, हंसी-मजाक में कोई विशेष अंतर नहीं आया था. कुछ लोग अपने घर छोड़कर जा रहे थे, जबकि अन्य लोग उनका मजाक उड़ा रहे थे. कोई नहीं जानता था कि कौन-सा कदम ठीक रहेगा और कौन-सा गलत! एक ओर पाकिस्तान बन जाने का जोश था तो दूसरी ओर हिंदुस्तान के आजाद हो जाने का जोश. जगह-जगह दंगे हो रहे थे और यौम-ए-आजादी की तैयारियां भी चल रही थीं.

इस पृष्ठभूमि में लगता, देश आजाद हो जाने पर दंगे अपने आप बंद हो जायेंगे. वातावरण के इस झुटपुटे में आजादी की सुनहरी धूल-सी उड़ रही थी. और साथ ही साथ अनिश्चय भी डोल रहा था, और इसी अनिश्चय की स्थिति में किसी-किसी वक्त भावी रिश्तों की रूपरेखा झलक दे जाती थी.

शायद जेहलम का स्टेशन पीछे छूट चुका था, जब ऊपरवाली बर्थ पर बैठे पठान ने एक पोटली खोल ली और उसमें से उबला हुआ मांस और नान-रोटी के टुकड़े निकाल-निकालकर अपने साथियों को देने लगा. फिर वह हंसी-मजाक के बीच मेरी बगल में बैठे बाबू की ओर भी नान का टुकड़ा और मांस की बोटी बढ़ाकर खाने का आग्रह करने लगा था, "खा ले बाबू, ताकत आयेगी. हम जैसा हो जायेगा. बीवी भी तेरे साथ खुश रहेगी. खा ले दाल-खोर, तू दाल खाता है इसलिए दुबला है. . ."

डिब्बे में लोग हंसने लगे थे. बाबू ने पश्तो में कुछ जवाब दिया और फिर मुस्कराता सिर हिलाता रहा.

इस पर दूसरे पठान ने हंसकर कहा, "ओ खंजीर के तुख्म, इधर तुमें कौन देखता है ए? हम तेरी बीवी को नई बोलेगा. ओ तू अमारे साथ बोटी तोड़. हम तेरे साथ दाल पियेंगा. . ."

इस पर कहकहा उठा, पर दुबला-पतला बाबू हंसता सिर हिलाता रहा और कभी-कभी दो शब्द पश्तो में भी कह देता.

"ओ कितना बुरा बात ए, अम खाता ए और तू हमारा मुंह देख ताए. . ." सभी पठान मगन थे.

"यह इसलिए नहीं लेता कि तुमने हाथ नहीं धोये हैं." स्थूलकाय सरदार जी बोले और बोलते ही खी-खी करने लगे. अधलेटी मुद्रा में बैठे सरदार जी की आधी तोंद सीट के नीचे लटक रही थी, "तुम अभी सोकर उठे हो और उठते ही पोटली खोलकर खाने लग गये हो, इसीलिए बाबू जी तुम्हारे हाथ से नहीं लेते, और कोई बात नहीं." और सरदार जी ने मेरी ओर देखकर आंख मारी और फिर खी-खी करने लगे.

"मांस नई खाता ए बाबू तो जाओ जनाना डब्बे में बैठो, इधर क्या करता ए?" फिर कहकहा उठा.

डब्बे में और भी मुसाफिर थे लेकिन पुराने मुसाफिर यही थे जो सफर शुरू होने पर गाड़ी में बैठे थे. बाकी मुसाफिर उतरते-चढ़ते रहे थे. पुराने मुसाफिर होने के नाते ही उनमें एक तरह की बेतकल्लुफी आ गयी थी.

"ओ इधर आकर बैठो. तुम अमारे साथ बैठो. आओ जालिम, किस्सा खानी की बातें करेंगे."

तभी किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकी थी और नये मुसाफिरों का रेला अंदर आ गया था. बहुत से मुसाफिर एक साथ अंदर घुसते चले आये थे.

"कौन-सा स्टेशन है?" किसी ने पूछा.

"वजीराबाद है शायद." मैंने बाहर की ओर देखकर कहा. गाड़ी वहां थोड़ी देर के लिए खड़ी रही. पर छूटने से पहले एक छोटी-सी घटना घटी. एक आदमी साथ वाले डब्बे में से पानी लेने उतरा और नल पर जाकर पानी लोटे में भर रहा था जब वह भागकर अपने डब्बे की ओर लौट आया. छलछलाते लोटे में से पानी गिर रहा था, लेकिन जिस ढंग से वह भागा था उसी ने बहुत कुछ बता दिया था. नल पर खड़े और लोग भी, तीन या चार आदमी रहे होंगे. . . इधर-उधर अपने-अपने डब्बे की ओर भाग गये थे. इस तरह घबराकर भागते लोगों को मैं देख चुका था. देखते-ही देखते प्लेटफार्म खाली हो गया, मगर डब्बे के अंदर अब भी हंसी-मजाक चल रहा था.

"कहीं कोई गड़बड़ है," मेरे पास बैठे दुबले बाबू ने कहा.

कहीं कुछ था, लेकिन कोई भी स्पष्ट नहीं जानता था. मैं अनेक दंगे देख चुका था इसलिए वातावरण में होनेवाली छोटी तब्दीली को भी भांप गया था. भागते व्यक्ति, खटाक से बंद होते दरवाजे, घरों की छतों पर खड़े लोग, चुप्पी और सन्नाटा, सभी दंगों के चिह्न थे.

तभी पिछले दरवाजे की ओट से, जो प्लेटफार्म की ओर न खुलकर दूसरी ओर खुलता था. हलका-सा शोर हुआ. कोई मुसाफिर अंदर घुसना चाह रहा था.

"कहां घुसा आ रहा है, नहीं है जगह! बोल दिया, जगह नहीं है." किसी ने कहा.

"बंद करो जी दरवाजा. यों ही मुंह उठाये घुसे चले आते हैं. . ." आवाजें आ रही थीं.

जितनी देर कोई मुसाफिर डब्बे के बाहर खड़ा अंदर आने की चेष्टा करता रहे, अंदर बैठे मुसाफिर उसका विरोध करते रहते हैं, पर एक बार जैसे-तैसे वह अंदर आ जाये तो विरोध खत्म हो जाता है और वह मुसाफिर जल्दी ही डब्बे की दुनिया का निवासी बन जाता है; और अगले स्टेशन पर पर वही सबसे पहले बाहर खड़े मुसाफिरों पर चिल्लाने लगता है, "नहीं है जगह, अगले डब्बे में जाओ. . . घुसे जाते हैं. . !"

दरवाजे पर शोर बढ़ता जा रहा था. तभी मैले-कुचैले कपड़ों और लटकती मूंछोंवाला एक आदमी दरवाजे में से अंदर घुसता दिखायी दिया. चीकट मैले कपड़े, जरूर कहीं हलवाई की दूकान करता होगा. वह लोगों की शिकायतों-आवाजों की ओर ध्यान दिये बिना दरवाजे की ओर घूमकर बड़ा-सा काले रंग का संदूक अंदर की ओर घसीटने लगा.

"आ जाओ, आ जाओ, तुम भी चढ़ आओ." वह अपने पीछे किसी से कहे जा रहा था. तभी दरवाजे में एक पतली सूखी-सी औरत नजर आयी और उससे पीछे सोलह-सत्तरह बरस की सांवली-सी एक लड़की अंदर आ गयी. लोग अभी भी चिल्लाये जा रहे थे. सरदारजी को कूल्हों के बल उठकर बैठना पड़ा.

"बंद करोजी दरवाजा, बिना पूछे चढ़ आते हैं. अपने बाप का घर समझ रखा है. मत घुसने दो जी, क्या करते हो; धकेल दो पीछे. . ." और लोग भी चिल्ला रहे थे.

वह आदमी अपना सामान अंदर घसीटे जा रहा था और उसकी पत्नी, बेटी संडास के दरवाजे के साथ लगकर खड़ी थीं.

"और कोई डब्बा नहीं मिला? औरत जात को भी यहां उठा लाया है?"

वह आदमी पसीने से तर था और हांफता हुआ सामान अंदर घसीटे जा रहा था. संदूक के बाद रस्सियों से बंधी खाट की पाटियां अंदर खींचने लगा.

"टिकट है जी मेरे पास, मैं बेटिकट नहीं हूं. लाचारी है. शहर में दंगा हो गया है. बड़ी मुश्किल से स्टेशन तक पहुंचा हूं." इस पर डब्बे में बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथ्य और कथ्य का आर-पारदर्शी क्रिस्टल

राजकुमार सैनी

कहावत है—अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है. सांप्रदायिकता एक ऐसी ही नस्ल की मादा है जो अपनी गली में शेरनी की मुद्राएं ओढ़कर गुर्राया करती है. भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गया है,' सांप्रदायिकता के इसी चरित्र की पहचान कराती है जो भीतर से अक्सर कायर होता है किंतु, बाहर से लड़ाकू होने का दंभ भरता है. फिर वह चरित्र इस कहानी में वर्णित हिंदू 'बाबू' का हो या 'पठान' का या 'सरदार जी' का. दरअसल ये एक ही सिक्के के विभिन्न पहलू हैं. कहानी पूरी शिद्दत के साथ इसी कथ्य को रेखांकित करती है और यह 'कथ्य' कोई मामूली नहीं है. बीसवीं सदी के भारत का वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कथ्य है.

लेकिन कहानी मात्र कथ्य से ही नहीं बनती. उसके लिए कलात्मक कथन भी अनिवार्य है. भीष्म साहनी अपने कथ्य को भंगिमापूर्ण कथन के साथ प्रस्तुत करने में एक सिद्धहस्त कलाकार का परिचय देते हैं. उनकी कला परिवेश और मानव-प्रकृति परिस्थितियों और मनः स्थितियों के प्रेक्षण और निरीक्षण में मनोवैज्ञानिक सूझबूझ, गहरे और व्यापक अनुभव तथा संजीदा और जागरूक एहसास को सांकेतिक शैली में संप्रेषित कर देती है. किसी तरह के फालतू स्पष्टीकरण, बड़बोलेपन या वाग्-स्फीति की जरूरत ही उन्हें महसूस नहीं होती.

कहानी स्मृति-विधान की शैली में लिखी गयी है—बीते हुए काल-खंड को याद किया जा रहा है, एक संजीदा एहसास के साथ—'उन दिनों के बारे में सोचता हूं तो लगता है, हम किसी झुटपुटे में जी रहे हैं. शायद बीत जाने पर अतीत का सारा व्यापार ही झुटपुटे में बीता जान पड़ता है. ज्यों-ज्यों भविष्य के पट खुलते जाते हैं, यह झुटपुटा और गहराता चला जाता है.'

इस तरह अतीत के झुटपुटे के साथ भविष्य के पट खुलने का संदर्भ पूरे वर्तमान को बीच के अंतराल की तरह गुंजायमान कर देता है.

पूरी कहानी में करुणा और व्यंग्य की वृत्तियां एक दूसरे से टकराती हैं. मानव जीवन की और साहित्य की ये दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण किंतु परस्पर विरोधी वृत्तियां—विरुद्धों के सामंजस्य और विरुद्धों के टकराव के रूप में कहानी की लय और तनाव भरे तार को बनाए रखती हैं. 'वातावरण के इस झुटपुटे में आजादी की सुनहरी धूल' के उड़ने और 'अनिश्चय की स्थिति से किसी किसी वक्त भावी रिश्तों को रूपरेखा के झलक' जाने की बात कहकर रचनाकार वर्तमान संदर्भों की ही ओर इशारा करता है. अतीत के उस घटाटोप में वर्तमान सारे संदर्भों के साथ बिजली की तरह बार-बार कौंध उठता है. आजादी के स्वप्न और बाद के स्वप्नभंग जैसे दोनों साकार हो उठे हों.

बड़बड़ाती हुई, बुदबुदाती हुई बुढ़िया का चरित्र प्रतीकात्मक है; बुढ़िया ये हुए खोखले मानवतावाद की नियति और परिणति को नमूदार करता हुआ. परिस्थितियों के बदलते ही मनः स्थितियां किस तेजी से बदलने लगती हैं, इस तथ्य को कला की बड़ी ही महीन और बारीक बुनावट के साथ रचनाकार ने इस कहानी में पर्त-दर पर्त व्यंजित किया है. जैसा कि कथाकार अपरकांत ने भीष्म साहनी विषयक अपने एक लेख में जिक्र किया है, आदरणीय श्री बलराज साहनी ने सारिका के अगस्त 1965 के अंक में अपने छोटे भाई के बारे लिखा था:

'साधारण लोगों के जीवन की छोटी-छोटी बातें वह खुद अपनी आंखें से देखता है, उन लोगों की सामाजिक और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है. पात्रों को कल्पना से नहीं, जीवन से खोजता है और चुनता है.'

इस कहानी के पात्र भी जीवन से खोजे और चुने गये हैं. इसीलिए कहानी इतनी जीवंत और प्रामाणिक है कि लगता है हम कहानी नहीं पढ़ रहे, अपनी सदी के एक खौफनाक और सोचनाक अनुभव से गुजर रहे हैं. फिशर की शब्दावली में यह भी कहा जा सकता है कि यह कहानी कथ्य और कथन का पारदर्शी क्रिस्टल है; लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि यह कहानी हमारे समय की आर-पार-दर्शी रचना है. □

● ए-2/बी, 77-सी (एम. आई. जी.), पश्चिम विहार, नयी दिल्ली-63.

बहुत से लोग चुप हो गये पर वर्थ पर बैठा पठान उचककर बोला, "निकल जाओ इदर से, देखता नई ए इदर जगा नई ए."

और पठान ने आव देखा न ताव, आगे बढ़कर ऊपर से ही उस मुसाफिर के लात जमा दी, पर लात उस आदमी को लगने के बजाय उसकी पत्नी के कलेजे में लगी और वह वहीं हाय-हाय करती बैठ गयी.

उस आदमी के पास मुसाफिरों के साथ उलझने के लिए वक्त नहीं था. वह बराबर अपना सामान अंदर घसीटे जा रहा था. पर डब्बे में मौन छा गया. खाट की पाटियों के बाद बड़ी-बड़ी गठरियां आयीं, इस पर ऊपर बैठे पठान की सहन-क्षमता चुक गयी, "निकालो इसे, कौन ए ये?" वह चिल्लाया. इस पर दूसरे पठान ने जो नीचे की सीट पर बैठा था, उस आदमी का संदूक दरवाजे में से नीचे धकेल दिया जहां लाल वर्दी वाला एक कुली खड़ा सामान अंदर पहुंचा रहा था.

उसकी पत्नी के चोट लगने पर कुछ मुसाफिर चुप हो गये थे. केवल कोने में बैठबुढ़िया कुरलाये जा रही थी, "ए नेकबख्तो, बैठने दो. आजा बेटी, तू मेरे पास आ जा. जैसे-तैसे सफर काट लेंगे. छोड़ो वे जालिमो, बैठने दो. . . "

अभी आधा सामान ही अंदर आ पाया होगा, जब सहसा गाड़ी सरकने लगी.

"छूट गया! सामान छूट गया!" वह आदमी बदहवास-सा होकर चिल्लाया.

"पिताजी सामान छूट गया!" संडास के दरवाजे के पास खड़ी लड़की सिर से पांव तक कांप रही थी और चिल्लाये जा रही थी.

"उतरो, नीचे उतरो," वह आदमी हड़बड़ाकर चिल्लाया और आगे बढ़कर खाट की पटियां और गठरियां बाहर फेंकते हुए दरवाजे का डंडहरा पकड़कर नीचे उतर गया. उसके पीछे उसकी भयाकुल बेटी और फिर उसकी पत्नी, कलेजे को दोनों हाथों से दबाये हाय-हाय करती नीचे उतर गयी.

"बहुत बुरा किया है तुम लोगों ने, बहुत बुरा किया है." बुढ़िया ऊंचा-ऊंचा बोल रही थी. "तुम्हारे दिल में दर्द मर गया है. छोटी-सी बच्ची उनके साथ थी, बेरहमो, तुमने बहुत बुरा किया है. धक्के देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतार दिया है."

गाड़ी सूने प्लेटफार्म को लांघती आगे बढ़ गयी. डब्बे में व्याकुल-सी चुप्पी छा गयी. बुढ़िया ने बोलना बंद कर दिया था. पठानों का विरोध कर पाने की हिम्मत नहीं हुई.

तभी मेरी बगल में बैठे दुबले बाबू ने मेरे बाजू पर हाथ रखकर कहा "आग है. देखो, आग लगी है."

गाड़ी प्लेटफार्म छोड़कर आगे निकल आयी थी और शहर पीछे छूट रहा था. तभी शहर की ओर से उठते धुएं के बादल और उनमें लपलपाते आग के शोले नजर आने लगे थे.

दंगा हुआ है. स्टेशन पर भी लोग भाग रहे थे. कहीं दंगा हुआ है.

शहर में आग लगी थी. बात डब्बे भर के मुसाफिरों को पता चल गयी और वे लपक-लपककर खिड़कियों में से आग का दृश्य देखने लगे.

जब गाड़ी शहर छोड़कर आगे बढ़ गयी तो डब्बे में सन्नाटा छा गया था. मैंने घूमकर डब्बे के अंदर देखा, दुबले बाबू का चेहरा पीला पड़ गया था. और माथे पर पसीने की परत किसी मुर्दे के माथे की तरह चमक रही थी. मुझे लगा जैसे अपनी-अपनी जगह बैठे सभी मुसाफिरों ने अपने आसपास बैठे लोगों का जायजा ले लिया है. सरदारजी उठकर मेरी सीट पर आ बैठे. नीचेवाली सीट पर बैठा पठान अपने दो साथी पठानों के साथ ऊपर वाली बर्थ पर चढ़ गया. यही क्रिया शायद रेलगाड़ी के अन्य डब्बों में भी चल रही थी. डब्बे में तनाव आ गया. लोगों ने बतियाना बंद कर दिया. तीनों-के-तीनों पठान ऊपर वाली बर्थ पर एक साथ बैठे चुपचाप नीचे की ओर देखे जा रहे थे. सभी मुसाफिरों की आंखें पहले से ज्यादा खुली-खुली. ज्यादा शंकित-सी लगीं. यही स्थिति संभवतः गाड़ी के सभी डब्बों में व्याप्त हो रही थी.

"कौन-सा स्टेशन था यह? " डब्बे में किसी ने पूछा.

"वजीराबाद," किसी ने उत्तर दिया.

जवाब मिलने पर डब्बे में एक और प्रतिक्रिया हुई. पठानों के मन का तनाव फौरन ढीला पड़ गया, जबकि हिंदू-सिख मुसाफिरों की चुप्पी और ज्यादा गहरी हो गयी. एक पठान अपने वास्कट के जेब से नसवार की डिबिया निकालकर चढ़ाने लगा. बुढ़िया बराबर माला जपे जा रही थी. किसी-किसी वक्त उसके बुदबुदाते होंठ नजर आते. लगता, उनमें से कोई खोखली सी आवाज निकल रही है.

अगले स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी तो वहां भी सन्नाटा था. कोई परिंदा तक नहीं फड़क रहा था. हां, एक भिश्ती, पीठ पर पानी की मशक लादे प्लेटफार्म लांघकर आया और मुसाफिरों को पानी पिलाने लगा. "लो, पियो पानी, पानी पियो," औरतों के डब्बे में से औरतों और बच्चों के अनेक हाथ बाहर निकल आये थे.

बहुत मार-काट हुई है, बहुत लोग मरे हैं. लगता था, वह इस मार-काट में अकेला पुण्य कमाने चला आया है.

गाड़ी सरकी तो सहसा खिकियों के पल्ले चढ़ाये जाने लगे. दूर-दूर तक, पहियों की गड़गड़ाहट के साथ खिड़कियों के पल्ले चढ़ने की आवाज आने लगी.

किसी अज्ञात आशंकावश दुबला बाबू मेरे पास वाली सीट पर से उठा और दो सीटों के बीच फर्श पर लेट गया. उसका चेहरा अब भी मुर्दे जैसा पीला हो रहा था. इस बर्थ पर बैठा पठान उसकी ठिठोली करने लगा, "ओ. . . . बेगैरत, तुम मर्द ए कि औरत ए? सीट पर से उठकर नीचे लेटता ए. तुम मर्द के नाम को बदनाम करता ए." वह बोल रहा था और बार-बार हंसे जा रहा था. फिर वह उससे पश्तो में कुछ कहने लगा. बाबू चुप बना लेटा रहा. अन्य सभी मुसाफिर चुप थे. डब्बे का वातावरण बोझिल बना हुआ था.

"ऐसे आदमी को अम डब्बे में बैठने नई देगा. ओ बाबू, तुम अगले स्टेशन पर उतर जाओ और जनाना डब्बे में बैठो."

मगर बाबू की हाजिर जवाबी अपने कंठ में सूख चली थी. हकला-कर चुप हो रहा. पर थोड़ी देर बाद वह अपने आप उठकर सीट पर जा बैठा और देर तक अपने कपड़ों की धूल झाड़ता रहा. वह क्यों उठकर फर्श पर लेट गया था. शायद उसे डर था कि बाहर से गाड़ी पर पथराव होगा या गोली चलेगी, शायद इसी कारण खिड़कियों के पल्ले चढ़ाये जा रहे थे.

कुछ भी कहना कठिन था. मुमकिन है किसी एक मुसाफिर ने किसी कारण से खिड़की का पल्ला चढ़ाया हो और उसकी देखा-देखी, बिना सोचे-समझे धड़ाधड़ खिड़कियों के पल्ले चढ़ाये जाने लगे हों.

बोझिल अनिश्चित-से वातावरण में सफर कटने लगा. रात गहराने लगी थी. डब्बे के मुसाफिर स्तब्ध और शंकित ज्यों-के-त्यों बैठे थे. कभी गाड़ी की रफ्तार सहसा टूटकर धीमी पड़ जाती तो लोग एक-दूसरे की ओर देखने लगते. कभी रास्ते में ही रुक जाती तो डब्बे के अंदर का सन्नाटा और भी गहरा हो उठता. केवल पठान निश्चित थे. हां, उन्होंने भी बतियाना छोड़ दिया था. क्योंकि उनकी बातचीत में कोई भी शामिल होने वाला न था.

धीरे-धीरे पठान ऊंघने लगे जबकि अन्य मुसाफिर फटी-फटी आंखों से शून्य में देखे जा रहे थे. बुढ़िया मुंह-सिर लपेटे, टांगें सीट पर चढ़ाये, बैठी-बैठी सो गयी थी. ऊपरवाली बर्थ पर एक पठान ने, अधलेटे ही, कुर्ते के जेब में से काले मणकों की तसबीह निकाल ली और उसे धीरे-धीरे हाथ में चलाने लगा.

खिड़की के बाहर आकाश में चांद निकल आया और चांदनी में बाहर की दुनिया और भी अनिश्चित, और भी अधिक रहस्यमयी हो उठी. किसी किसी वक्त दूर किसी ओर आग के शोले उठते नजर आते, कोई नगर जल रहा था. गाड़ी किसी वक्त चिंघाड़ती हुई आगे बढ़ने लगती फिर किसी वक्त उसकी रफ्तार धीमी पड़ जाती और मीलों तक धीमी, रफ्तार से ही चलती रहती.

सहसा दुबला बाबू खिड़की में से बाहर देखकर ऊंची आवाज में बोला, "हरबंसपुरा निकल गया है!" उसकी आवाज में उत्तेजना थी, वह जैसे चीखकर बोला था. डब्बे के सभी लोग उसकी आवाज सुनकर चौंक गये. उसी वक्त डब्बे के अधिकांश मुसाफिरों ने मानो उसकी आवाज को ही सुनकर करवट बदली.

"ओ बाबू, चिल्लाता क्यों ए?" तसबीहवाला पठान चौंककर बोला, "इधर उतरेगा तुम? जंजीर खींचूं?" और खी-खी करके हंस दिया. जाहिर है वह हरबंसपुरा की स्थिति से अथवा उसके नाम से अनभिज्ञ था.

बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल सिर हिला दिया और एक-आध बार पठान की ओर देखकर फिर खिड़की से बाहर झांकने लगा.

डब्बे में फिर मौन छा गया. तभी इंजन ने सीटी दी और उसकी एकरस रफ्तार टूट गयी. थोड़ी ही देर बाद खटाक का-सा शब्द भी हुआ, शायद गाड़ी ने लाईन बदली थी. बाबू ने झांककर इस दिशा में देखा जिस ओर गाड़ी बढ़ी जा रही थी.

"शहर आ गया है." वह फिर ऊंची आवाज में चिल्लाया, "अमृतसर आ गया है!" उसने फिर से कहा और उछलकर खड़ा हो गया, और ऊपर वाली बर्थ पर लेटे पठान को संबोधन करके चिल्लाया, "ओ बे पठान के बच्चे! नीचे उतर! तेरी मां की. . .नीचे उतर, तेरी पठान बनाने वाले की मैं. . ."

बाबू चिल्लाने लगा था और चीख-चीखकर गालियां बकने लगा था. तसबीहवाले पठान ने करवट बदली और बाबू की ओर देखकर बोला, "ओ क्या ए बाबू? अमको कुछ बोला?"

बाबू को उत्तेजित देखकर अन्य मुसाफिर भी उठ बैठे.

"नीचे उतर तेरी मैं. . . हिंदू औरत को लात मारता है, हरामजादे, तेरी उस. . ."

"ओ बाबू, बक-बक नहीं करो. ओ खंजीर के तुख्म, गाली मत बको, अमने बोल दिया. अम तुम्हारा जबान खींच लेगा."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजल

राजेंद्र शर्मा 'राजन'

उखड़े हुए अशआर हैं कुछ बेतुके से काफिये,
यह साजिशों का दौर है कोई यहां कैसे जिये.

जिसने धरा को दी यहां आकाश-सी ऊंचाइयां,
रुसवाइयों के भी सिवा कुछ हो सका उसके लिए.

कानून भी तो आजकल सबसे बड़ा बहुरूपिया,
मेरे लिए कुछ और है कुछ और है तेरे लिए.

मैंने सुना वो आज तक टूटा नहीं मजबूत है,
कुछ और वाहन आप भी उसकी कमर से भेजिये.

अपने शहर में फूंस की कुछ झुग्गियां ही शेष हैं,
जब भी जरूरत आ पड़े उनको जलाकर सेंकिये.

एक महिला एक मंदिर न्याय की आशा लिये,
कल गयी थी अब तलक वापस न आयी देखिये.

देश में हम चाहते हैं शांति स्थापित करें,
शोर पर पाबंदियां हैं धीरे-धीरे खांसिये.

"गाली देता है. मादर!" बाबू चिल्लाया और उछलकर सीट पर पर चढ़ गया. वह सिर से पांव तक कांप रहा था.

"बस-बस," सरदारजी बोले, "यह लड़ने की जगह नहीं है. थोड़ी रब का सफर बाकी है. आराम से बैठो."

दो "तेरी मैं लात न तोड़ दूं तो कहना, गाड़ी तेरे बाप की है!" बू चिल्लाया.

"ओ अमने क्या बोला. सभी लोग उसको निकालता था; अमने भी निकाला. ये इदर हमको गाली देता ए. अम इसका जबान खींच लेगा."

"बुढ़िया बीच में फिर बोल उठी, "वे जीण जोगयो, अराम नाल बैठो. वे रब्ब दियो बंदयो, कुज होश करो."

उसके होंठ किसी प्रेत के होंठों की तरह फड़फड़ाये जा रहे थे और उनमें से क्षीण-सी फुसफुसाहट सुनायी दे रही थी. बाबू चिल्लाये जा रहा था, "अपने घर में शेर बनता था. अब बोल, तेरी मैं उस पठान बनाने वाली की. . ."

तभी गाड़ी अमृतसर के प्लेटफार्म पर रुकी. प्लेटफार्म लोगों से खचाखच भरा था. प्लेटफार्म पर खड़े लोग झांक-झांककर डब्बों के अंदर देखने लगे. बार-बार एक ही सवाल पूछ रहे थे——"पीछे क्या हुआ है? कहां पर दंगा हुआ है?"

खचाखच भरे प्लेटफार्म पर शायद इसी बात की चर्चा चल रही थी कि पीछे क्या हुआ है. प्लेटफार्म पर खड़े दो-तीन खोमचेवालों पर मुसाफिर टूट पड़ रहे थे.सभी को सहसा भूख और प्यास परेशान करने लगी थी. इसी दौरान तीन-चार पठान हमारे डब्बे के बाहर प्रगट हो गये और खिड़की में से झांक-झांककर अंदर देखने लगे. अपने पठान साथियों पर नजर पड़ते ही वे उनसे पश्तो में कुछ बोलने लगे. मैंने घूमकर देखा, बाबू डब्बे में नहीं था. न जाने कब वह डब्बे में से निकल गया था. मेरा माथा ठनका. गुस्से से वह पागल हुआ जा रहा था. न जाने क्या कर बैठे. पर इस बीच डब्बे के तीनों पठान, अपनी-अपनी गठरी उठाकर बाहर निकल गये और अपने पठान साथियों के साथ गाड़ी के अगले किसी डब्बे की ओर बढ़ गये. जो विभाजन पहले प्रत्येक डिब्बे के भीतर होता रहा था, अब सारी गाड़ी के स्तर पर होने लगा था.

खोमचेवालों के इर्द-गिर्द भीड़ छंटने लगी. लोग अपने-अपने डब्बों में लौटने लगे. तभी सहसा एक ओर से मुझे वह बाबू आता दिखायी दिया. उसका चेहरा अब भी बहुत पीला था और माथे पर बालों की लट झूल रही थी. नजदीक पहुंचा तो मैंने देखा, उसने अपने दायें हाथ में लोहे की एक छड़ उठा रखी थी. जाने यह उसे कहां से मिल गयी थी. डब्बे में घुसते समय उसने छड़ को अपनी पीठ पीछे कर लिया और मेरे साथ-वाली सीट पर बैठने से पहले उसने हौले से छड़ को सीट के नीचे सरका दिया. सीट पर बैठते ही उसकी आंखें पठानों को देख पाने के लिए ऊपर को उठीं. पर डब्बे में पठानों को न पाकर वह हड़बड़ाकर चारों ओर देखने लगा.

"निकल गये हरामी, मादर, सब-के-सब निकल गये!" फिर वह सिटपिटाकर उठ खड़ा हुआ और चिल्लाकार बोला, "तुमने उन्हें जाने क्यों दिया? तुम सब नामर्द हो, बुजदिल!"

पर गाड़ी में भीड़ बहुत थी. बहुत से नये मुसाफिर आ गये थे. किसी ने उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया.

गाड़ी सरकने लगी तो वह फिर मेरी बगल वाली सीट पर आ बैठा. पर वह बड़ा उत्तेजित था और बराबर बड़बड़ाये जा रहा था.

धीरे-धीरे हिचकोले खाती गाड़ी आगे बढ़ने लगी. डब्बे के पुराने मुसाफिरों ने भरपेट पूरियां खा ली थीं और पानी पी लिया था और गाड़ी उस इलाके में आगे बढ़ने लगी थी, जहां उनके जान-माल को खतरा नहीं था.

नये मुसाफिर बतिया रहे थे. धीरे-धीरे गाड़ी फिर समतल गति से चलने लगी थी. कुछ ही देर बाद लोग ऊंघने भी लगे थे. मगर बाबू अभी आंखों से सामने की ओर देखे जा रहा था. बार-बार मुझसे पूछता कि पठान डब्बे में से निकलकर किस ओर को गये हैं. उसके सिर पर जुनून सवार था.

गाड़ी के हिचकोलों में मैं खुद ऊंघने लगा था. डब्बे में लेट पाने के लिए जगह नहीं थी. बैठे-बैठे ही नींद में मेरा सिर कभी एक ओर को लुढ़क जाता, कभी दूसरी ओर को. किसी-किसी वक्त झटके से मेरी नींद टूटती, और मुझे सामने की सीट पर अस्त-व्यस्त से पड़े सरदारजी के खर्राटे सुनायी देते—अमृतसर पहुंचने के बाद सरदारजी फिर से सामने वाली सीट पर टांगें पसारकर लेट गये थे. डब्बे में तरह-तरह की आड़ी-तिरछी मुद्राओं में मुसाफिर पड़े थे. उनकी वीभत्स मुद्राओं को देखकर लगता, डब्बा लाशों से भरा है. पास बैठे बाबू पर नजर पड़ती तो कभी तो वह खिड़की के बाहर मुंह किये देख रहा होता, कभी दीवार से पीठ लगाये तनकर बैठा नजर आता.

किसी-किसी वक्त गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकती तो पहियों की गड़गड़ाहट बंद होने पर निःस्तब्धता-सी छा जाती. तभी लगता, जैसे प्लेटफार्म पर कुछ गिरा है. या जैसे कोई मुसाफिर गाड़ी से उतरा है और मैं झटके से उठकर बैठ जाता.

इसी तरह एक बार जब मेरी नींद टूटी तो गाड़ी की रफ्तार धीमी पड़ गयी थी और डब्बे में अंधेरा था. मैंने उसी तरह अधलेटे खिड़की में से बाहर देखा. दूर, पीछे की ओर किसी स्टेशन के सिगनल के लाल कुमकुमे चमक रहे थे. स्पष्टतः गाड़ी कोई स्टेशन लांघकर आयी थी. पर अभी तक उसने रफ्तार नहीं पकड़ी थी.

डब्बे के बाहर मुझे धीमा सा अस्फुट स्वर सुनायी दिया. दूर ही एक धूमिल-सा काला पुंज नजर आया. नींद की खुमारी में मेरी आंखें कुछ देर तक उस पर लगी रहीं, फिर मैंने उसे समझ पाने का विचार छोड़ दिया.

डब्बे के अंदर अंधेरा था, बत्तियां बुझी हुई थीं; लेकिन बाहर लगता था, पौ फटने वाली है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी पीठ पीछे, डब्बे के बाहर किसी चीज को खरोंचने की-सी आवाज आयी. मैंने दरवाजे की ओर घूमकर देखा. डब्बे का दरवाजा बंद था. मुझे फिर से दरवाजा खरोंचने की आवाज सुनायी दी, फिर मैंने साफ-साफ सुना, लाठी से कोई व्यक्ति डब्बे का दरवाजा पटपटा रहा था.

मैंने झांककर खिड़की के बाहर देखा. सचमुच एक आदमी डब्बे की दो सीढ़ियां चढ़ आया था. उसके कंधे पर एक गठरी झूल रही थी और हाथ में लाठी थी और उसने बदरंग से कपड़े पहन रखे थे और उसके दाढ़ी थी. फिर मेरी नजर बाहर की ओर गयी. गाड़ी के साथ-साथ एक औरत भागती चली आ रही थी, नंगे पांव. और उसने दो गठरियां उठा रखी थीं. बोझ के कारण उससे दौड़ा नहीं जा रहा था. डब्बे के पायदान पर खड़ा आदमी-बार-बार उसकी ओर मुड़कर देख रहा था और हांफता हुआ कहे जा रहा था, "आ जा, आ जा, तू भी आ, आ जा!"

दरवाजे पर फिर से लाठी पटपटाने की आवाज आयी, "खोलो जी दरवाजा, खुदा के वास्ते दरवाजा खोलो."

वह आदमी हांफ रहा था, "खुदा के लिए दरवाजा खोलो. मेरे साथ में औरत जात है. गाड़ी निकल जायेगी. . ."

सहसा मैंने देखा, बाबू हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और दरवाजे के पास जाकर दरवाजे में लगी खिड़की में से मुंह बाहर निकालकर बोला, "कौन है? इधर जगह नहीं है."

बाहर खड़ा आदमी फिर गिड़गिड़ाने लगा, "खुदा के वास्ते, गाड़ी निकल जायेगी. . ."

और वह आदमी खिड़की में से अपना हाथ अंदर डालकर दरवाजा खोल पाने के लिए सिटकनी टटोलने लगा.

"नहीं है जगह बोल दिया, उतर जाओ गाड़ी पर से." बाबू चिल्लाया और उसी क्षण लपककर दरवाजा खोल दिया.

"या अल्लाह!" उस आदमी के अस्फुट के शब्द सुनायी दिये. दरवाजा खुलने पर जैसे उसने इतमीनान की सांस ली हो.

और उसी वक्त मैंने बाबू के हाथ में छड़ को चमकते देखा: एक ही भरपूर वार बाबू ने उस मुसाफिर के सिर पर किया था. मैं देखते ही डर गया और मेरी टांगें लरज गयीं. मुझे लगा, जैसे छड़ के वार का उस आदमी पर कोई असर नहीं हुआ. उसके दोनों हाथ अभी जरा जोर से डंडहरे को पकड़े हुए थे. कंधे पर से लटकती गठरी खिसककर उसकी कोहनी पर आ गयी थी.

तभी सहसा उसके चेहरे पर लहू की दो-तीन धारें एक साथ फूट पड़ीं. झुटमुटे में से उसके खुले होंठ और चमकते दांत नजर आये. वह दो-एक बार, 'या अल्लाह' बुदबुदाया, फिर उसके पैर लड़खड़ा गये. उसकी आंखों ने बाबू की ओर देखा, अधमुंदी सी आंखें जो धीरे-धीरे सिकुड़ती जा रही थीं, मानो उसे पहचानने की कोशिश कर रही हों कि वह कौन है और उससे किस अदावत का बदला ले रहा है. इस बीच अंधेरा कुछ और छन गया था. उसके होंठ फिर से फड़फड़ाये और उनमें उसके सफेद दांत फिर से झलक उठे. मुझे लगा, जैसे वह मुस्कराया है. पर वास्तव में त्रास के ही कारण उसके होंठों में बल पड़ने लगे थे.

नीचे पटरी के साथ-साथ भागती औरत बड़बड़ाये और कोसे जा रही थी. उसे अभी मालूम नहीं हो पाया था कि क्या हुआ है! वह अभी शायद यही समझ रही थी कि गठरी के कारण उसका पति गाड़ी पर ठीक तरह से चढ़ नहीं पा रहा है, कि उसका पैर जम नहीं पा रहा है. वह गाड़ी के साथ-साथ भागती हुई, अपनी दो गठरियों के बावजूद अपने पति के पैर को पकड़-पकड़कर सीढ़ी पर टिकाने की कोशिश कर रही थी.

तभी सहसा डंडहरे पर से उस आदमी के दोनों हाथ छूट गये और वह कटे पेड़ की भांति नीचे जा गिरा. और उसके गिरते ही औरत ने भागना बंद कर दिया, मानो उन दोनों का सफर एक साथ खत्म हो गया.

गजल

रमेश मेहता

वादियों में गूंजती है इक सदा ठहरी हुई,
रात है बरसों पुरानी औ' सबा ठहरी हुई.

कौन जाने अब कहां ले जायेगी इसको हवा,
गंध तो चारों तरफ है औ' फिजा ठहरी हुई.

वो कि मेरे पास रहकर भी जो मुझसे दूर है,
रेशा-रेशा कट रही है इक कजा ठहरी हुई.

कौन है जो खौफ की चादर पसारे है खड़ा,
कौन झेले खंजरों की ये अदा ठहरी हुई.

एक साया है कि जो माहौल पर भारी हुआ,
इक दुआ है जो लबों पर बरमला ठहरी हुई.

मुझको मंजिल ने पुकारा और मैं खामोश था,
बैलगाड़ी-सी सदी दरिया में जा ठहरी हुई.

बाबू अभी भी मेरे निकट, डब्बे के खुले दरवाजे में बुत-का-बुत बना खड़ा था. लोहे की छड़ अभी उसके हाथों में थी. मुझे लगा, जैसे वह छड़ को फेंक देना चाहता है लेकिन उसे फेंक नहीं पा रहा, उसका हाथ उठ नहीं रहा था. मेरी सांस अब भी फूली हुई थी और डब्बे के अंधियारे कोने में मैं खिड़की के साथ सटकर बैठा उसकी ओर देखे जा रहा था.

फिर वह आदमी खड़े-खड़े हिला. किसी अज्ञात प्रेरणावश वह एक कदम आगे बढ़ आया और दरवाजे में से बाहर पीछे की ओर देखने लगा. गाड़ी आगे निकलती जा रही थी. दूर, पटरी के किनारे अंधियारा पुंज-सा नजर आ रहा था.

बाबू का शरीर हरकत में आया, एक झटके में उसने छड़ के डब्बे के बाहर फेंक दिया, फिर घूमकर डब्बे के अंदर दायें-बायें देखने लगा. सभी मुसाफिर सोये पड़े थे. मेरी ओर उसकी नजर नहीं उठी.

थोड़ी देर तक वह खड़ा डोलता रहा, फिर उसने घूमकर दरवाजा बंद कर दिया. उसने ध्यान से अपने कपड़ों की ओर देखा, अपने दोनों हाथों की ओर देखा, फिर एक-एक करके अपने दोनों हाथों को नाक के पास ले जाकर उन्हें सूंघा, मानो जानना चाहता हो कि उसके हाथों से खून की बू तो नहीं आ रही है. फिर वह दबे पांव चलता हुआ आया और मेरी बगलवाली सीट पर बैठ गया.

धीरे-धीरे झुटपुटा छंटने लगा, दिन खुलने लगा. साफ-सुथरी-सी रोशनी चारों ओर फैलने लगी. किसी ने जंजीर खींचकर गाड़ी को खड़ा नहीं किया था, छड़ खाकर गिरी उसकी देह मीलों पीछे छूट चुकी थी सामने गेहूं के खेतों में फिर से हल्की-हल्की लहरियां उठने लगी थीं.

सरदार जी बदन खुजलाते उठ बैठे. मेरी बगल में बैठा बाबू, दोनों हाथ सिर के पीछे रखे सामने की ओर देखे जा रहा था. रात भर में उसके चेहरे पर दाढ़ी के छोटे-छोटे बाल उग आये थे. अपने सामने बैठा देखकर सरदार उसके साथ बतियाने लगा, "बड़े जीवट वाले हो बाबू. दुबले-पतले हो, पर बड़े गुर्दे वाले हो. बड़ी हिम्मत दिखायी है. तुमसे डरकर ही वे पठान डब्बे में से निकल गये. यहां बने रहते तो एक-न-एक की खोपड़ी तुम जरूर दुरुस्त कर देते. . ."और सरदार जी हंसने लगे.

बाबू जवाब में मुस्कराया—एक वीभत्स-सी मुस्कान और देर तक सरदार के चेहरे की ओर देखता रहा. □

● 8/30 ईस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"घुप्प अंधेरा है"

नेत्रहीनों का संसार. जिन के लिए न कोई रात होती है न दिन. जिन्हें आंखें खुली या बंद रखने में कोई फ़र्क नहीं पड़ता.

उन लोगों की दुनिया जिन्होंने कभी सूर्योदय या सूर्यास्त नहीं देखा. अपनी मां का या खुद अपना ही चेहरा. हंसी या आंसू. ऐसी दुनिया जिस का सिर्फ़ एक ही रंग है. काला.

ऐसी निराशा से भरी एक ज़िंदगी के बारे में ज़रा सोचिए.

सौभाग्य से, आज नेत्रहीनों के लिए आशा की किरण पैदा हो गई है. उस का एक उपाय है जो आसान है, जिस पर कोई खर्च नहीं होता और जो कारगर है. इसे सिर्फ़ आप की ज़रूरत है.

कार्निया प्रत्यारोपण से आंखों की रोशनी वापस आ सक[ती] है. आंख की बेकार जगह पर एक स्वस्थ कार्निया लगा[ने] से. और वह स्वस्थ कार्निया आप दे सकते हैं.

आंख निकाल लेनें पर कोई निशान या विकृति नहीं रहती. और, एक बार जब आप ने नेत्रदान के बारे [में] तय कर लिया तो आप इस सुखद एहसास के साथ जिएंगे कि आप की आखें आप के बाद भी जीवित रहेंगी. और कोई नेत्रहीन उस के द्वारा... देख सके[गा].

अगर आप का दिल आप के जीवनकाल में नेत्रहीनों के [लिए] भर आता है, तो मरने के बाद अपनी आंखें उन्हें ही [दे] दें. यह एक अमूल्य भेंट है जो आप ही उन्हें दे सक[ते हैं].

ERF 1B/85

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को दी जाने वाली वित्तीय सहायता आयकर अधिनियम १९६१ की धारा ८० (जी) के अन्तर्गत कर रहित है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा संसार"

नेत्रदान संबंधित विस्तृत पुस्तिका प्राप्त करने के लिए कूपन को भर कर हमारे पास भेज दें.

यह काम आज ही करें. ध्यान रखें, कोई भी चमत्कार नेत्रहीनों को दृष्टि नहीं लौटा सकता. हां, आप जरूर कर सकते हैं.

मुझे नेत्रदान तथा कार्निया प्रत्यारोपण के बारे में ज्यादा जानकारी चाहिए. मुझे विस्तृत पुस्तिका भेज दें.

नाम : श्री/श्रीमती/कु. ------------------------------------

पता : --

राज्य : ----------------------------

पिन कोड : --------------------------

आयु : ------------

दृष्टि

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन
टाइम्स आफ इंडिया ७, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-११०००२

दृष्टि. वह अमूल्य उपहार है जो आप ही दे सकते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुलूस

फणीश्वर नाथ रेणु

आज वह हल्दी चिरैंया फिर आयी है. बरसात भर यह रोज इसी तरह समय-समय आयेगी और किसी पेड़ की डाली पर भीगती हुई पंख सुखाती हुई सुरीले स्वर में एक लंबी पंक्ति दुहरायेगी—संस्कृत श्लोक की एक कड़ी—"का कस्य परिवेदना." यहां के लोग इस पाखी का नाम नहीं जानते. हल्दी चिरैंया नाम पवित्रा ने ही गढ़ लिया है.

यही एक पखेरू है जो उसके देश में नहीं होता. सचमुच, इस देश में कुछ भी ऐसा नहीं जो पवित्रा के देश में नहीं था. लेकिन इस (नवीनगर) के सैंकड़ा-निन्नानबे लोग ऐसे हैं जो पवित्रा की राय से सहमत नहीं.

गांव बसने के बाद पवित्रा एक दिन गांव के लोगों को समझा रही थी—"हम लोगों का भाग्य अच्छा है कि इस जिले में हमें बसाया. यहां धान और पाट की खेती होती है, हम भी अपने देश में धान और पाट की खेती करते थे."

उस दिन गांव में ट्यूबवेल गाड़ने के लिए सरकारी आदमी अपने मजदूरों को लेकर आया था. बंगाल से आये शरणार्थियों के लिए कई गांव बसा चुका था. ट्यूबवेल लगवा चुका था वह. उसने पूछा था, "यह आप लोग अपना देश, अपना देश, क्या बोलते हैं. क्या हिंदुस्तान अपना देश नहीं है? आप लोगों का देश नहीं है?"

पवित्रा ने भी कहा, "ठीक कहता है देश माने हिंदुस्तान."

"दीदी ठाकरुन, देश माने हिंदुस्तान की करे हम बुझाइया दिन? कैसे मानें देश हिंदुस्तान. . .हो? हम लोगों के गांव का नाम है नोबीननगर और यहां के लोग कहते हैं पाकिस्तानी टोला? आमराकी मोछल मान ?. . . तो हम पाकिस्तानी कैसे हुए?"

काला चांद की मां वाजिब बात कहती है.

पवित्रा को बस इसी एक बात का बहुत गहरा दुःख है. गांव के लोगों का यहां की मिट्टी से मोह क्यों नहीं हो रहा. वह कौन-सा दरवाजा है इनके दिल का जिसे खोलने के लिए पवित्रा कुंडी खटकावे?

राखाल विश्वास का लड़का अंदू इस तरह मुंह लटकाये क्यों आ रहा है? पवित्रा ने हाथ की सिलायी से निगाह उठाकर देखा, गोपाल पाइन और छिदामदास भी आ रहे हैं. . . . .कुछ हुआ कहीं.

"किसने क्या कहा?"

"चौधरी बाबू के बेटा ने."

"क्या कहा?"

"कहा कि तुम लोग गोमांस खाते हो. मुर्गी खाते हो. . .गांव में बिस्कुट बेचने गया तो चौधरी बाबू के लड़के ने सभी से कहा कि इसके हाथ का बिस्कुट खाओगे ? ये लोग गोमांस खाते हैं. तिस पर मैंने टोका तो बोले, हां, हां, हम लोगों को सब पता है. सभी को भगाते समय गोमांस खिलाया गया है पाकिस्तान में और एक बार जो चख लिया है तो वह खाये बगैर रहेगा?"

पवित्रा कुछ सोचने लगी. फिर बोली, "चौधरी का बेटा दूकान-उकान तो नहीं करता है?"

"दूकान करता है तभी तो ऐसा कहता है, दीदी ठाकरुन. उसकी दूकान का सड़ा हुआ बिस्कुट कोई छूता नहीं इसी से तो. . ."

"जब तू सब कुछ समझता है तो रोने क्यों आया?"

"सोचा, दीदी ठाकरुन को रिपोर्ट कर दूं."

गोपाल पाइन की दृष्टि डाक पियन पर पड़ी. उसकी अगुआनी करने के लिए वह आगे बढ़ा.

एक सरकारी लिफाफे पर अपना नाम देखकर उसका कलेजा धड़क उठा. अचानक वह चीख उठा, "दीदी ठाकरुन, स्कूल हो गया. . . स्कूल हो गया. . . . लेकिन. . . . . .लेकिन. . . . .बंगला मास्टर काहे. . . हम इंग्रेजी भी जानते हैं. हम को खाली बंगला टीचर काहे लिखा. . ."

पवित्रा ने पूछा, "पाइन मोशाय, स्कूल का नाम पाकिस्तानी स्कूल तो नहीं रख देंगे अधिकारी लोग?"

गोपाल पाइन ने ध्यान से पत्र पढ़ते हुए कहा, "कर्ता लोगों की मति-गति देखकर कुछ ऐसा ही लगता है. लिखा है—गोड़ियर गांव के पाकिस्तानी टोला में स्कूल खोलने का प्रस्ताव पर विचार करते हुए......" आगे वह नहीं पढ़ सका. बोला, "भाड़ में जाये गोड़ियर गांव."

गोड़ियर गांव.

पंद्रह घर मैथिल, चार परिवार राजपूतों के यह है गोड़ियर गांव का बाबू टोला. बीस घर ग्वाले, आठ धानुक, तेरह घर गोढ़ी—गोड़ियर गांव का असल नाम इसी गोढ़ी टोला से हुआ. जहां गोढ़ी (मछली मारनेवाली जाति) लोग रहते हैं.

गोड़ियर गांव का सबसे सुखी संपन्न और शिक्षित परिवार गोढ़ी का ही है. तालेवर गोढ़ी के यहां रुपया गंध करता है. बड़ा बेटा व्यापार करता. है-रामजी गोढ़े. छोटा डाक्टरी पढ़ रहा है शहर में. ब्राह्मण टोली में चौधरी परिवार और राजपूतों में गिन-गूंथकर एक हैं बाबू साहब. चौधरी के घर की ही सारी संपत्ति धीरे-धीरे तालेवर गोढ़ी के घर चली गयी है.

तालेवर गोढ़ी के दरबार में भीड़ लगी हुई है. गांवभर के मुंहलगुवे चापलूसों को आज एक बात बताने लायक मिली है. मोहन दफादार ने कहा, "गांव के लोग दस साल से चिल्ला रहे थे स्कूल-स्कूल; मगर स्कूल के नाम पर एक चटसार भी नहीं खुला कभी. उधर देखिए. पाकिस्थनियां. सबको आये हुए छह महीने भी नहीं हुए हैं मिडल स्कूल खोलने का आर्डर पास हो गया."

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी ने एक ही साथ अचरज से आंखें फाड़ते हुए पूछा. "क्या. . . . या. . .? स्कूल. . .? पाकिस्थनियां टोला में?"

तालेवर गोढ़ी ने लोगों के मुरझाये हुए चेहरों को फिर खिला दिया. बोले, "भैया, तुम लोग कहां हो? पाकिस्थनियां सब बसेगा? बस सकेगा? बसने का होता तो ये जहां बसे थे वहां से भागते ही क्यों?"

जयराम सिंघ बोला, "जहां-जहां कोलनी बसाया वहां जाकर देखिए. ई बंगलिया सब देखने से 'निबोलिया' लगते हैं लेकिन भीतर से बड़ा मारखू होते हैं. रातों रात सिमेंट—लोहा—लक्कड़ बेचकर गांव के गांव परेट."

"कामचोर हैं सब."

"फैसन देखा है?"

"साला जनानी भी खड़ाऊं पहनकर चलेगी. धरती पर पैर नहीं देगी."

"धरती पर पैर कैसे दें ? सरकार बहादुर का रुपया है. घर की मुर्गी है. चाहे दाल बनाओ. . . . . ."

इस बार तालेवर गोढ़ी फिर बुदबुदाया, "अरे सरकार बहादुर ! अब सरकार बहादुर कहां? अब कांग्रेस बहादुर कहो. अपना राज है. मन का मौज है. नेहरू जी को लगता है क्या. रुपया खर्च होता है हो. मरेगी पबलिक."

उस दिन जब सभी उठकर चले गये तो तालेवर गोढ़ी ने जयराम सिंघ से एकांत में पूछा, "केश क्या सचमुच एड़ी तक होता है बंगालिनों का?"

जयराम सिंघ को अचरज हुआ—आज बूढ़े ने दो-दो बार बंगालिन के एड़ी तक लंबे केश के बारे में पूछा, क्यों पूछा था. . . .? छाजा-बाजा केश, तीन बांगला देश.

अगले ही दिन जयराम सिंघ कालोनी का फेरा लगा आया. बंगालिन को देखभालकर वापस मालिक के पास आ पहुंचा.

"यह बात सवा सोलहों आने ठीक है कि जो असली बंगालिन है उसको एड़ी तक केश है."

"एड़ी तक सचमुच?"

". . . . . आप हुकुम दीजिए तो हम लग जायें. . ."

"अरे नहीं, नहीं. मैं तो यूं ही. . . . . ."

जयराम सिंघ जानता है—इस बूढ़े कामी के हुकुम देने की यही

वे कौन-सी शक्तियां हैं जो युगों से हिंदू को हिंदू, मुसलमान को मुसलमान, सिख को सिख—यहां तक कि शरणार्थी को शरणार्थी—ही बने रहने पर विवश किए हुए हैं . . . उन्हें अपनी हद से उठकर 'भारतीय' और 'मानवीय' नहीं बनने देतीं. . .और अनचाहे ही हम उनके इस-उस जुलूस में शरीक हो जाते हैं . . .उन शक्तियों और हालात को बेनकाब करनेवाले हिंदी के यशस्वी कथाकार के उपन्यास का संक्षिप्त-सार—

भाषा है. इससे पहले भी हर बार इसने इसी तरह मुस्कराकर कहा था.

"हम जो साधना करते हैं, उसके लिए औरत बहुत जरूरी है. तंत्र सिद्ध करने के लिए 'भैरवी' का होना बहुत जरूरी है. आज मंगल है. शुभ दिन. आज पाकिस्थनियां टोले में कीर्तन होता है. यह मंत्र पढ़ा मिट्टी उस एड़ी तक केशवाली के नीचे पड़ जाये तो समझो कि इसी अमावस्या की रात तक चक्कर लग जाये."

ठीक कीर्तन शुरू होने के समय जयराम सिंघ कालोनी के ठाकुर-तला के सामने पहुंचा और भूमिष्ठ होकर पवित्रा को प्रणाम किया. . . . . . . मिट्टी फेंकने में कोई गफलत नहीं होने दिया है. अब देखा जाये कि रात भर में क्या असर हुआ है ?. . . . . . .

"पांव लागी दीदी ठकुराइन. हां, हमको कल पता चला कि आप बाभिन हैं. तिस पर कुमारी—आपके चरण में हम लोग पड़ें तो क्या हरज है." यह कहकर जयराम सिंघ ने सचमुच पवित्रा के दोनों पैरों को पकड़ लिया. लगा, देह में करंट मार दिया.

पवित्रा ने झटककर पांव छुड़ाया, "क्या करते हैं आप भाई साहब. देखिए मैं आपकी छोटी बहन हूं. आप भाई हैं. . ."

पत्थर जैसा जयराम सिंघ का मन गलकर तुरंत पानी-पानी हो गया. उसकी आंखें डबडबा आयीं. जयराम सिंघ को बहन नहीं, जन्मते ही एक को उसकी मां ने मार डाला था.

"मालिक ने आपके पास भेजा है. हम लोग तो नौकर-चाकर ठहरे. जहां भेजेंगे जाना ही पड़ेगा. मालिक बोले कि पाकिस्तानी-टोला में ऐसी पंडिताइन आयी है कि अपने जिला-जिवार में नहीं. जरा मेहरबानी करके एक दिन उचार दीजिए. दच्छिना हम लेते आये हैं साथ में."

"कैसा दिन?"

"तालेवर मालिक इसी सप्ताह काली मंदिर की नींव डालना चाहते हैं."

जिला मैंमनसिंघ, गांव जुमापुर.

नबीनगर कालनी के सैकड़े-पचहत्तर निवासी एक ही जिला और गांव के रहनेवाले हैं. पवित्रा को छोड़ सभी पिछड़ी जाति के लोग हैं. सतगोप, कांदू, नमःशूद्र और कैवर्त.

पवित्रा गोलपार्क के दक्षिण में कटहल के नये पेड़ के पास खड़ी है. . . . . जुमापुरवालों को बुलाकर दिखलाना होगा. पवित्रा न जाने कहां देख रही है.

गोपाल पाइन ने पवित्रा का ध्यान भंग किया, "की देखसेन?"

पवित्रा हंसी. बोली, "इधर आइये पाइन मास्टर. यहां खड़े होइए. अब देखिए. वहां दूर उस टेढ़े पेड़ को. . .देख रहे हैं न? अब उससे भी दूर वह काला जंगल दिखाई पड़ रहा है. टाइल—खपड़े के वे घर ? खजूर के दोनों पेड़ों के उस पार—देखा? अच्छा, बोलिए तो पाइन मास्टर, अछिमुद्दीनपुर हम लोगों के जुमापुर से जैसा दिखलाई पड़ता था. . . . मान लीजिए आप जुमापुर के ठाकुर पोखरे पर पूरब मुंह खड़े हैं और दूर दिखलाई पड़ रहा है अछिमुद्दीनपुर हाट का काला जंगल. वह पेड़, ठीक इसी तरह टेढ़ा पेड़ उस रास्ते में भी था. आपको याद है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल पाइन अवाक् हो गया. . . . . "ए की लीला ? . . . . .दीदी ठाकरुन. ए की देखा ले ? . . . . इस देश में सिर्फ आदमी 'आपन पार्टी' का नहीं दिशाएं भी आपन देश और आपन पार्टी की हो सकती हैं."

"सोचती हूं गांव का रुख ही इस ओर कर दिया जाये. जैसे जुमापुर में था."

"'आलबत्त' बदल दीजिए."

गोपाल पाइन को इतनी बड़ी बात मिल गयी. वह कैसे चुप रह सकता है? उसने एक-एक जुमापुर के निवासी को नाम ले-लेकर पुकारा. . . . . "देखे जास—देखे जास. . . . . देख जाओ. . .एक झलक अपनी जननी जन्मभूमि की."

सभी ने देखा. सब अवाक् रह गये.

उस रात जुमापुर निवासी शरणार्थियों को नींद नहीं आयी. सबको सपने आते रहे रात भर. . . . .

कादिर अब्बा के घर हर साल ठाकुरवाड़ी से दो बार सौगात भेजी जाती. ईद और दुर्गापूजा में. अपने पिता के साथ पवित्रा बचपन से ही ईद के मौके पर कादिर अब्बा की हवेली में जाती. कासिम, शमीम, शबनम—कादिर अब्बा के सभी बच्चे—दुर्गापूजा में ठाकुरबाड़ी में आते थे.

. . . . . .किंतु उस बार ईद के दिन पवित्रा नहीं गयी. कासिम दादा खुद आये. पवित्रा ने हंसकर कहा था, "ईद मोबारक कासिम दादा."

. . . कासिम दादा ने इधर-उधर देखकर कहा था, "चांद तो मैंने अभी देखा है."

"कासिम दादा क्या बक रहे हो?"

"तुमी आमार चांद. . . . . " कासिम ने पवित्रा को चूम लिया था.

"कासिम दादा. की. . . .?"

"ना, कासिम दादा ना. तोमार नोक (पति). . . . . ."

उसी बार बाग्दीपाड़ा की कुबड़ी की मारफत कासिम ने खबर भेजी थी—इस बार ईद के बाद वह पवित्रा को लेने आवेगा. ईद के बाद दूसरा ईद होगा—जशन !

. . . ईद का जशन. आग की लपलपाती हुई लपटों की रोशनी में पवित्रा ने देखा था. कासिम ढूंढ़ रहा है ? . . .कोथाय. . . .कोथाय से ? . . . . .आग. . . . मारकाट. . . .बंदूकों की आवाजें. . . .ईदका जशन. . . फुलझड़ी. . . . बंदेमातरम्. . . . गांधीजी की जय. . . . . पवित्रा के पिता की आवाज ठाकुरबाड़ी में मंडरा रही है. . . कासिम ढूंढ़ रहा है. साला बूड़ार बिटी कोथाम ? . . . . आमार चांद. . . . .

. . . . . फिर पवित्रा ठाकुरवाड़ी से निकलकर कैसे बाग्दीपाड़ा पहुंची, वह नहीं जानती. उसकी आंखें खुली थीं हिंदुस्तान के एक शरणार्थी कैंप में कटिहार स्टेशन पर.

. . . काला की मां ने बेतिया कैंप में चुपचाप बतलाया था—कासिम भाले की नोंक पर विनोद का कटा हुआ सिर लेकर सबसे आगे था. . . . . विनोद मुखर्जी. लखिमपुर के राय साहब विकास मुखर्जी का बेटा, पवित्रा का होनेवाला दुल्हा—जो पिता ठाकुर के नाम अपने बाप का कोई गुप्त संदेश लेकर आ रहा था. अथवा उसके मन में जो बैठी हुई थी उसी की सुधि लेने आ रहा हो. . . .अछिमुद्दीनपुर हाट पर कासिम ने विनोद को देखा और भुलावा देकर अपने घर ले गया. . . साला तुई पवित्रा के बिये कोर्बे ! . . . . . .विनोद का सिर कटकर धरती पर गिर पड़ा.

चौदह वर्ष बनवास के. . . . .

. . . . . .चौदह वर्ष हुए स्वराज्य के. . . . लगता है कल की बात हो. जुलूस की याद ताजा है. अभी दो-दो बार आम चुनाव हो चुके हैं. देश में बड़े-बड़े काम हो रहे हैं. जो करना है कर लो अभी. . . . . अगले साल के मालिक भगवान.

दंगा

● कृश्न चंदर

हिंदू और मुसलमान दोनों भाई-भाई हैं. और एक-दूसरे को देश भाई कहते हैं. देश—भाई जब स्नेह की उमंग में आकर एक-दूसरे के साथ खेलते हैं, तो दंगा हो जाता है. दंगा बड़े मजे का खेल है, और यह हिंदुस्तान में अक्सर खेला जाता रहा है. क्योंकि यहां हिंदू और मुसलमान बहुत संख्या में रहते हैं. आम तौर पर दंगा पंडित और मौलवी से शुरू होकर दफा 144 पर जाकर समाप्त हो जाता है. इस दौरान खून की नदियां बहती हैं, जिनमें हिंदू और मुसलमान बड़ी खुशी से नहाते हैं. इसके बाद पुलिस स्थिति पर काबू पा लेती है. और फिर दूसरे दंगे की तैयारियां शुरू हो जाती हैं. बड़े मजे का खेल है यह. और चूंकि हिंदू मुसलमानों को कभी इस खेल से फुरसत नहीं मिली, इसलिए उन्होंने यह काम बहुत देर तक अंग्रेजों को सौंप रखा कि वे हमेशा इन दोनों भाइयों के बीच न्याय करते रहें. यही कारण है कि अंग्रेजों को दंगा—न्यायशील कहा जाता है. और हिंदू-मुसलमानों को दंगाशील और जो लोग दंगाशील नहीं उन्हें प्रगतिशील कहा जाता है. लेकिन देश में ऐसे मूर्खों की संख्या थोड़ी है.

प्रस्तुति : अ. प.

पाकिस्तानी टोला की सरदारनी कहां जा रही है इधर गांव की ओर. . .तालेवर गोढ़ी के घर की ओर ही जा रही है.

जयराम सिंह की नजर पवित्रा पर पड़ी और उसका मुंह अचरज से खुल गया था. अभी तुरंत वह कॉलनी से आया है और अभी तुरंत ही ऐसी क्या बात हो गयी जो आ रही है. . . . .धन्न है ! गुरु के गुण में इतना तेज असर! वह दौड़ा हुआ तालेवर गोढ़ी के पास गया. "वह केशवती कन्ना आ रही है—खुद-ब-खुद."

तालेवर गोढ़ी गटगटाकर एक ही सांस में कुल्हड़ का दारू पी गया और बटुए से सौंफ की बुकनी निकालकर चबाने लगा; "जै हो औघड़दानी की."

सारे गांव में कुहराम मच गया. . . . पाकिस्तानी टोले की सरदारनी को गुण से खींचकर तालेवर गोढ़ी ने मंगवा लिया है. . .

सभी ने देखा. पाकिस्तानी टोला की सरदारनी मर्दों की तरह कुर्सी पर बैठी है और तालेवर गोढ़ी हाथ जोड़े खड़ा है.

पवित्रा के हाथ स्वयं जुड़ गये. "आपसे ही नहीं, इस गांव के सभी भाई-बहनों से मेरी अर्जी है एक. . . . .कॉलोनी में मिडल-स्कूल की मंजूरी मिली है. घर बनकर अब तैयार है? मगर मैं यह कहने आयी हूं कि यह स्कूल सिर्फ कॉलोनीवालों के लिए नहीं सभी के लिए है."

तालेवर गोढ़ी ने सिर हिलाकर कहा, "वाजिब बात."

भीड़ में से निकलकर रामजय ने कहा, "नहीं, सभी के लिए नहीं. वह सिर्फ आप लोगों के बच्चों के लिए खुला है. . . . आप लोगों के स्कूल में सब बंगला चाल-ढाल, बोली—भाषा पढ़ाया—सिखाया जायेगा. वह पढ़ाई हम लोग पढ़कर क्या करेंगे जिससे कि सभी बंगाली हो जायें और आप लोगों की तरह रिफूजी बनकर इस जिला से उस जिला में खोपड़ी तानते फिरें. हूं. . . आप खिलाफ बात बोलती हैं."

पवित्रा मुसकराती रही. वह बोली, "यह किसने कह दिया कि उस स्कूल में सिर्फ बंगला पढ़ाया जायेगा ? बल्कि कॉलोनी के बच्चे हिंदी में ही सब कुछ पढ़ेंगे. बंगला पढ़नेवाले को भी हिंदी पढ़ना होगा."

तालेवर गोढ़ी ने अचानक एक सूचना दी; "गांव के सभी भाई-बहनो, सुन लीजिए, आज रात आप लोग यहीं पत्तल जुटा लीजिए. . .तीरथ में जा रहा हूं. . . . .धन्न भाग. . . . . .! !"

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालेवर ने कालोनी के लोगों को भी इस भोज में निमंत्रित किया. और जब पहलवान ने कहा कि बंगला मुलुक की जनाना बहुत बढ़िया खाना बनाती हैं तो तालेवर ने पूरा भोज ही पाकिस्तानी टोला में देना तय किया.

भोज में गांव और कालोनी के सभी लोग आये. खाने की सबने जी भरकर तारीफ की––खासकर पुलाव की, जिसे इससे पहले गांव के लोग मुसलमानी खाना समझते थे.

रात के तीसरे पहर––भोज खत्म हुआ. ऐसा भोज गोड़ियर गांव में कभी नहीं हुआ. और ऐसा नाच भी कभी नहीं हुआ पहले.

और इस भोज और नाच के सिलसिले में उस दिन एक नया रिश्ता कायम हुआ. उस दिन अनायास पवित्रा के मुंह से निकल गया, "तालेवर काका."

तालेवर गोढ़ी की आंखों में झर-झर आंसू झरने लगे. भरे गले से बोला, "मेरी कोई. . . . बेटी नहीं."

तीन-चार शरणार्थी कैंपों में कई वर्षों तक जुमापुरवालों का दल पवित्रा के बल पर ही टिका रहा. जुमापुर का एक बच्चा भी दल से बिछुड़कर कहीं जाना नहीं चाहता. और पवित्रा के कारण ही उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, कभी भी. जुमापुरवालों के सारे अभाव-अभियोगों की सुनवाई सबसे पहले होती. दीदी ठाकरुन की आज्ञा के बिना न तो कोई राशन का एक दाना छू सकता था और न सरकारी सहायता का एक पैसा. . . .

. . .और हर जगह पवित्रा को एक जोड़ी आंखें घूरती रहतीं. उन आंखों से कासिम झांककर कहता, "यहां है मेरा चांद !" पवित्रा सुनती. कासिम कह रहा है––"तुम जो कहोगी, करने को तैयार हूं––आग में कूदने को कहो, पानी में डूबने को कहो!"

. . . . .पवित्रा हुक्म देती. चावल, दूध, बिस्कुट, दवा, कपड़े जल्दी भेजो. . . . .कैंप सुपरवाइजर की बदली करो. रिलीफ क्लर्क बर्खास्त करो. . . .कासिम कहता––जो हुक्म. जैसी मर्जी. . . . लेकिन मेरी अर्जी ? यानी कम से कम एक बोसा भी नहीं ?

ऐसे सवालों पर पवित्रा मुंह बिदकाकर हंस देती. अर्थात नानसेंस. लेकिन तालेवर गोढ़ी की आंखों में कासिम की नहीं, पवित्रा को अपने पिता काशीनाथ चटर्जी की झलक मिली है. . . . बाबा भी इसी तरह आंखों में प्यार भरकर देखते थे. . . . . पवित्रा का मन रह-रहकर तालेवर गोढ़ी के पास भाग जाता है.

सारी कालनी में एक दबा हुआ असंतोष छाया हुआ है; कई दिनों से गोपाल पाइन, शारदा बर्मन और हरलाल साहा ने आपस में सलाह करके तय किया है कि इस बार. . . . . .

सभी असंतुष्ट व्यक्तियों की जीभ पर एक बात आकर अटक जाती है. सब दीदी ठाकरुन के चलते हो रहा है. . . कोई बोलता नहीं. लेकिन सभी यही सोचते हैं.

कालनी और गोड़ियर गांव के सहभोज से गोड़ियर गांव के भी सभी लोग प्रसन्न नहीं.

अपने दरवाजे बैठकर चौधरी किसको क्या सुनावे? वह गांव के बाहर निकलकर गुआटोली की ओर चला जाता. "मैं कहता था न ? खिलाया न सभी को मुसलमानी खाना ? कौन कहता है कि पोलाव मुसलमानी खाना नहीं? हिंदू का खाना है खीर-पूरी. सब की जाति मारी गयी. . ."

जिला कालनी कमिटी की बैठक में इस बार पवित्रा के विरुद्ध कई दरख्वास्त पड़ी गयीं. और दोनों शिकायत––पत्र––गुमनाम !

एक पत्र में कहा गया है, "पवित्रा देवी कालोनी मेंबर के पद के योग्य नहीं. . . . .उसका दिमाग ठीक नहीं. कोलोनी के बाहर के लोगों से हेलमेल बढ़ाती है. . . .कोलोनी के लिए मंजूर हुए स्कूल में कोलोनी के बाहर के बच्चों को भर्ती करवाती है. . . . . ."

दूसरे पत्र में इल्जाम लगाया गया है, "पवित्रा देवी योगेशदास की लड़की संध्या की शादी हिंदुस्थानी से करवाने के लिए तुली हुई है. . . वह कहती है, गांववालों के साथ रोटी-बेटी होना बहुत जरूरी है."

बैठक से आर. ओ. साहब और गैर बंगाली सदस्यों के जाते ही वे सब पवित्रा पर टूट पड़े. यह क्या सब कर रहीं हैं आप?

कस्बा कालनी के मेंबर नागेन बागची ने कहा, "आप यदि अपनी शादी किसी हिंदुस्थानी से करना चाहती हैं तो शौक से कीजिए. मगर किसी को जबर्दस्ती. . . . . . .?"

पवित्रा के कानों में हंसी और गालियां समाती जाती हैं. . . काला की मां सो गयी है. . . . ये लोग मुझे मेरे आंगन में आकर गाली-गलौज करेंगे ऐसा लगता है.

आधी रात को जब सारी कालनी सो गयी, पवित्रा हिचकियां लेकर रोने लगी. उसका कोई नहीं, इस दुनिया में ? इतनी अकेली ? मां-आ-ओ ! ! बाबा आ-आ ! !

. . . . .गड़गड़, गुड़म-गुड़म.

काला की मां जागी. कालनी के लोग जगे. क्या. . .? मेघ? हवा? आसिन महीने में 'कालबैशाखी' के लक्षण?

सुबह को लोगों ने देखा––चारों ओर सिर्फ पानी.

. . . . . आश्चर्य. इस दैवी–प्रकोप के चपेट में सिर्फ दस गांव के लोग पड़े हैं. सारे जिले में कहीं न एक बूंद पानी पड़ा और न हवा चली. . .

छोटन बाबू ने तालेवर गोढ़ी के दरवाजे पर धरना देने का निश्चय किया है. गांव के लोग मर रहे हैं और आपकी मिल चल रही है. निकालिए हजार रुपया चंदा. वरना लाइसेंस कैंसिल करवा दूंगा.

तालेवर गोढ़ी ने भी प्रतिज्ञा कर ली है. इस तरह धमकी देकर उससे एक दमड़ी भी कोई वसूल नहीं कर सकता.

तालेवर गोढ़ी के दरवाजे पर भीड़ लगी हुई है. दुख, पीड़ा, आतंक, भय, और भूख से कातर लोगों के झुंड.

"ताले काका !"

"कौन ? . . . . . .मेरी बेटी ?"

पवित्रा अपना आंचल पसारकर खड़ी है. कालाचांद की कीर्तन पार्टी के लोगों ने करुण सुर में गीत शुरू किया––भिक्खा दाउ गो . . . .

तालेवर गोढ़ी नहीं देख सकता है अपनी बेटी की ऐसी हालत. . . भिखारिन ? मेरी लक्ष्मी बेटी भीख मांगती है ?

जयराम सिर्फ सिर्फ रोता है. रोता ही जाता है.

तालेवर गोढ़ी पर मानो कोई देव सवार हो गया. वह दौड़कर अपनी हवेली में गया और नोटों के कई बंडल लेकर लौटा.

"जै हो. जै हो. . . . . तालेवर. . . . . ."

"ए, ए, चुप रहिए. मुझ पापी की नहीं––जै बोलो––देवी पवित्रा की."

भिखारियों का दल अब गांव से शहर को चला––जुलूस बनाकर. . .

मैं जी गयी फिर. . . .मैं अकेली नहीं, निस्संग नहीं, मैं कहीं निर्जन में नहीं. मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूं. . . .'आमि आज जीवने प्रथम बार धन्य हइलाम!'

प्रस्तुति : कांता

-संपूर्ण उपन्यास भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली-3 से प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई अब्दुर्रहमान

अमरलाल हिंगोराणी

खुद खायी हुई कसम के मुताबिक भाई अब्दुर रहमान कहता है कि उसने सच्चाई कही है, पूरी सच्चाई कही है और सिर्फ सच्चाई कही है, लेकिन मनुष्यता को हिंदू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई में बांटकर देखनेवाली कानून की आंखें क्या भाई अब्दुर रहमान की सच्चाई को देख सकीं? बता रहे हैं वर्तमान सिंधी कहानी के सुपरिचित हस्ताक्षर अमरलाल हिंगोराणी—

कई उसे पागल कहते और कई उसे पहुंचा हुआ दरवेश समझते. शायद वह पागल भी था और दरवेश भी. औसत से कुछ लंबे कद और गेहुंए रंग का वह दुबला-पतला-सा आदमी था. वह अपने गिर्द हमेशा एक गुदड़ी-सी लपेट रखता.

एक रहस्यवादी की तरह वह अपने ही विचारों में खोया रहता. कभी वह मस्जिद में बैठा दिखता तो कभी किसी मंदिर में. प्रायः शाम को सक्खर में नदी के घाट पर लोग जमा होते और संत सामी के गीत गाये जाते. वह भी वहां होता और बड़े ध्यान से सुन रहा होता.

एक दिन जब वह सड़क पर जा रहा था तो उसने एक पत्थर से ठोकर खायी. उसी समय उसने स्वयं से कहा, "भाई अब्दुर रहमान, तुम्हारे अंदर धोखा भरा हुआ है. तुम्हारी आंखों पर अहंकार का पर्दा पड़ा हुआ है. अगर तुम आंखें खोलकर दीन भाव से चलते तो इस तरह ठोकर न लगती."

वह कुछ सोचता हुआ बैठ गया. कुछ क्षणों में ही उसने स्वयं से फिर कहना शुरू किया, "भाई अब्दुर रहमान, देखो तुम कितने स्वार्थी हो! क्या उस पत्थर को वहां से हटाये बिना ही चले जाना तुम्हारे लिए ठीक है? जरा सोचो तो भाई! शायद कोई और राही भी इससे ठोकर खाकर गिरे." कुछ देर रुककर और सोचकर उसने स्वयं को आज्ञा दी, "भाई अब्दुर रहमान, अगर तुम सचमुच अच्छे आदमी हो तो उस पत्थर को उठाकर एक तरफ फेंक दो." और उसने पत्थर उठाकर एक तरफ फेंक दिया.

यदि कोई इस विचित्र व्यक्ति से भोजन करने के लिए कहता तो पहले वह स्वयं से वही बात दोहराता और फिर उत्तर में एक फारसी कहावत के अनुसार कहता, "आदमी को जीने के लिए खाना चाहिए, न कि खाने के लिए जीना चाहिए."

वह फारसी भाषा का कवि था और उसे हाफिज की सारी रचनाएं कंठस्थ थीं. शाह और सभी की रचनाएं भी उसने पढ़ी थीं, पर 'सच्चल' की कविताओं से वह बहुत प्रभावित था. उसे उर्दू का ज्ञान था और जब लोगों को पंजाब से उर्दू में लिखे हुए पत्र आते तो वे उन्हें पढ़ाने के लिए अब्दुर रहमान के पास आते. वह शांत स्वभाव का था और अपने ही विचारों में खोया रहता. उसकी सांसारिक आवश्यकताएं बहुत कम थीं. थोड़ा-सा साधारण भोजन पाकर वह संतुष्ट हो जाता.

एक दिन एक निर्दोष व्यक्ति किसी के जाल में फंस गया. पुलिस ने उस पर चोरी का इल्जाम लगाया कि उसने एक मुसलमान सेठ की सोने की घड़ी चुरायी है. वह घड़ी उसकी चीजों में पायी गयी थी और उसे साबित करने के लिए गवाहियां भी थीं. उस आदमी के बचने का कोई रास्ता नहीं था और सेठ असर रसूखवाला आदमी था.

अभियोगी ने अपनी सफाई देते हुए कहा कि एक दिन वह सेठ के घर के पास से गुजर रहा था, उसे पकड़ लिया गया और यह कहकर खूब पीटा गया कि उसने सेठ की बहू-बेटियों की ओर ताका है और गंदी हरकतें की हैं. अगर अब्दुर रहमान, जो कि उस समय वहां उपस्थित था, उसे न छुड़ाता तो उसे जान से मार डाला जाता.

तब अब्दुर रहमान स्वयं से बातें करने लगा, "देखो भाई अब्दुर रहमान, सेठ अपनी जिद पर अड़ा हुआ है. उसे अपनी इज्जत का बहुत खयाल है. उसकी एक बहन है, जिसकी उम्र पैंतीस साल की हो चुकी है, पर वह उसकी शादी नहीं होने दे रहा. उसे डर है कि शादी होने पर वह जायदाद में से शायद अपना हिस्सा मांगेगी. अगर उस लड़की की शादी न हुई तो. . ." यह कहते हुए वह अचानक रुका और उसने घूरकर देखा, "नहीं, नहीं, भाई अब्दुर रहमान, तुम्हें दूसरों का पर्दाफाश नहीं करना चाहिए. अपने दोनों हाथ जोड़ कर सेठ के पास जाओ और उसे समझाओ. अगर वह फिर भी न माने, तब तुम सच्ची बात कह देना." अब्दुर रहमान ने ऊंची आवाज में स्वयं से यह बातें कीं, जैसे वह बहुत से लोगों के सामने बोल रहा हो. जिस-जिसने भी उसकी बातें सुनीं, वह उसका संकेत समझ गया. सेठ भी बिना समझे न रहा.

इस प्रकार उस गरीब आदमी को छुटकारा मिला, पर अब्दुर रहमान की स्वयं से की बातों की सारे शहर में चर्चा होने लगी और सेठ की इज्जत मिट्टी में मिल गयी.

आखिर कोर्ट में मुकद्दमा शुरू हुआ. गवाहों में तीन व्यक्ति सेठ के पड़ोसी थे और चौथा अब्दुर रहमान था. दो गवाहों को सेठ ने लालच देकर अपनी तरफ कर लिया था और तीसरे गवाह ने डर के कारण साफ कह दिया कि उसे इस मामले के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं है. अब अब्दुर रहमान ही एक गवाह था, जिस पर सारे मुकद्दमे का आधार था. अभियोगी के वकील को इस अजीब किस्म के आदमी पर भरोसा नहीं था.

जब अब्दुर रहमान को बुलाया गया तो उसने स्वयं से कहा, "भाई अब्दुर रहमान, तुम्हें कोर्ट में बुलाया गया है. विनीत भाव से वहां जाओ." उसने इस अवसर के लिए किसी से जूते लिये और उन्हें अपनी गुदड़ी में लपेट लिया. आखिर कोर्ट में उसका नाम पुकारा गया. अब्दुर रहमान ने झट जूते पहने और गुदड़ी अपने गिर्द लपेटकर उस कमरे में दाखिल हुआ.

चपरासी ने उससे कहा, "अपने जूते उतार दो!" यह सुनकर अब्दुर रहमान ने स्वयं से कहा, "भाई अब्दुर रहमान, चपरासी तुम्हें जूते उतारने के लिए कह रहा है. उससे कहो कि तुमने यह जूते इस खास मौके के लिए किसी से लिये हैं, ताकि इज्जत के साथ मैजिस्ट्रेट के सामने पेश हो सको." तब यही बात चपरासी से कहकर अब्दुर रहमान निडर होकर अंदर दाखिल हुआ. मैजिस्ट्रेट ने मुस्कराकर उसका स्वागत किया. जब वह गवाही देने के लिए कटघरे में खड़ा हुआ तो मैजिस्ट्रेट ने कुछ तीखे स्वर में उससे पूछा कि उसने अपने गिर्द गुदड़ी क्यों लपेटी हुई है?

उसी समय अब्दुर रहमान ने स्वयं से कहा, "सुनो भाई अब्दुर रहमान, मैजिस्ट्रेट साहब ने तुमसे गुदड़ी के बारे में पूछा है. ध्यान रहे, तुम इस समय कोर्ट में हो. जवाब देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पहले फिर सोच लो. उनसे कहो कि हिंदू गवाह ऐसे मौकों पर अपनी गर्दन के गिर्द गुलबंद या तौलिया लपेट लेते हैं. तुमने भी कोर्ट के लिए इज्जत जाहिर करने के लिए इस रिवाज को अपनाया है.'' फिर अब्दुर रहमान ने यही बात गंभीर आवाज में मैजिस्ट्रेट से कही. कोर्ट में उपस्थित सभी व्यक्तियों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा.

"जैसा मैं कहूं, वैसे कहो," कोर्ट के क्लर्क ने उससे कहा, "ईश्वर के नाम पर मैं सच्चाई कहूंगा, पूरी सच्चाई कहूंगा, सिर्फ सच्चाई कहूंगा." अब्दुर रहमान ने पहले अपने मन में यह बात दोहरायी और फिर कहा, "हां, क्लर्क सच ही कह रहा है." तब क्लर्क की ओर मुड़कर उसने ऊंची आवाज में क्लर्क का कहा हुआ वाक्य दोहराया.

"तुम्हारा नाम?"

"भाई अब्दुर रहमान, क्लर्क तुम्हारा नाम

जानना चाहता है. हां, उसे अपना नाम बताओ." तब उसने ऊंची आवाज में क्लर्क से कहा, "मेरा नाम अब्दुर रहमान है."

मैजिस्ट्रेट जो पहले खुश दिख रहा था, अब अपना धैर्य खोने लगा. एक वकील ने उठकर मैजिस्ट्रेट से अंग्रेजी में बताया कि इस तरह स्वयं से बातें करना इस आदमी की आदत है?

"तुम्हारा मजहब?"

अब्दुर रहमान ने जैसे कुछ उलझन में पड़कर स्वयं से कहा, "अब भाई अब्दुर रहमान, यह न भूलना कि तुमने सच बोलने की कसम खायी है. आखिर तुम्हारा मजहब क्या है? ओह, यह तो सचमुच एक बेढंगा-सा सवाल है! अगर मैं कहूं कि मैं मुसलमान हूं तो हिंदू एतराज करेंगे. अगर मैं कहूं कि मैं हिंदू हूं तो मुसलमान जरूर ही बुरा मानेंगे. सो, सच बात क्यों न कही जाये? भाई अब्दुर रहमान, आखिर तुम इस छोटी-सी बात पर उलझन में क्यों पड़ गये हो? यहां संत 'सच्चल' की वे पंक्तियां क्यों नहीं दोहराते—'मैं ना हिंदू हूं, न मुसलमान हूं. मैं बस वह हूं, जो हूं.'"

क्लर्क ने आश्चर्य से मैजिस्ट्रेट की ओर देखा. मैजिस्ट्रेट ने आज्ञा दी, "अच्छी बात है, इसे मुसलमान लिख लो."

"तुम्हारी उम्र?"

"भाई अब्दुर रहमान, अब यह तुम्हारी उम्र जानना चाहता है. जब मैं कहता हूं कि मैं मुसलमान नहीं हूं तो मैजिस्ट्रेट मेरे बारे में लिखवाते हैं कि मैं मुसलमान हूं. अच्छा, तो क्लर्क से कह दो कि वह इसके बारे में भी मैजिस्ट्रेट से ही पूछे." तब क्लर्क की ओर मुड़कर उसने कहा, "तुम यह सवाल भी मैजिस्ट्रेट साहब से पूछ सकते हो?"

मैजिस्ट्रेट आपे से बाहर हो गया था और उसने धमकी देते हुए कहा, "जाहिल जाट, अपनी जबान को लगाम दो और ठीक तरह से गवाही दो. तुम यहां कोर्ट में खड़े हो."

अब्दुर रहमान मुस्कराता रहा और स्वयं से बातें करता रहा, "भाई अब्दुर रहमान, मैजिस्ट्रेट साहब कहते हैं कि तुम जाट हो."

इससे पहले कि वह स्वयं से कही यह बात दोहराता, मैजिस्ट्रेट ने कहा, "जाट अनपढ़ आदमी को कहते हैं!"

"इसलिए भाई अब्दुर रहमान, तुम जाट हो! तुम सिंधी, फारसी, उर्दू, संस्कृत और हिंदी जानते हो. तुम कुल मिलाकर पांच जबानें जानते हो. मैजिस्ट्रेट से पूछो कि वे खुद कितनी जबानें जानते हैं?"

उसकी बात बीच में ही काटकर मैजिस्ट्रेट ने गुस्से में कहा, "जाट वह है, जो अंग्रेजी न जानता हो." मैजिस्ट्रेट की आंखों में जैसे जीत की चमक थी, पर कोर्ट की शांति भंग हो चुकी थी और सभी इस वाद-विवाद को सुनते हुए कानाफूसियां कर रहे थे.

अब्दुर रहमान ने गम्भीर और ऊंची आवाज में स्वयं से फिर कहा, "भाई अब्दुर रहमान, मैजिस्ट्रेट साहब कहते हैं कि अंग्रेजी न जानने वाला जाट होता है. सुना तुमने इस तोपणमल के बेटे को? हां, ढोरों को चरानेवाला तोपणमल! याद है न? मैजिस्ट्रेट से पूछो कि उनके पिता और पूर्वज जो अंग्रेजी नहीं जानते थे, क्या जाट थे."

मैजिस्ट्रेट गुस्से से लाल-पीला हो रहा था. वह गरज-गरजकर शांत होने के लिए कहता रहा. आखिर उसने कागज और कलम लेकर अब्दुर रहमान को आज्ञा दी, "बहुत हो चुकी तुम्हारी ढिठाई! कोर्ट की बेइज्जती करने के जुर्म में तुम पर मुकद्दमा चलाया जायेगा. अब अपनी जबान बंद रखो और अपने बचाव में जो कुछ कहना हो, कागज पर लिख दो."

अब्दुर रहमान ने कागज और कलम ली और मेज पर झुककर उसने लिखा :

जनाब मैजिस्ट्रेट साहब,

भाई अब्दुर रहमान ने कोर्ट की बेइज्जती नहीं की है. अगर किसी ने कोर्ट की बेइज्जती की है तो वह आप खुद हैं. आज आपने कई गवाहों की बेइज्जती की है, पर आपकी की हुई यह बेइज्जती भाई अब्दुर रहमान को छू भी नहीं सकी है. याद रखिए, आप जिन लोगों का फैसला करने यहां बैठे हैं, उनके आप मालिक नहीं हैं. आप उनके नौकर हैं. हम गवाह इस कोर्ट में अपनी मर्जी से नहीं आये हैं. आपने हमें बुलाया है ताकि हम इन्साफ करने में आपकी मदद करें. क्या अपने मेहमानों से इस तरह का सलूक किया जाता है? अगर आप गवाहों की बेइज्जती करेंगे तो कोर्ट में गवाही देने कौन आयेगा? सच पूछिए तो आप पर मुकद्दमा चलना चाहिए और आपको नौकरी से अलग कर देना चाहिए, क्योंकि आपने कोर्ट में ऐसी भद्दी जबान का इस्तेमाल किया है और अपने बादशाह को नीचा दिखाया है, जिसके सामने आपने वफादारी की कसम खायी है.

खुद खायी हुई कसम के मुताबिक भाई अब्दुर रहमान कहता है कि उसने सच्चाई कही है, पूरी सच्चाई कही है, और सिर्फ सच्चाई कही है. □

स्याह हाशिया

• मंटो

"मेरी आंखों के सामने मेरी जवान बेटी को न मारो."

"चलो, इसी की मान लो... कपड़े उतारकर हांक दो एक तरफ!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादों के पंछी

प्र. ई. सोनकांबले

अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'आठवणीचे पक्षी' के प्रकाशन के साथ ही प्रा. ई. सोनकांबले का नाम मराठी कथा-साहित्य के उन रचनाकारों में गिना जाने लगा जिन्होंने दलित-साहित्य के सृजन में अपनी एक विशिष्ट भूमिका निभायी है.

'यादों के पंछी' इसी उपन्यास का हिंदी अनुवाद है जिसका संक्षिप्त रूपांतर हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं. सहज विश्वसनीयता और पठनीय प्रवाह इस उपन्यास को भारतीय कथा-साहित्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि बना देता है . . .

मां-बाप की मृत्यु के बाद दीदी मुझे अपने घर ले आयी. उसकी ससुराल का गांव बहुत बड़ा नहीं था परंतु मेरे गांव की तरह छोटा भी नहीं था. मेरे गांव में रहन-सहन का स्तर बहुत सामान्य था. कर्नाटक-आंध्र की सीमा पर था यह छोटा-सा गांव. मेरे गांव में अधिकतर लिंगायत लोग रहते हैं. ये सभी अस्पृश्यता को कड़ाई से मानते हैं.

आजकल अछूतों के प्रति सवर्णों के व्यवहार में थोड़ा फर्क आ गया है. परंतु देहात में साठ वर्ष के वृद्ध अछूत से भी कोई आदर से बोलता नहीं दीखता. अछूत इस अपमानित व्यवहार के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं.

मैं स्कूल में भरती करा दिया गया. औरों के साथ स्कूल जाता. छुट्टी के दिन मुझे मजदूरी पर जाना होता. मेहनत और ईमानदारी से काम करता तो मालिक बहुत खुश होते. बाकी काम करनेवाले सभी उम्र में मुझसे बड़े होते. दीदी पीली जुआर के दाने पीस लेती और उसकी रोटी पकाकर खिलाती.

कुछ ही दिनों बाद बहन मुझे डांटने-फटकारने लगी. बहनोई बहुत आलसी और निकम्मे किस्म के आदमी थे. बेचारी दीदी ही किसी तरह घर चलाती. मैं भी खूब काम करता. आसपास कोई मृत जानवर काटा जाता तो उसका हिस्सा लाने को मुझे दौड़ाती. मांस के टुकड़ों के लिए कई बार मार-पीट हो जाती. महारों ने ज्यादा लिया है. . . मातंगों को कम मिला है. मैं यह मांस नहीं खाता था. मैं इमली के बीज भूनकर या भिगोकर ही खा लेता. मैं हमेशा महसूस करता कि मैं अनाथ हूं.

भीमराव बापू गांव के पटेल थे. अक्सर मैं उन्हीं के बाग में पड़ा रहता. ब्राह्मणों के घरों में गोबर उठाना, दीदी के घर की सफाई और फिर स्कूल जाना यह मेरी दिनचर्या थी. बाग की स्त्रियां बड़ी बेरहम थीं. अव्वल तो वे मुझे कभी खाना परोसती ही नहीं थीं. . . कभी परोस भी देतीं तो ऊपर से ही. अंधेरे में न वे देख पातीं न मैं, खाना नीचे गिर जाता. मैं धूल में सनी सब्जी-रोटी उठा लेता.

कुछ दिनों बाद मैं दीदी का गांव छोड़कर जगरपुर वाले जीजाजी के यहां चला आया था. पर वहां भी बंधुआ-जैसी स्थिति में मन न रमा. कैसे भूलूं विनायक रावजी को जिन्होंने मेरे लिए एक नयी दुनिया की खिड़की ही खोल दी थी. मैं अब फिर दीदी के यहां आ गया था. कक्षा चार तो किसी तरह पास कर गया. . .पर इससे आगे गांव में प्रबंध नहीं था. एक दिन विनायकराव गुरुजी आये. उन्होंने कहा, "मेरे साथ चलो. फीस-वीस का मामला मैं देख लूंगा."

स्कूल की छुट्टी के बाद मैं जंगल से लकड़ी या घास लेता आता. मजदूरी में मुझे मूंगफली या कपास मिलता. दीदी को इस तरह की मदद अच्छी लगती. पांचवीं से सातवीं तक मैं हडोलती में पढ़ा. पैसों की जरूरत अक्सर होती. मैं नरसिंह ढोर को लगातार बबूल की छाल लाकर बेच देता.

उसका छोटा भाई और मैं, दोनों अछूत थे और बाहर के भी, इसलिए हम दोनों एक-दूसरे के अधिक निकट आ गये. बबूल की छाल ने पढ़ाई में मुझे काफी सहायता पहुंचायी.

दीदी के यहां रहते हुए मैं कई तरह के काम करता. उनमें से एक काम था—हड्डियां इकट्ठी करना. पहले मैं बबूल की छाल लाता था अब हड्डियां लाने लगा. यह काम आसान था. पैसे भी मिल जाते थे. हड्डियां खरीदनेवाले व्यापारी के आने तक उन्हें संभालकर रखना होता. इस काम में कई बार कुत्तों से डर भी लगता था. जानवर है तो क्या, अपना भोजन औरों को सरलता से थोड़े ही दे देगा.

मेरे सभी साथी मेरी स्थिति जानते थे. उनसे थोड़ी दूर बैठकर ही क्यों न सही, मैं रोटी खाऊं—यह उनकी इच्छा रहती. वे मुझे अपने बहुत निकट न आने देते पर अछूत कहकर अपमानित भी न करते. शायद यह मराठवाड़ा पर आर्यसमाज का प्रभाव रहा हो. कुमठा के राजपूत भाई रतनसिंह और संग्रमसिंह मेरे सबसे करीब आये. वे हमेशा कहते, किसी चीज की जरूरत हो तो हमें बता देना. और भी कई लड़के मुझसे स्नेह जताते.

ललिता, सुमन और सुभद्रा मुझे अपनी फेयर कापियां दे देतीं, "हमारी कापियां पढ़ लो, बाद में लौटा देना!"

जिस दूकान पर मैं कभी-कभार मजदूरी करता था, वहां से मुझे मोटा कागज फ्री मिलता था. मैं उनकी कापियों और किताबों पर कवर चढ़ाकर देता. आज उनसे मिलने की बड़ी इच्छा होती है. अहमदपुर के महात्मा गांधी कॉलेज में 22 फरवरी, 1981 को स्नेहमिलन के अवसर पर प्रमुख अतिथि के रूप में मैं वहां गया था. वहां मुझे सम्मानित किया गया. वहीं सुमन ताई से भेंट हुई.

गांव के अंतिम छोर पर दलितों की बस्ती होती है, हडोलती भी ऐसा ही था. पहले महारों की बस्ती फिर मातंगों की. एक भालकरी लड़के से दोस्ती हो गयी थी. महार जाति का यह लड़का धर्मा था. मैं भी महार था. दोनों एक कक्षा में पढ़ते थे. धर्मा को उसकी मां ने जिस बुढ़िया के साथ रख छोड़ा था, वह बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाती.

उन दिनों चेरा से हडोलती आ-जाकर मैं पढ़ रहा था. दीदी मुझ पर जितना प्यार जताती उतना ही डांटती भी थी. मुझे बहुत बुरा लगता.

मैं दीदी के साथ बिदवा इकट्ठा करने का काम करता. कई बार मन बहुत उदास हो जाता. हमेशा की तरह मजदूरी की आशा में गांव में चक्कर लगा रहा था. एक मराठा बुढ़िया ने मुझसे कहा, "आंगन में एक कुत्ता मरा पड़ा है. उसे वहां से निकालकर फेंक दे. आधी रोटी दूंगी."

मैंने जैसे-तैसे उस सड़ी हुई लाश को फेंका पर तब तक बुढ़िया की बहू आ चुकी थी. उसने रोटी का चौथाई टुकड़ा मेरी तरफ फेंक दिया और बोली, "ये अछूत मेहनताना भी मांगते हैं और रोटी भी. . . चल निकल यहां से."

अपमानित-सा मैं वह टुकड़ा लिए वापस आ गया.

चेरा में दीदी की हालत बहुत खस्ता हो गयी थी. मैं चौथी में उत्तीर्ण हुआ था. जगलपुर के जीजा का संदेशा मिला तो मैं उनके पास गया. दीदी और बुआ ने बहुत समझाया पर मैं व्यापार सीखने की इच्छा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

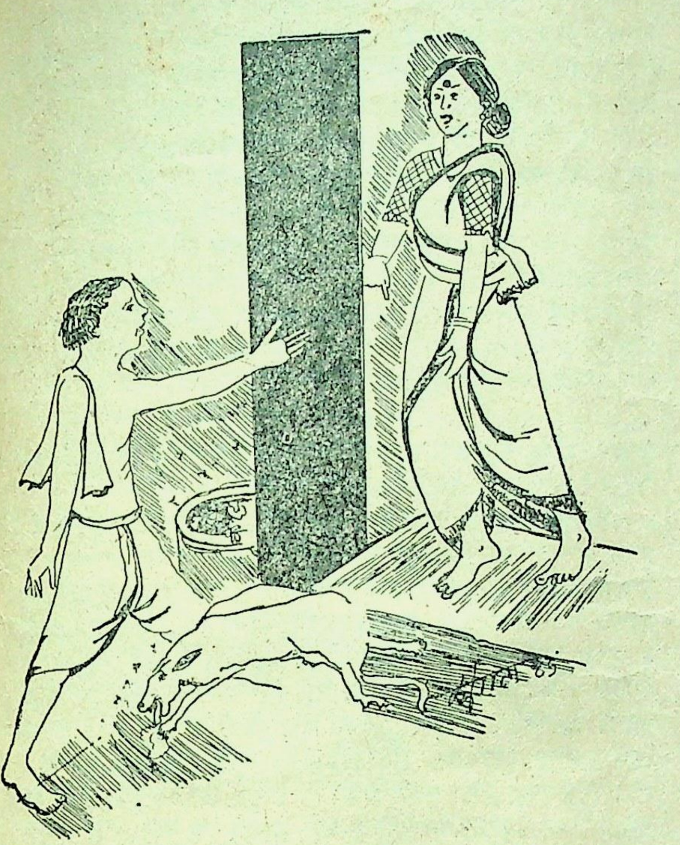

वजह से चला ही गया. वहां उन्होंने, मुझे मजदूरी पर लगवा दिया. इस गांव के कुछ लड़के पढ़ने को हडोलती जाते थे. मैं उनसे पूछता कि पांचवीं कक्षा में कौन-कौन-सी किताबें हैं. . . . कोर्स कठिन है कि सरल. . . पर वे मुझसे बोलते ही नहीं थे. वे ब्राह्मण या सवर्ण जातियों के लड़के थे. .अक्सर वे अछूत कहकर टाल देते या गालियां देने लगते. सब छोड़-छाड़ कर भाग जाने की इच्छा होने लगी.

जैसे-जैसे मैं बड़ा होता गया 'चेरा'वाले जीजाजी भी आग्रह करने लगे कि कि अब मुझे कोई नौकरी कर लेनी चाहिए. चाहते तो वे यही थे कि मैं भी उन्हीं की तरह ऊंटों की देखभाल का काम करूं. ऊंट चराने मैं जंगल जाने लगा. धीरे-धीरे मुझे ऊंटों के बारे में अच्छी-खासी जानकारी हो गयी.

मैं चेरा स्कूल में था, वहां गिरगांव नाम के मास्टरजी थे. हम दो-तीन अछूत छात्रों से उन्होंने जंगल से जलाने की लकड़ी लाने को कहा. मैं, हाजिबा और राम लकड़ी उठा ही रहे थे कि शामराव जमादार के लड़के ने देख लिया. वह हमें गंदे पानी के जोहड़ की तरफ ले गया. वहां गंदा पानी निकाल कर हम पर उंड़ेलने लगा. जाड़े में कंपकंपी छूट गयी. काफी देर बाद उसने हमें छोड़ा.

मिलावां इकट्ठा करने के लिए एक बार मैं जंगल गया. काफी मिले. मैंने उन्हें एक कपड़े की पोटली में बांध लिया. इसी बीच मुझे भूख लग आयी. पास के खेत में कहीं मूंगफली के पौधे लहरा रहे थे. खेत का मालिक पुंडलिक पटेल था. मूंगफली तो निकाल ली गयी थीं. मुझे लगा कि जमीन उकरने से कुछ मूंगफली मिल जायेंगी. हिम्मत करके मैं कुरेदने लगा. खाना अभी शुरू भी नहीं किया था कि खेत की मालकिन प्रयागबाई आ धमकी. गुस्से में मुझ पर टूट पड़ी. मेरी पोटली उसने छीन ली. गणू मातंग वहां आया तो चिल्लाने लगा, "भाग जा रे ! यह तो बांझ औरत है ! बच्चों को देखकर चिढ़ती है. . . . .और फिर अछूत बच्चे पढ़े लिखें यह इसे बिल्कुल पसंद नहीं है." मिलावें तो उसने ले ही लिए थे. .. अछूतों को गालियां भी बकने लगी. सातवीं कक्षा के बाद मुझे भातूर जाना पड़ा. वहां मुझ पीलिया, खुजली और जूं ने खूब परेशान किया. दीपावली की छुट्टियों में मैं चेरा वापिस आ गया. दीदी को मेरी हालत देखकर काफी बुरा लगा.

एक बार क्या हुआ कि मैं अपनी एक बहन के गांव से दूसरी बहन के गांव जा रहा था. रास्ते में बड़ी जोर की प्यास लगने लगी. रास्ते में छोटा-सा जोहड़ पड़ा. मेरी इच्छा हुई कि 'चेलमा' में से पानी पी लूं. मुझे मालूम था सवर्ण 'चेलमा' का पानी नहीं पीते. वह तो जानवरों के लिए बनाया जाता है. अंजुरी भर कर पानी पिया ही था कि पास की झाड़ी में कुछ हलचल हुई घनी मूंछों वाला एक दुबला-पतला आमी अपने बैल को पानी पिलाने आया था. उसने मुझे खूब घुड़का और फिर वहां न आने की हिदायत दी, "परे हट. . . . फिर कभी दिखाई दिया तो. . . ".

मैंने देखा कि उसने हाथों से पानी उलीचने के बाद ही घड़ से पानी निकाला और बैलों के सामने रख दिया. मैं सीधा बहन के गांव जा पहुंचा.

बहन के यहां पहुंचा तो जीजाजी का व्यवहार अच्छा न लगा. धीरे-धीरे मैं बड़ा होता गया. गांव में अक्सर सवर्ण लोग मंदिर में कीर्तन करते तो मैं भी दूर बैठा सुनता रहता. लोग नारियल का टुकड़ा तो कभी गुड़ मेरी तरफ फेंक देते. बहुत अच्छा होती कि मृदंग और ताल बजाने को मिलें पर मुझ अछूत को कौन देने वाला था भला !

मैं अक्सर सवर्णों के यहां रोटी मांगने जाता. दूर खड़े होकर चिल्लाना पड़ता—'जोहार, माई बाप' बजाने वाली लकड़ी भी बजानी पड़ती जिससे पता लग जाये कि मांगने वाला अछूत आ गया है. 'रोटी दो माई' भी चिल्लाना पड़ता था. एक दिन एक स्त्री ने सात घानों से बनायी रोटी मुझे दे दी. बुआ ने देख लिया. बड़ा हो-हल्ला हुआ कि फलां ने टोटका कर दिया. अपनी मुसीबत दूसरे के सिर डालने का टोटका.

वासुदेव राव पिंपले नाम के हमारे अंग्रेजी के शिक्षक थे. उनसे मुझे बहुत स्नेह मिला. किसी तरह मैट्रिक कर लिया. लोगों ने कहा—. 'अब औरंगाबाद जाकर पढ़ो. वहां दलितों के लिए खास व्यवस्था है !'

प्रवेश भी मिल गया. एक दिन हमारे सबसे बड़े सर—प्राचार्य मनोहर वानखेड़े आये. मेरी दयनीय स्थिति देख उन्होंने मुझे दस रुपये दिलाये मैंने पूछना चाहा कि ये दस रुपये कब वापस करने होंगे! . .पर वे आगे निकल गये. आज वे यादें पंछियों की तरह उड़ रही हैं.

एम. ए. हुआ और बंबई से कौल आयी. इंटरव्यू दिया. . .

. . . . . पिछले वर्ष लातूर के बसवेश्वर कालेज के 'राष्ट्रीय सेवा कैंप' के सिलसिले में मैं प्रमुख अतिथि बनकर सुल्लाली गया था. औरंगाबाद लौटने से पहले चेरा भी गया. सबसे मिला. अपने बेटे का-सा स्नेह देने वाले भीमराव बापू, उनका लड़का शिवाजी. . . .जो मुझे खूब सताता था, भाई के साथ मुझ जैसे दलित को अपने मैके में भरपेट खाना खिलाने वाली पुतलीबाई. . . . सभी अब नहीं रहे. यह खबर सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ.

जिनके साथ मैं इस स्थान पर आया था, वे ब्राह्मण शिक्षक थे. उन्होंने पड़ोस के खेत के मालिक को आदेश दिया कि हुरड़ा की तैयारी करो! खेत का मालिक एक मालिक थी. उसने भुट्टे भूनकर दिये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैतिकता

■ विनय विश्वास

शहर में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे थे. चुनाव करीब थे और दुबे जी खुश. अक्सर वे कहा भी करते थे. . . "जब-जब देश पर कोई संकट आता है तो नेताओं और पत्रकारों की चांदी कटती है." राजनैतिक हलकों में दुबेजी को सत्ताधारी पार्टी का टिकट मिलने की खूब चर्चा थी. इस चर्चा को वे अंजाम तक पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील भी थे. यों भी जिस काम को वे शुरू करते थे, उसे पूरा करके ही दम लेते थे. चर्चा शुरू कर ही दी थी तो उसे सच भी करना ही था.

दुबेजी सक्रिय हो गये थे. शहर में शांति और सद्भाव कायम करने के लिए एक शांति-जुलूस का बंदोबस्त कर लिया था उन्होंने. उसका नेतृत्व, जाहिर है, दुबेजी ही कर रहे थे. जूलूस बहुत सफल रहा और दुबेजी भी. शहर में दुबेजी के नाम का डंका बज गया. जोश-जोश में कुछ लोगों ने तो उन्हें गांधीजी का अवतार तक कह डाला.

शाम को घर लौटते हुए उनके पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे. घर में घुसते ही पत्नी को बांहों में जकड़ चाय की फरमाइश करने का सुख दुबेजी ने अरसे बाद लिया था. चाय पीने के बाद उन्हें खयाल आया. . . उनका बेटा उन्हें दीख नहीं रहा. पत्नी ने बताया कि वह अपने दोस्त के घर, उसका हाल-चाल पूछने गया है. दुबेजी के माथे पर शिकन-दर-शिकन उभरने लगीं. घर के इस कोने से उस कोने तक घूम-घूमकर बेचैनी को कम करने की कोशिश भी ज्यादा काम न आयी.

"वाह पापा, आज तो आपने कमाल कर दिया. क्या चरचे हैं आपके जुलूस के. . . . मेरा दोस्त बता रहा था. . ." बंटी की आवाज सुनते ही वे झपट पड़े उस पर. थप्पड़. . . मुक्के. . . लात. . गालियां, "कितना मना किया था तुझे कुत्ते. . . उसके घर मत जा. . . मत जा. . .वो हमारे धरम के लोग नहीं हैं. . .बच्चों का वहां जाना ठीक नहीं. . . मत. . जा. . . लेकिन. . . मेरे बाहर जाते ही तू फूट लिया. . . हरामजादे ! . . ."

अगली सुबह अखबार पढ़ते हुए दुबेजी मुस्करा रहे थे, मानो खुद अपनी पीठ ठोंक रहे हों. □

सबने खाना शुरू कर दिया था. मुझसे भी बैठने को कहा गया. सभी लोग बार-बार आग्रह कर रहे थे इसलिए मैं भी कंबल पर बैठ गया. . . . .पर माली को यह अच्छा न लगा. उसने हमारे शिक्षक से जाते समय कह ही दिया, "आप चाहे कुछ भी कहें ! यह पत्या भले ही पढ़ लिखकर बड़ा हो जाये . . . . सवर्णों की पंक्ति में इसे नहीं बिठाना चाहिए !" कारण यह था कि बचपन में मैं उसके एक रिश्तेदार के घर पर गोबर-सानी देखता था. मैं सोचने लगा, 'कहीं भी जाइए, जाति जरूर बीच में आयेगी. माली, ब्राह्मण और मैं—एक धरती के पुत्र हैं. आज जमीन के ऊपर हैं. . . . कल जमीन के नीचे जाने वाले हैं. वहां किसी भी जात का पता नहीं लगेगा.'

हम लोग औरंगाबाद की 'छावनी' में रह रहे थे. हमेशा की तरह होली का त्योहार आया. सभी रंग खेलने और मजा मारने में लगे थे. मेरा ध्यान इस बात पर था कि होली खेलने के बाद ये लोग कपड़े कहां रखते हैं. नहा-धोकर सब लोग चले गये. मैं उनके फेंके कपड़ों को देखकर आनंदित हो उठा. मैं चुपके से वहां गया और छांटकर अच्छे कपड़े उठा लाया. जगताप की शर्ट और पाजामा ठीक थे. अपनी जिंदगी में पहली 'ओपन शर्ट' मैंने अब देखी थी. खूब अच्छी तरह धोने के बाद एक दिन पहन लिया. जगताप और तुरकमाने पहचान गये. उसी दिन से ये दोनों भाई मेरी सहायता करने लगे. . . पर मुझे आज भी दुख है कि जिस आदमी के कपड़े मैंने पहने वह ग्रेजुएट न हो सका.

गांव की ओर जाने का विचार बना. उदगीर पहुंचकर ऊंट मिलना मुश्किल हो गया. पत्नी और बच्चे साथ थे. सुल्लाली का नाम सुनकर ही नाक-भौं सिकुड़ जाती लोगों की. वे सब जानते थे कि सुल्लाली के दो लड़के ही साहब बने हैं. एक पटेल का लड़का वकील और एक दलित प्रोफेसर. मुझे देखते ही वे समझ गये यह पटेल का लड़का नहीं है. जैसे-तैसे ज्यादा दाम देकर ऊंट का प्रबंध हुआ और हम गांव पहुंचे. गांव में बुजुर्ग सवर्णों ने हमें अपने यहां बुलवाकर जो छुआछूत दिखायी उससे मन खट्टा हो गया. मुझे लगा कि ये बूढ़े कुछ सीमा तक सुधरे हैं पर भीतर से वैसे ही हैं. . . . जबकि मरसंगी के एक मुस्लिम पटेल के यहां हम लोगों के साथ बराबरी का व्यवहार हुआ. यहां तक कि खाना खाने के बाद जूठे बरतन भी पटेल की पत्नी ने ही उठाये. मेरे गांव के लिंगायतों और उसके व्यवहार में कितना अंतर था.

ऐसे बहुत से प्रसंग, बहुत-सी यादें अभी तक मेरे मन में हैं जिन्होंने मेरे जीवन को प्रभावित किया.

मैं नवीं कक्षा में पढ़ता था. अहमदपुर के स्कूल में, वहां के बोर्डिंग हाउस में रहता था. संयोग से पता चला कि दीदी के गांव के पंडित राजाराम का लड़का प्रभुदेव मुझसे आगे की कक्षा में पढ़ रहा है. मैं उससे मिला. परदेस में जान-पहचान का इतना ही सहारा बहुत था. एक बार क्या हुआ कि उसने मुझसे कहा कि मेरे घर जाकर महीने-दो महीने के लिए राशन ले आ. सोलह-सत्रह कि. मी. का रास्ता पारकर अहमदपुर से जो मैं चला तो सीधा चेरा पहुंचा. थकावट के बावजूद दीदी के यहां न जाकर सीधा राजाराम पंडित के घर पहुंचा. मुझे देखते ही वह बरस पड़ा,"इस वक्त यहां क्यों आया ! वापस जा बेवकूफ, मेरी लड़की पहली बार ससुराल जा रही है और सामने पड़ गया यह अछूत !" मुझे यह सब बहुत बुरा लगा.

फिर भी मैं लौटते समय प्रभु के लिए राशन ले ही गया.

बहुत वर्षों बाद जब मैं बाबा साहब अंबेडकर के मिलिंद कॉलिज में पढ़कर तैयार हुआ और 'डा. बाबा साहब अंबेडकर कला एवं वाणिज्य कॉलिज' में अंग्रेजी का प्राध्यापक बना. . . .तब एक बार दीदी के गांव भी जाना हुआ. रास्ते में अचानक नीम के पेड़ के नीचे बैठे एक बूढ़े ब्राह्मण से भेंट हुई. पहले तो वह मुझे पहचान ही नहीं पाया, "बूढ़ा हो गया हूं रे ! आंखों से दीखता नहीं !"

मैंने पहचान बतायी तो चहकने लगा, "अरे, सुना है तू खूब पढ़ गया है ! अब लेक्चरार बन गया है. खूब पैसे मिलते हैं. . . .फिर दान-दक्षिणा भी करता चल. भगवान के नाम पर दान-दक्षिणा भी देनी चाहिए. . . "

बूढ़े ब्राह्मण पर दया आने के कारण मैंने एक रुपया उसकी हथेली पर धर दिया. वह कहने लगा, "और ज्यादा दो न !"

मैंने कहा, "भगवान को ज्यादा रुपये का क्या करना है ?"

जानते हैं यह आदमी कौन था ? यह था—पंडित राजाराम. . . . जो मेरी परछाईं से भी दूर रहना चाहता था कभी. इन यादों को भूलना संभव नहीं है. डा. मनोहर वानखेड़े का मुझ पर कितना अनुग्रह रहा ! बाद में तो उन्होंने अपनी भांजी से मेरा विवाह तक करा दिया. डा. वानखेड़े से जुड़ी स्मृतियां उनके न रहने के बाद भी मेरे साथ जिंदा हैं.

यादों के ये पंछी जब कभी पंख फड़फड़ाने लगते हैं तो मैं लेखनी हाथ में ले लेता हूं. □

● संक्षिप्त रूपांतर : अपा

(संपूर्ण उपन्यास राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन्हें डर है कि कहीं इनकी गिरफ्त से हम भाग गये तो ये सब हमारे बिना कुछ नहीं कर सकेंगे. ये इनकी लाचारी भी है. अंदर का भय इनकी कमजोरी है. और कोई कमजोर और लाचार हंटरों के बल पर अधिक दिन जी नहीं सकता."

"पर इकबाल तुम यह सब कैसे समझते हो भला?"

"मुझे आज रात ही से यह सबक मिला है."

"मैं गफूर को छोड़ देता हूं. उसे ढंग से काम करने के लिये समझा देना." कासिम की आवाज कमजोर थी.

जाड़े की रातें रेगिस्तान में ओंठ भींच देती है. नंगे बदन गुलाम कंपकंपी लेते दीवानखाने में आग जलाने के लिये लकड़ियां काट रहे थे. आबू मेसा के छोटे द्वीप के पास बहुत से तेल कूपों का पता लग चुका था और अब गुलामों को अधिक आवश्यकता थी इसलिये शेख नासीर को अब लंबे समय तक बाहर रहना पड़ता था. उस दिन जाड़ा बहुत था. गुलाम अंधेरे में एक दूसरे से जुड़े थे. इकबाल को जानानखाने के कमरे गरम करने थे. उसने लकड़ियों के छोटे-छोटे टुकड़े किये और कई कमरों में जला दिये. उसकी मजबूत बाहें अनढके अंग तपकर कांस्य-वर्णी हो गये थे. उसके दहकते जिस्म में एक आतिशबाजी की दहकन थी. शेख नासीर की इकलौती साहबजादी रुक्साना की उस पर खास नजर थी. ठंड से कांपता इकबाल जैसे ही अंदर आया रुक्साना ने दरवाजा

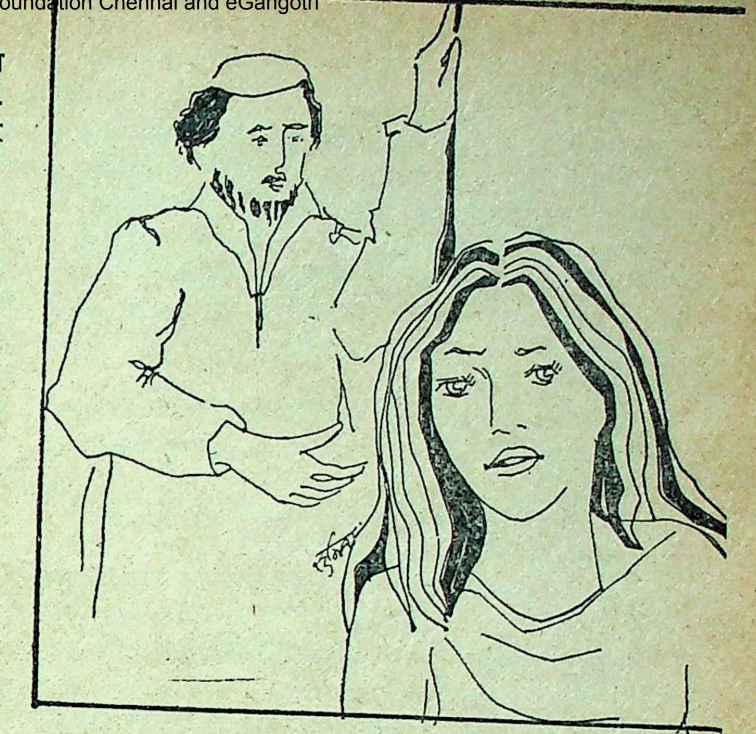

नीलोफर

कृष्णा अग्निहोत्री

प्रेम की भी कोई भाषा या जात होती है भला! क्या कोई गुलाम किसी शेख की साहबजादी से प्रेम नहीं कर सकता . . . ?

हिंदी की चर्चित महिला कथाकार कृष्णा अग्निहोत्री के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास का यह अंश ऐसे ही कुछ प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करता है . . .

बंद कर दिया. इकबाल की उनींदी चकित आंखें भरे सितारों-सी चमकने लगीं. रुक्साना अपनी लोलुप आंखों से उसे पिघला रही थी. बुलबुल फूलों से तो बगावत नहीं कर सकता था न . . . . . रुक्साना का स्पर्श उसके अंदर जमे ठंडेपन को पिघलाने लगा. उसकी कामनायें जागीं और शरीर के सारे रहस्य जाग उठे, कमरे में गुनगुनाहट बढ़ने लगी.

"मैं तो आपसे मोहब्बत नहीं करता. अदना गुलाम हूं. निकाह हो नहीं सकता. तब आप मुझे रोज यूं कांटों में क्यों घसीटती हैं?"

लेकिन रुक्साना की हवस नीली झील-सी थी. और वह निरुत्तर इकबाल के जिस्म से शहद की मक्खी-सी चिपट जाती.

शेख नासीर को इन मुलाकातों की भनक लग गयी. उन्होंने कासिम को हुक्म दिया कि इकबाल की रोटी कम कर दी जाये और लकड़ी काटने की जगह से हटा गिट्टी फोड़ने पर लगा दिया जाये.

उस दिन बिलकिस और नीलू छत पर कपड़े सुखा रही थीं कि उन्होंने जोरदार चीखें सुनीं. बहुत ताज्जुब से नीलोफर ने इकबाल को पहचाना. उसे अफ्रीकन गुलाम यूसुफ हंटर मार रहा था और इकबाल चीख रहा था, "हां मैं ठीक कह रहा हूं. तुम मुझे घोड़ों की टापों से रौंद भी डालो तो भी मैं यह रद्दी खाना नहीं खाऊंगा."

अफ्रीकन ने हंटर उठाया ही था कि कासिम गफूर के साथ महल के सभी गुलाम बाहर निकल आये. कासिम ने अपनी चौड़ी हथेली से हंटर थाम यूसुफ को दूर धकेल दिया. देर तक गुलाम गुमसुम भूखे प्यासे शेख के दरवाजे पर खड़े रहे. शेख नासीर ने वक्त की आवाज समझ ली और कपटी मीठी हंसी ओढ़ बाहर निकले. इकबाल को इतमिनान से अपने हाथों से कंधे लगाया और कहने लगे, "ठीक है अब इकबाल ही तुम सबके खाने का बंदोबस्त करेगा." रात्रि जब मजलिस बैठी तो कई शेखों ने नासीर के इस तरह झुकने पर नाराजगी प्रकट की.

इकबाल उस छरहरी लड़की को जब भी देखता उसे लगता जैसे

अचानक बंजर धरती पर कोई झील फूट पड़ी है. गहरे सन्नाटे को झंकृत कर इकबाल ने नीलू से पूछा, "मुझसे निकाह करोगी दोशिजा?"

केसर की क्यारियां लहक उठीं. नीलू की रौंदी जवानी एक लमहे के लिये खूबसूरत तसव्वुर में तैरने लगी. लेकिन वह रुक न सकी. . . अपने पर बीते जुल्म की दास्तां सुनाकर उसने हलकापन अहसास किया और घुटती आवाज में कहा, "मैं आंसा (पवित्र) नहीं मेरे आका."

इकबाल नीलू की साफगोई पर मोहित था. एक सिसकती शबनम को इकबाल ने अपने कंधे पर औंधा रुक्साना की ज्यादतियों व अपनी कमजोरी का बयान कर दिया. अतीत धुला. दोनों की रेतीली जिंदगी में निर्मल प्रकाश की किरण कौंधी और वे दोनों साथ जीने की दुआएं मांगने लगे.

कुछ दिनों बाद इकबाल को पहचानना भी कठिन था. उसने एक रात नीलोफर को चौंकाकर कहा, "मैं दूसरे प्रहर तुम्हारा आबा (बुरका) पहन रेगिस्तान की ओर बढ़ जाऊंगा."

"मैं तुम्हारे साथ चलूंगी." नीलोफर रुआंसी थी.

"अभी नहीं. . . . अभी यह मुमकिन नहीं, लेकिन एक दिन इज्जत से ले जाऊंगा. इस बात पर यकीन रखना."

"क्या जाना जरूरी है?"

"हां, इस तरह रहना भी नामुमकिन है. अभी मेरा फर्ज मेरे गुलाम भाईयों के लिये बाकी है."

इकबाल अपनी जिंदगी को बचाने के ही कारण नीलू को प्यार नहीं करता था. उसे स्वयं पता न था कि यह अपनापन और दो जन्मों का इकहरा अहसास उस नाचीज गुलाम को क्यों हो रहा था. हवा के किसी मासूम झौंके व खुशबू की भीनी तरंग-सा वह पैदा होता व इकबाल को तरंगित कर देता. यादों के जालों में फंसा वह कितने दिनों तक रेगिस्तान के कंटीले पेड़ों के पीछे छुपकर अपना समय काटने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा. बार-बार वह सोचता..... मैं कैसे शेख नासीर के महल से गुलाम प्रथा को खतम करवाऊं और उससे मेरी जिंदगी बुझा देने का बदला लूं. समुद्री किनारे पर पेटी उठाते उसने अपने अजीज दोस्त गफूर को देखा.धीरे से उसने उस ओट जा अपना खास इशारा किया तो हैरान हो गफूर चुपके से बड़े जहाज के पीछे आ गया.

"मैं जिंदा हूं. मुझसे रेगिस्तान में बने मिट्टी के लाल घर पर मिलो."

तीन बजे गफूर वहां आ गया. उसने आंखें नचाकर बतलाया, "जानते हो रुक्साना ने तुम्हारे बेटे को जन्म दिया है. खैर नासिर बहुत कुड़-कुड़ाया लेकिन जब वह बाहर से लौटा तो लड़का बरस भर का हो गया था..... मारते भी न बना."

"अब रुक्साना से कौन निकाह करेगा? बाप-बेटी में बोलचाल बंद है शेख कहते हैं, "तूने इस पाप को पैदा होते ही क्यों नहीं दफन कर दिया.""

लड़की केवल रोती है व बेटे को पल भर भी जुदा नहीं करती.

"मैंने तुझे इसलिए बुलया है कि तू गुलामों को मेरा संदेश दे दे कि वे यह समझ लें कि गुलामी पाप है और दोजख में जाने की तैयारी है इसलिये दो बार दोजख भुगतने से अच्छा है कि हम बगावत कर दें."

"लेकिन इकबाल हम जिसका खाते हैं, जिन्होंने हमें खरीदा है उनकी खिलाफत कैसे सबाब बन सकती है."

"नहीं यह इंसानियत नहीं. सारे इंसान परवरदिगार ने एक-से बनाये हैं.... हमें अब एक ऐसा देश बनाना है जहां गुलाम नहीं रहेंगे. हमारी भी इज्जत होगी. हम भी अपनी जिंदगी जियेंगे. हमारे मालिकों की खिदमत करके हम अपनी कीमत अदा कर चुके हैं. हमारी जिंदगी खुदा की नेमत है, उसे कुत्तों व सुअरों जैसा बर्बाद करने का किसी को भी कोई हक नहीं....."

"मौलवी साहब से मैंने बात की थी...परंतु वे चुप थे...शेखों से डरते हैं."

"मुझसे पूछ न कि गुलामी को सभी पाप कहते हैं पर जब इंसान... इंसान को प्यार नहीं करेगा तो वह कौन-सा धर्म मानेगा गफूर? और ये इंसानी नफरत को उकसाने वाले अवसरवादी धर्म के ठेकेदार क्या कहेंग कि क्या करो या न करो!" गफूर बहुत संतुष्ट हुआ. उसका भी बहुत मन था कि वह इजिप्शियन गुलाम सबीना से निकाह कर अपना घर बसा ले. लेकिन अभी तो तीन साल बाद ही वह मालिक से इस बात की चर्चा कर सकता है और उसमें यह डर समाया है कि इस समय के दौरान सबीना कहीं अमरीका न भेज दी जाये.'

उस रात जब गफूर ने इकबाल के जिंदा रहने की बात फैलायी तो गुलामों में हौसला आ गया जिनके दस बरस पूरे नहीं हुए थे वे भी शेख से छुटकारे की मांग तेज करने लगे और अरब गुलामों से आजाद हुआ. सबीना छोटी थी... उसके दस वर्ष पूरे हो गये थे उसे बूढ़ी फातमा अपने साथ रखने को तैयार हो गयी. गुलाम तहखानों व महल से ऐसे निकले जैसे कई काफिले फतह करके लौट हों. पूरा समुद्री किनारा छोटे-छोटे टीन के घरों से आबाद हो गया. उन घरों के दरवाजों पर रंगीन सुराही झंडे आदि अपनी इच्छा से बनाये गये थे.

नीलोफर और बिलाकिस डेरा दुबई के पास छोटे से घर में इकबाल का इंतजार कर रही थीं. शेख नासीर अचानक बहुत बीमार पड़े. उन्होंने मरने से पहले बहुत कोशिश की कि दौलत के सहारे किसी अच्छे अरब से रुक्साना का निकाह कर दें... लेकिन रुक्साना अब केवल इकबाल से ही शादी करना चाहती थी. उसे मालूम था कि कोई और खाविंद उसकी क्या हालत बना सकता है! घर यूं भी तबाह होता... शेख ने ही सर झुका लिया. शेख ने गफूर के जरिये इकबाल को जोर देकर बुलवाया और नरमाई से बोले, "तुम अब मेरी बेटी व दौलत संभाल लो. मैंने तुम्हारा खून करवाना चाहा था और आज मैं ही खून की उल्टियां करके मर रहा हूं."

"आपने मालिक केवल दौलत कमायी. भला इतने छोटे से खानदान के लिये रात-दिन खारे समुद्र में तैरने से क्या लाभ था? इसीलिये आपकी सेहत खराब हो गयी."

"जो हो इकबाल... मैं सारे गुलामों को आजाद कर रहा हूं तुम रुक्साना के साथ जिस तरह चाहो जिओ." इकबाल का चेहरा सुर्ख हो गया... वह नीलू से प्यार करता है.... और उसकी अमानत है. उसकी चुप्पी सबको खलने लगी. तभी एक बेइंतहा खूबसूरत बच्चा दौड़ता हुआ इकबाल के गंदे पैरों से लिपट गया, "आप ही हमाले अब्बा हैं?" इकबाल का वायदा... बच्चे के भोले सवाल में छुप गया और उसने उसे गोदी में उठा कर कहा, "हां... हां... मेरे बच्चे हां."

इकबाल ने जो सोचा तक नहीं था वही गुजर गया. शेख ने पहले इकबाल को अपनी छोटी रियासत का मालिक बनाया और तब रुक्साना से उसका निकाह बड़ी शान-शौकत से पूरा किया.

सभी ने सुना... नीलोफर ने भी सुना. वह भी नकाब पहन उस धूमधड़ाके को देख आयी.

इकबाल ने जनानखाने की सारी बांदियां देखीं पर नीलोफर वहां नहीं था. हां कासिम उसे एक तंग पांच फीट के तहखाने में बरामद हुआ. उसे पहचान सकना कठिन था उतना मोटा तगड़ा आदमी हड्डी का ढांचा था और शरीर कुष्ट रोग से दुर्गंध दे रहा था. उसने बताया, "मैंने आप पर हाथ उठाने से इंकार किया था न... यह उसकी ही सजा है."

"तुम यदि वापस अफ्रीका जाना चाहो तो मैं तुम्हें काफी दौलत देकर भेज सकता हूं."

"यही ठीक रहेगा. क्योंकि इस रोग के साथ इस अजनबी जगह में जीना आसान नहीं."

कासिम को कुछ चप्पू चलाने वालों के साथ इकबाल ने विदा दी.

रुक्साना उस दिन बड़ी मादक सुगंधित सुगंध से सुवासित हो इकबाल के पास आयी. उसके ओंठ वैसे ही प्यारे व दांत धवल थे. कुछ समय वह खाविंद के नये रूप को सहलाती उसके तीव्र आक्रमण की प्रतीक्षा करती रही और निराशा में खुद ही उस पर टूट पड़ी.

इकबाल की खिदमत उसके अपने खास नौकर करते जिन्हें उसने हर तरह का आराम दिया था. शेख नासीर को मरे पांच वर्ष पूरे हुए और उनकी बेटी रुक्साना चार शहजादों की मां बन गयी. चौथे बच्चे के बाद उसने निस्पंद शौहर की भावहीन बाहों को सहलाकर कहा, "अब मुझे बच्चे नहीं चाहिये. मुझे बहुत तकलीफ होती है."

"अभी तो मुझे दो बच्चे और चाहिए बेगम. इन बच्चों के कारण तो हम व तुम इतनी खुशी से जी रहे हैं. खयाल करो यदि तुम अपने अब्बा की अकेली बेटी न होती तो क्या उन्हें एक गुलाम से बेटी ब्याहने की रजामंदी देनी पड़ती. हमारा खानदान बढ़ना चाहिए. हम अरब मुट्ठी भर हैं. हमें तो संतान बढ़ानी चाहिए."

उसी दिन इकबाल ने अपनी रियासत में पैगाम भेजा कि अपनी रियासत में रहने वाले गरीब खानदानों में जब भी नया बच्चा जन्मेगा उसे वे पचास मोहरें प्रत्येक माह देंगे.

"तुम तो खजाना खाली कर दोगे." रुक्साना चिढ़ गयी.

"मेरी दौलत तो ये अरबी हैं बी.बी. यही पढ़े-लिखें अच्छे बनें तो क्या कमी रहेगी?"

"दौलत कमाना बहुत कठिन है."

"ठीक कहती हो... लेकिन मैं दौलत भी कमाकर लाऊंगा."

अरब एक धार्मिक स्थान था जहां शराब पीना..... बलात्कार चोरी और जुआ घोर अपराध थे. सफेद रंगीन कंदूरा व कुफियाह पहने अरबी आराम से इधर-उधर घूमते दिखने लगे. कुदरत ने उनके भीषण संघर्ष की कहानी सुन ली थी. ऊंची बड़ी आलीशान मस्जिदों में नमाज पढ़ी जाती, जहां धार्मिक मुल्ला कहते थे, "अल्लाह के बंदो, अल्लाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कामों के आड़े मत जाओ." जो अल्लाह के कामों में दखल दे उसे रास्ते से हटा दो. . . . . .बड़ा सवाब मिलेगा. अल्लाह के नाम पर जिओ, उसके नाम के लिये मरो."

एक दिन अंग्रेज इंजीनियर जॉन स्मिथ ने अजान का अर्थ समझने के लिये इकबाल से पूछा, "ये अल्लाह का काम क्या होता है दोस्त?"

वही काम जो सारे इंसानों के लिये नेकी बुलंद करे."

"हमारे देश में तो हम अपने वतन के लिये मरते हैं आप अल्लाह के नाम पर मरते हैं क्या?" स्मिथ ने व्यंग कसा.

इकबाल ने बुरा नहीं माना क्योंकि 'देशप्रेम' शब्द का मतलब भी अभी उसके वतन के लोग नहीं समझते थे.

नीलोफर उसी पुराने धंधे के सहारे जी रही थी. किसी शेख के पास गिड़गिड़ाकर उसने अपने लिये न घर मांगा न दौलत ली. अच्छी मेहनत करने से उसके पास चार-पांच भेड़ें व कुछ बकरियां इकट्ठी हो गयी थीं. बिलकुल बूढ़ी अशक्त खेमें में पड़ी-पड़ी रोज दो चार गालियां नीलोफर को दे देती." अरी मेरे मर जाने के बाद क्या दीवालों से सर टकराकर जियेगी. वो अहमद एक हजार गिन्नियां देकर तेरा हाथ मांग रहा है लेकिन तू तो हाथ नहीं रखने देती. जब चमड़ी हड्डी छोड़ देगी तब निकाह बनायेगी क्या?"

नीलोफर आने वाले त्यौहार के लिये जोरों से ऊन कातने लगी.

सामने से दो लंबी मोटरें आ रही थीं. एक ठीक उसके बगल में तेज आवाज से रुकी और किसी ने पूछा, "कुजेरा खुरफखान का यही रास्ता है न?"

"हां. . . . . यही है आगे डिब्बा की पहाड़ियां है." नीलोफर ने तेज आती बूंदों के लिये रुकावट बनाये अपने नाजुक हाथ को नीचा किया तो हिलना ही भूल गयी. पूछने वाले के बगल में बैठा इकबाल उसे घूरे जा रहा था. कार आगे बढ़ गयी. नीलू रो दी. थोड़ी देर में दरवाजा खटका.

"नामुराद कौन है जो इतनी बरसात में यहां आया है." बिलकिस ने ही धीरे से रेंगकर दरवाजा खोला.

"मैं एक यात्री हूं. . . . . थोड़ा ठहरकर चला जाऊंगा. बहुत तेज बारिश है." यात्री ने बिलकिस की आंखें मुड़ते ही अपनी तेज आंखें औंधी पड़ी नीलोफर पर जमा दी, "तू मेरी नीलू है न."

एक दम कई आंख-मिचौली खेलती परछाइयां लुप्त हो गयी. नील हैरत से इकबाल को ताकने लगी.

कमरे में प्यार की खुशबू छूट गयी. पिछले कठोर पड़ाव मिलन के चाकू से कट गये. मीठें फूलों के-से बोल मोहक ठहराव बन ढुलकने लगे. "कई बरसों बाद क्या तुम मेरी अकुलाहट का अंदाज लगाने आये हो." लेकिन इकबाल ने बेताबी से उस घने बालों वाले सर को अपने कंधे पर ढुलका कई बार दुहराया, "अना हबक (मैं तुमसे प्यार करता हूं). . . . अना हबक. . . अना हबक जो कुछ हुआ वह सब न जाने कैसे हो गया. पर मैं जानता हूं कि मैं तुम्हें खोकर कितना बेजान जी रहा था."

"कौन है. . . . . . कौन है नीलू?" बिलकिस चीखी.

"तुम्हारा गुलाम इकबाल."

थोड़ी देर तक वहां केवल दो व्यक्ति एक दूसरे को देखते रहे. . . तब इकबाल ने ही उठने की पहल की. . . . अब मैं चलूंगा नीलू वरना न जाने कितने लोग मुझे ढूंढते रहेंगे. मैं वैसे भी अंग्रेजों को बहका बत्ती बुझी गाड़ी से तुम्हारा पीछा करता यहां तक आया हूं. कहां हम समुद्र किनारे डाक-बंगला बनाने की योजना से निकले थे और कहां तुम यहां! अल्ला तेरी बातें गजब की है."

नीलोफर ने कुछ नहीं कहा. . . . न इकबाल को रोका. . . परंतु न जाने कैसे उसका नरम हाथ इकबाल की बलिष्ठ कलाई में थम गया. थोड़ा मुस्कराकर इकबाल ने हाथ हलके से छुड़ाया, "इस बार जल्दी ही आऊंगा. तुम एक हफ्ते तक कहीं नहीं जाओगी. घर पर रहना है." □

● ग. ग. डिग्री कॉलेज, खंडवा, (म. प्र.)

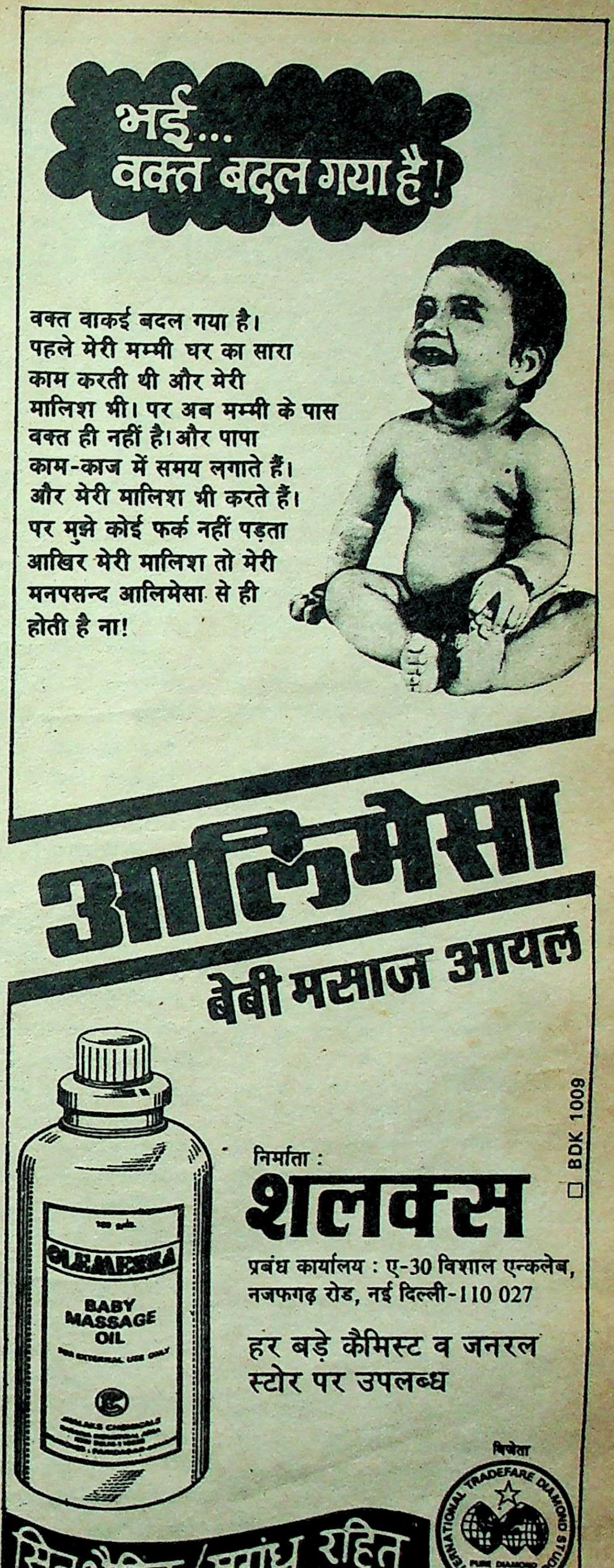

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे ले चले, बाबुल...

खदीजा मस्तूर

शहर की गहमा-गहमी को मौत ने निगल लिया था. जिंदगी कोनों-खुदरों में मुंह छुपाये सिसक रही थी. वीरानी कहती थी कि अब कभी आबाद नहीं होंगे. मौत कहती थी कि हमारे चंगुल से अब कोई भी न बच सकेगा, मगर सहायता-कमेटी के दर्दमंद दिल कहते थे कि जिंदगी इतनी सस्ती नहीं कि हम उन्हें कीड़ों-मकोड़ों की तरह मौत के जाल में फंस जाने देंगे. वे जहां-जहां जा सकते थे, जहां-जहां पहुंच सकते थे, रोती-सिसकती निराश जिंदगियों को ढूंढ़-ढूंढ़कर, चुन-चुनकर शरणार्थियों के कैंप में पहुंचा रहे थे. उस रोज वह सारा दिन लारी पर वीरान शहर के कोने-कोने का चक्कर लगाकर पचास फसाद-मारे इंसानों को कैंप में पहुंचाकर सुरक्षित कर चुका था और सारे दिन का थका-हारा पुलिस-चौकी पर लारी से उतरकर घर जाने के लिए पैदल चल रहा था. शाम के पांच बज रहे थे. वह जल्दी से जल्दी घर पहुंचकर आराम करने के लिए तेज-तेज कदम उठा रहा था कि एकदम उसके पांव रुक गये. सड़क के किनारे बारह-तेरह आदमी खड़े झुक-झुककर नाली में न जाने क्या देख रहे थे. वह उन सब के पास जाकर खड़ा हुआ. बिल्डिंग के मुख्य-द्वार में बड़ा-सा ताला पड़ा हुआ था और वे सब उसे तोड़ने के बारे में सोच रहे थे.

"आज तीन दिन हुए हम लोगों ने इस घर के बच्चे-बच्चे को पार लगा दिया, पर यह न जाने कैसे बचा रहा!" सुर्ख आंखों और भयानक चेहरेवाला आदमी छुरा लहराने लगा. "फिर तोड़ दो न ताला जी!" दूसरे ने कहा, "लेकिन सोचो तो. . .ताला पड़ा है. भला घर में कौन होगा?" उसने लोगों को समझाना चाहा.

"कोई नहीं होगा, तो क्या यह जादू का खेल हो रहा है?" तीसरा सुर्ख-सुर्ख आंखें निकालकर नाली की तरफ इशारा करने लगा. चौड़ी, उथली नाली में बिल्डिंग से आता हुआ साबुन का झाग मिला पानी कीचड़ में रेंग रहा था.

"मालूम होता है कि गुसल फरमाया गया है!" चौथा आदमी अपनी कमीज से छुरा साफ करने लगा. और वह एक क्षण के लिए सोच में पड़ गया कि अब क्या करे. उस समय वह सिपाहियों को बहुत दूर पुलिस-चौकी पर छोड़कर आ रहा था और पुलिस का कहीं दूर-दूर पता न था.

"ताला तोड़ो जी!" कई आवाजें एक साथ भिनभिनायीं.

"लेकिन देखो न, इंसानियत का तो यह तकाजा है. . ." वह इंतकाम के जोश से खौले हुए दिमागों पर इंसानियत के तकाजों के छींटे देना चाहता था, लेकिन उसकी बात बीच ही से झपट ली गयी. "जब हमारी मांओं, बहनों और भाइयों को खून में नहलाया जा रहा था, तब इंसानियत कहां थी और आप कहां थे?"

क्या सांप्रदायिक व्यक्ति किसी धर्म, जाति या नैतिक उद्देश्य से बंधे होते हैं. . .? या कि संप्रदाय की आड़ में, धर्म के नाम पर अपनी कुंठाओं, विद्वेषों को पूरा करने के लिए खुल-खेलते हैं?

पाकिस्तानी कथाकार खदीजा मस्तूर ने अपने लेखन में कुछ ऐसे अहम सवाल उठाये हैं जो अपने वक्त की जहरीली सच्चाइयों को उजागर करते हैं और आदमी के दर्द को भी.

"अपनी इंसानियत के साथ सो रहे होंगे." भयानक सूरत और सुर्ख आंखोंवाले ने शैतानी कहकहा लगाया.

"लेकिन देखो न. . ." उसके दोनों हाथ बुलंद होकर झुक गये.

"ताला तोड़ा जायेगा. आप क्यों मना कर रहे हैं?" लोग उसे ऐसी नजरों से देखने लगे, जैसे वह उनमें से एक नहीं.

"मैं मना नहीं करता, ताला जरूर तोड़ दो." उसने बेबसी से कहा. वह जानता था कि उस वक्त उसकी बात कोई नहीं सुनेगा और अगर ज्यादा विरोध किया, तो उसे भी चीर-फाड़कर फेंक देंगे. ताले को थोड़ी ही देर में कुंडे से अलग कर दिया गया, और वे सब अंदर दाखिल हो गये. वह सबके पीछे था, और जैसे उसकी रूह फड़क-फड़ककर रो रही थी. वह छुपे हुए इंसान की जान बचाने के लिए तेजी से सोचने लगा, और अचानक उसके मस्तिष्क ने एक तरकीब सोच ही ली.

"देखो, यों अंधाधुंध आगे मत बढ़ो. मुमकिन है कि उसके पास बंदूक हो. मेरे पास राइफल है. मैं आगे चलता हूं. तुम दबे कदमों मेरे पीछे चलो!" उसने आहिस्ता से कहा.

सब उसका कहना मानकर उसके पीछे हो लिये. वह आहिस्ता-आहिस्ता सीढ़ियां तय करने लगा. एक, दो, तीन. . . सीढ़ियां जैसे न खत्म होनेवाली कड़ी हो गयी थीं. सारा दिन काम करने की वजह से वह बहुत थका हुआ था. उसका जिस्म और दिल-दिमाग निढाल हो गये थे, लेकिन उस समय वह जरा भी थकान महसूस नहीं कर रहा था. वह सबसे आगे था और बराबर सोच रहा था कि वह जैसे ही उसे नजर आयेगा, उसे छुप जाने का इशारा कर देगा. उसे बता देगा कि मौत तुम से चंद कदम के फासले पर लपकी चली आ रही है. यकीनन इस घर में ऐसी जगह जरूर होगी, जिसमें वह पहले की तरह छुप सकता है.

पहली . . .दूसरी . . . तीसरी. . .हर मंजिल के एक-एक कोने को छान मारा. हर कमरे में सबसे पहले वह दाखिल होता था. वहां खामोशी और वीरानी के अलावा कुछ भी न था. उसके कदम तेज हो गये थे. उसने पीछे दबे-दबे कदमों आनेवालों को कई गज पीछे छोड़ दिया था, और जब सीढ़ियां खत्म होते ही सबसे पहले सामने पड़नेवाले कमरे में वह दाखिल हुआ, तो जैसे विस्मित-विमूढ़ रह गया. नीले साफ-सुथरे लिबास पहने एक बूटे-से कद की एक खूबसूरत लड़की उसके सामने जमीन पर बैठी थी. उसकी नाक सुर्ख थी. पपोटे सुर्ख और फूले हुए. आंखें मुंदी-मुंदी और जिस्म निढाल. उसके बाल खुले हुए थे और वह हाथ में कंघा थामे सामने रखे हुए आईने में अधखुली आंखों से देख रही थी. उसके पास ही सामने जमीन पर साबुनदानी, तौलिया, क्लिप और बाल पिन पड़ी हुई थीं. उसे यकीन नहीं आ रहा था कि उसके सामने कोई जीता-जागता इंसान है. वह कोई खूबसूरत रूह है. वह कोई परी है. लेकिन जब लड़की ने अपनी बोझल आंखें उठाकर उसे देखा और उसके हाथ से कंघा छूटकर जमीन पर गिर गया, तो उसके जीते-जागते वजूद का एहसास हुआ, और फिर उसे बचाने के लिए उसकी रूह फड़की. उसने उसे छुप जाने के लिए इशारा किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहिस्ता से उसे बताया कि लोग पीछे आ रहे हैं, मगर लड़की अपनी जगह पर जमकर रह गयी थी. उसे हलकी-सी जुंबिश भी न हुई. लड़की ने बस एक बार उसे बेबसी से देखा और नजरें झुका लीं. सब लोग कमरे में घुस आये. उनके लहराते हुए छुरे झुक गये. वे सब शैतानी हंसी हंसने लगे.

"पहाड़ खोदा, तो चुहिया निकली." सुर्ख आंखोंवाला लड़की की तरफ बढ़ा और उसे महसूस हुआ कि जोर से भूचाल आ गया है. लड़की का चेहरा एकदम सफेद हो रहा था.

"रहम करो. इसे मत छूना. इसे मत छूना." वह लड़की और सुर्ख आंखोंवाले के दरम्यान आकर पागलों की तरह चीखने लगा.

"अरे, तो क्या बदन मैला हो जायेगा मेहनत करें बी फाख्ता, मेवे खायें कौए. अजी, अपनी राह लगिए!" एक ने कहा और सब फिर हंसने लगे. दो आदमियों ने धक्के देकर उसे लड़की के पास से हटा दिया.

"नहीं, नहीं. . ." वह फिर लड़की के सामने आ जाना चाहता था कि सुर्ख आंखोंवाले ने अपना छुरा उसके सीने पर रख दिया. फिर एक ने लड़की को उठाकर भेड़ की तरह कंधे पर डाल दिया. लड़की के मुंह से कोई आवाज न निकली. उसने कोई विरोध नहीं किया, लेकिन जब वह लड़की को लेकर जाने लगे, तो उसने अपनी लटकती हुई बाहें उसकी तरफ फैला दीं. उसका जी चाहा कि काश! उस वक्त सचमुच वह छुरा उसके सीने के पार हो जाता. वह बेचैन होकर उस तरफ बढ़ा, मगर उसे धक्का देकर पीछे हटा दिया गया और सुर्ख आंखोंवाले ने आगे बढ़कर लड़की की फैली हुई बाहें अपने गले में डाल लीं. लड़की की आंखें बेहद यातना से बंद हो गयीं.

फिर पलक झपकते में कमरा खाली था. पहले से ज्यादा वीरान और खामोश. वे सब जा चुके थे और वह उसी जगह जमीन पर बैठा था, जहां लड़की जरा देर पहले कंघी कर रही थी. वह फैली हुई बाहों का सहारा न बन सका था. वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा. उसके सीने में कोई जिद्दी-सी भावना मचल-मचलकर उसे रुला रही थी. उसने न जाने कितनी जवान औरतों को अगवा होते हुए देखा था. उनकी चीखें, उनकी फरियादें सुनी थीं, मगर इस तरह कोई भी तो उसके दिल पर असर न कर सका था, मगर यह गुमसुम-सी लड़की सिर्फ बाहें फैलाकर उसे कितना प्रभावित कर गयी थी. उसके दिल जैसे नाजुक गोश्त में भरपूर चुटकी ले गयी थी.

जब वह जी भरकर रो चुका, तो उसने कदमों से रौंदी हुई बाल-पिनों और क्लिपों को समेटकर एक तरफ रख दिया. उन्हें देखता रहा, उन्हें छूता रहा और फिर उस बिस्तर को देखने लगा, जिस पर इतनी शिकनें पड़ी हुई थीं कि जैसे उस पर निरंतर कई दिन तक कोई पड़ा करवटें बदलता रहा हो. पांव रगड़ता रहा हो. वह सोचने लगा कि उस खूबसूरत और अजीब लड़की ने तीन दिन, तीन रातें उस बिस्तर पर तड़पकर गुजारी हैं.

वह उठकर आहिस्ता-आहिस्ता बिस्तर की शिकनें ठीक करने लगा. तकिए पर जगह-जगह आंसुओं के बड़े-बड़े धब्बे पड़े हुए थे. तीन दिन. . .लगातार तीन दिन तक रोती रही और फिर उसने थकन से निढाल होकर मुंह धोया था, ताकि उसमें फिर रोने की ताकत पैदा हो जाए. और फिर वह अपने बाल संवारने बैठ गयी थी, लेकिन बाल क्यों संवार रही थी. उसने साबुन से मुंह क्यों धोया? अगर थक गयी थी, तो मुंह पर यों ही पानी के छींटे भी तो दे सकती थी, मगर उसने तो बाकायदा साबुन से मुंह धोया था और तन्मयता से सिंगार कर रही थी. . .

शहर में सन्नाटा था. उसकी बिल्डिंग में सन्नाटा था. मौत सब को निगल गयी थी. पूरी बिल्डिंग में भयानक वीरानी थी. जिंदगी का आस-पास क्या, दूर-दूर तक पता न था और वह सिंगार कर रही थी. उस अकेले खामोश कमरे में लगातार तीन दिन रह चुकने के बाद सिंगार कर रही थी. थकन से निढाल और चूर. आखिर वह किस के लिए सिंगार कर रही थी. . क्यों. . . वह कौन-सी भावना थी? कितनी अजीब, कितनी हसीन लड़की. . और जब उसे उठाकर ले गये, तो वह चुपचाप चली गयी. . .और फिर उसके दिल-दिमाग को दो फैली हुई बाहों ने जकड़ लिया. काश! वह उस थकी-थकी निढाल लड़की का सिर अपने घुटनों पर रख सकता. उसके सुर्ख फूले हुए पपोटों को सहला सकता. वह उसके लिए वह सब कर सकता, जो वह चाहती थी. और फिर कुछ न कर सकने की भावना ने उसे बेचैन कर दिया. उसने सिरहाने से तकिया उठाकर अपनी गोद में रख लिया. तकिये के नीचे एक कागज पड़ा था. मैला-बोसीदा, वह उसे खोलकर पढ़ने लगा, "मेरी जान!" वह पूरा खत जल्दी-जल्दी पढ़ गया, लेकिन आखिर में जब वह पढ़ रहा था कि "मैं तुम से जल्दी ही आकर मिलनेवाला हूं. मैं तुम्हें देखने के लिए बेहद बेचैन हूं. इतना बेचैन कि अगर मेरी राह में कोई बड़े से बड़ा तूफान भी बाधक हो जाये, तो वह मुझे तुम तक पहुंचने से न रोक सकेगा. मैं तुम्हारे पास सीधा, तुम्हारे कमरे में पहुंचूंगा, जहां तुम बनी-संवरी बैठी मेरी राह देख रही होगी और. . ." हाथ कांपे. खत छूटकर जमीन पर गिर गया.

नीचे अचानक शोर होने लगा. धमाधम की तेज आवाजें आने लगीं. शायद करीब की किसी बिल्डिंग का सामान लूटा जा रहा था. उसने बाल-पिन और क्लिप उठाकर जेब में डाल लिये और लड़खड़ाते कदमों से सीढ़ियां तय करके चुपचाप घर की तरफ चल पड़ा. □

अनुवाद : सुरजीत

स्याह हाशिया

• मंटो

पहली वारदात नाके के होटल के पास हुई. फौरन ही वहां एक सिपाही का पहरा लगा दिया गया. दूसरी वारदात दूसरे ही रोज शाम को स्टोर के सामने हुई. सिपाही को पहली जगह से हटाकर दूसरी वारदात के मुकाम पर नियुक्त कर दिया गया. तीसरा केस रात के बारह बजे लांडरी के पास हुआ. जब इंसपेक्टर ने सिपाही को उस नयी जगह पहरा देने का हुक्म दिया, तो उसने कुछ देर गौर करने के बाद कहा, "मुझे वहां खड़ा कीजिये, जहां नयी वारदात होनेवाली है!" □

अनु:—सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंटवारे की आंच तले अनुवाद का करारनामा

■ हंसराज रहबर

पूरा लाहौर जल रहा था... हत्या, बलात्कार, लूटखसोट, आगजनी, मारकाट का तांडव, बंटवारे की भनक मिलते ही चहुं ओर शुरू हो गया था! उस दौर में लाहौर के भीतर—एक और लाहौर था. ...सच्चा लाहौर... अपना लाहौर... जिसे आबाद किये हुए थे खालिस लाहौरी... किस तरह?... किसके लिए? ...अपनी यादों के जरिए यही बयान कर रहे हैं—वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी, प्रखर पत्रकार, लेखक हंसराज रहबर

कृष्ण नगर और संत नगर की ओर से एक बहुत बड़ा जुलूस चला आ रहा है. डी. ए. वी. हाई स्कूल के सामने खड़ा उसे देख रहा हूं. चंद कदम के फासले पर वह पुलिस चौकी है, जिसके सामने भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु ने सांडर्स की हत्या करके राष्ट्र के अपमान का बदला लिया था. इस जुलूसनुमा भीड़ में हिंद विजिलेंस बोर्ड का अध्यक्ष रायबहादुर बदरीनाथ भी शामिल है. उसने हाथ का कता शुद्ध खद्दर और बगुले के पंख जैसी उजली गांधी टोपी पहन रखी है. और रायबहादुर का साढ़े तीन फिट का बौना-कुबड़ा अर्दली, जिसे लोग 'राय साहब' पुकारकर उपहास किया करते हैं, कांग्रेस का झंडा उठाये भीड़ के आगे-आगे चल रहा है. लोग-बाग घरों से निकल-निकलकर, दुकानों पर से उठ-उठकर जुलूस में मिल रहे हैं. और भीड़ क्षण-क्षण बढ़ रही है. फेफड़ों की तमाम शक्ति खर्च करके नारे लग रहे हैं :

"मुस्लिम लीगी सरकार नहीं बनेगी, नहीं बनेगी."

"पाकिस्तान मुर्दाबाद."

"मुहम्मद अली जिन्ना मुर्दाबाद."

मैं समझ गया कि भीड़ क्या है और कहां जा रही है. कल मेरे सामने क्रीड पर खबर आयी थी और खुद मैंने संपादित करके कातिब को दी थी. "16 जनवरी, शुक्र के दिन कांग्रेस और अकाली दल का मिला-जुला जुलूस निकलेगा, जिसकी रहनुमाई श्री भीमसेन और मास्टर तारा सिंह करेंगे. जुलूस लाजपतराय के बुत से रवाना होकर कौंसिल चैंबर पहुंचेगा और वहां मुस्लिम लीग की सरकार बनाये जाने के खिलाफ प्रदर्शन करेगा." आखिर में अपील की गयी थी कि लाखों लोगों की तादाद में शामिल होकर अंग्रेज गवर्नर पर जाहिर कर दें कि अगर मुस्लिम लीग की सरकार बनी तो खून की नदियां बह जायेंगी. पंजाब की देशभक्त जनता उसे हर्गिज बर्दाश्त नहीं करेगी.

मैं भीड़ को आगे बढ़ते देख रहा था और अचरज में डूबा सोच रहा था कि यह राय बहादुर बदरीनाथ नाम का प्राणी, कट्टर अंग्रेजपरस्त और फिरकापरस्त खद्दर पहनकर रातों-रात देशभक्त बन गया...

और भी अधिक अचरज यह था कि बौना-कुबड़ा उपेक्षित व्यक्ति, जो उपहास और मनोरंजन का साधन मात्र है, राष्ट्रीयध्वज उठा के आगे-आगे चल रहा है—जन समूह की अगुवाई कर रहा है.

पाकिस्तान बनना तय हो चुका था, अंतरिम सरकार में कांग्रेस के साथ मुस्लिम लीग को पचास प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिल गया था और यह भी तय हो चुका था कि पंजाब और बंगाल का विभाजन होगा, मुस्लिम बहुल गिनती के इलाके पाकिस्तान में जायेंगे और हिंदू बहुमत के भारत में रहेंगे. पर यह बात स्पष्ट नहीं हुई थी कि पंजाब में विभाजन-रेखा क्या होगी, लाहौर भारत में रहेगा या पाकिस्तान में जायेगा. क्या हिंदू-मुसलमान दोनों ओर ज्यों के त्यों बसे रहेंगे या आबादी का भी तबादला होगा.

पाकिस्तान की मांग पूरी होते ही मुस्लिम लीग का प्रभाव पूरे देश में बढ़ गया था. पंजाब में बरसों से यूनियनिस्ट पार्टी का शासन था और छियालीस के आम चुनाव में भी उसने मुस्लिम लीग को बुरी तरह हराया था. लेकिन अब विधान सभा के अधिकांश सदस्य यूनियनिस्ट पार्टी को छोड़कर मुस्लिम लीग में जा मिले थे. जैसे-जैसे उनकी संख्या बढ़ रही थी, मुस्लिम अवाम में जोश बढ़ रहा था, जिसे वे जुलूस निकालकर प्रदर्शित कर रहे थे, नारा था :

"लड़कर लिया है पाकिस्तान,
हंसकर लेंगे हिंदुस्तान."

मुस्लिम लीगी सरकार बनने की संभावना, अंधा जोश और उत्तेजित नारे, इस सब की प्रतिक्रिया कांग्रेस और अकाली दल का यह मिला-जुला जुलूस था, जिसमें हिंदू-सिख अवाम बड़ी तादाद में शामिल हुए थे और जवाबी नारे लगाकर जोश और शक्ति का परिचय दे रहे थे. जुलूस कौंसिल चैंबर पहुंचा और वहां मास्टर तारा सिंह का जोरदार भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने मुस्लिम लीग और ब्रिटिश सरकार दोनों को चुनौती दी कि अगर लाहौर को पाकिस्तान में शामिल किया गया तो सिख इस फैसले को कभी स्वीकार नहीं करेंगे. वे मुसलमानों को मारते-मारते पेशावर से भी दूर भगा देंगे.

नीचे से ऊपर तक शहर की पूरी आबादी सांप्रदायिक ढंग से बंट चुकी थी. हिंदू, मुसलमान को और मुसलमान, हिंदू को नुकसान पहुंचाने और नीचा दिखाने का भरसक प्रयास कर रहा था. सच-झूठ और जायज-नाजायज का भेद मिट गया था, 'जंग में सब जायज है' के सिद्धांत ने सामाजिक और व्यावहारिक रूप ले लिया था.

तनाव की इस स्थिति में विस्फोट अनिवार्य था.

चार-साढ़े चार बजे शाम का समय था. मैं दफ्तर में बैठा खबरों का संपादन कर रहा था कि रामदास चपरासी बदहवासी के आलम में दौड़ता हुआ भीतर आया.

"दंगा हो गया. लोग भाग रहे हैं..."

रामदास का वाक्य पूरा होने से पहले ही मैं और मेरे साथ काम करनेवाला कातिब बाहर निकल आये.

सड़क पर भगदड़ मची थी. लोग-बाग दुकानें बंद करके अथवा बिना बंद किये ही भाग रहे थे. जब प्राणों पर आ बनी हो तब माल-असबाब की परवा कौन करता है?

शाह आलमी दरवाजे से शुरू हुई आगजनी और मारकाट की बला शाहू गढ़ी, मदनपुरा और मजंग इत्यादि बस्तियों में प्लेग की तरह फैलती चली गयी. धीरे-धीरे कृष्ण नगर, संत नगर, फरीदगंज और करमपुरा की हिंदू-मुस्लिम बस्तियों को भी भय और आतंक ने ग्रस लिया. विरोधी संप्रदाय के कल्पित आक्रमण की आशंका से स्त्री और पुरुष रात में चौंक-चौंक उठते, छतों पर चढ़कर ईंट-पत्थर इकट्ठे करते, रात की निस्तब्धता भंग हो जाती—'या अली' और 'हरहर महादेव' के उद्घोष प्रतिध्वनित होते सुनाई पड़ते.

छुरेबाजी से इक्की-दुक्की हत्याओं की वारदातें दिन-दिन बढ़ती जा रही थीं. घूमना-फिरना, घर से बाहर तक निकलना खतरे से खाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था. हिंदू मुसलमानों की और मुसलमान हिंदुओं की जानें ले लेने के विभिन्न उपाय ईजाद कर रहे थे.

"मेहरुल नसा खातून अपनी कहानियों का हिंदी में तरजुमा करवाना चाहती हैं. मैंने इसके लिए आपका नाम तजवीज किया है. क्या आप कर सकेंगे?" उर्दू बुक स्टाल के मालिक जहीर अहमद ने मुझसे दरियाफ्त किया.

"जरूर कर सकूंगा. अगर वह माकूल मुआविजा दें तो मुझे तरजुमा करने में कोई एतराज नहीं." मैंने उत्तर दिया.

"मेरे साथ चलिए, मैं उनसे आपकी मुलाकात करा देता हूं. मुआविजा आप उन्हीं से तय कर लीजिएगा."

"ठीक है. जब आप जाना चाहेंगे, मैं आपके साथ चलूंगा."

"अभी चलिए."

मेहरुल नसा खातून लाहौरी दरवाजे के भीतर रहती थीं और जहीर की दूकान दरवाजे के बाहर थी, वहीं यह बातचीत हो रही थी, मैं उसी समय चलने को तैयार हो गया.

जहीर अहमद की उम्र तीस-बत्तीस बरस होगी. किताबी चेहरा, गोरा-चिट्टा रंग, कद दरम्याना और शरीर हृष्ट-पुष्ट था. पिछले साल-डेढ़ साल से मेरी कहानियां कय्यूम नजर की मार्फत उसकी मासिक पत्रिका 'किताब' में छपना शुरू हुई थीं. तभी उसमें और मुझमें संपर्क स्थापित हुआ. लेकिन इतने थोड़े समय में ही हमने एक दूसरे को बखूबी समझ लिया था. हम एक दूसरे का न सिर्फ विश्वास बल्कि दिल से आदर करते थे.

बाजार और गलियों में से होते हुए हम काफी आगे निकल आये. रात के आठ-साढ़े आठ बजे का समय था. पर बाजारों और गलियों में मौत का सन्नाटा छाया था.

मगर खालिस मुस्लिम आबादी के मोहल्ले में खूब चहल-पहल थी. बिजली की बत्तियां जल रही थीं और लोग-बाग इधर-उधर घूमफिर रहे थे. चंद कदम चलने के बाद हम एक खुले चौक में पहुंचे, जिसमें नीम के दो छतनार पेड़ थे. हम जब इन पेड़ों के नीचे से गुजरे तो मुझे यकायक भय महसूस हुआ. लगा कि मैं मौत की घाटी में पहुंच गया हूं. दायीं ओर एक गैरजनुमा कमरे में चार-पांच हृष्ट-पुष्ट, संडे-मुस्टंडे, काले भूत व्यक्ति बैठे थे. उनमें से एक धोती-बंडी पहने और कान पर जनेऊ लटकाये पंडित बना हुआ था. उन सबने एक साथ यों मेरी ओर देखा जैसे बलि के बकरे को देखा जाता है. मैं सिर से पांव तक कांप गया. लेकिन जहीर के पीछे-पीछे चलता रहा.

चौक के बायीं ओर मेहरुल नसा खातून का बहुत बड़ा आलीशान मकान था.

"रहबर साहब उर्दू और हिंदी दोनों में लिखते हैं, इसलिए तरजुमा उम्दा करेंगे." दुआ-सलाम के बाद जहीर ने बात शुरू की.

"आपकी किताब और अदबी दुनिया में आपके अफसाने देख चुकी हूं. अच्छा लिखते और खूब लिखते हैं." मेहरुल नसा खातून मधुर स्वर में बोलीं. बोलते समय कमानीदार भौंहें खास अंदाज से हिल रही थीं.

"आपका शायद भूतों और जिन्नों में विश्वास न हो, लेकिन मेरे ये तमाम अफसाने भूतों और जिन्नों से मुताल्लिक हैं."

"और इस कद्र दिलचस्प हैं कि एक साल में चार एडीशन हो चुके हैं." प्रकाशक जहीर

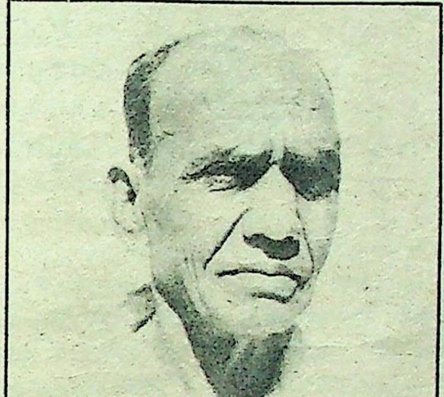

श्री रहबर: किसिम-किसिम के दौर...

अहमद ने लेखिका खातून की बात पूरी की.

"एक साल में चार एडीशन छप जाना मकबूलियत की बहुत बड़ी दलील है."

मैंने औपचारिक ढंग से दाद देते हुए कहानियों की सूची पर नजर डाली और इधर-उधर से कुछ पैरे पढ़े. जिन्नों-भूतों के अजीबो-गरीब कारनामे लच्छेदार भाषा में बयान किये गये थे.

"ठीक है. तरजुमा हो जाएगा और दिलचस्पी ज्यों की त्यों बनी रहेगी." मैंने पुस्तक अलग रखकर खातून की ओर देखा.

"यही मैं चाहती हूं." वह खुशी से मुस्करायी. "मेरी यह बड़ी तमन्ना है कि मेरे ये अफसाने हिंदीवालों तक भी पहुंचें. तरजुमे के अलावा आपको अपनी जान-पहचान का कोई पब्लिशर भी ठीक करना होगा."

"मेरे जान-पहचान के जो पब्लिशर हैं, वे इलाहाबाद या बंबई में हैं, यहां कोई नहीं."

"इलाहाबाद या बंबई कहीं भी हों मकसद तो किताब छपवाना है."

"छापने को तो हम भी छाप दें, लेकिन हिंदी के लिए हिंदी पब्लिशर ही बेहतर रहेगा." 'रक्से-जनात' का प्रकाशक जहीर बोला.

"पैसे के मामले में आप कह दीजिएगा पब्लिशर को, कोई दिक्कत नहीं होगी. ख्वाहिश सिर्फ यह है कि मेरी यह तमन्ना भी मेरी ही जिंदगी में पूरी हो जाये."

"आपकी यह तमन्ना आप ही की जिंदगी में पूरी हो जायेगी, यह जिम्मेदारी मैं लेता हूं." मैंने आश्वासन दिया.

वह फिर मुस्करायीं और थुलथुल देह में फूल से उग आये.

"मेरे ये अफसाने पढ़कर लोग मुझे खत लिखते हैं और पूछते हैं—क्या आपने जिन्न-भूत देखे हैं? क्या वाकई उनका वजूद है?"

"आप उन्हें क्या जवाब लिखती हैं?"

"मैंने अपनी इन आंखों से जिन्न-भूत देखे हैं."

खातून ने अपनी आंखों की ओर संकेत किया, जो बिल्ली की आंखों की तरह थीं और देह के अनुपात से और भी छोटी थीं. "जो लोग उनके वजूद पर यकीन नहीं करते, मुझे उन पर हंसी आती है."

मैं जल्द लौटना चाहता था, लेकिन खातून ने भूत-प्रेतों के जो किस्से सुनाने शुरू किए, वे खत्म होने में ही नहीं आ रहे थे, अगर इस दौरान नौकर चाय लेकर न आ जाता तो वह शायद ता-कयामत सुनाती रहतीं.

"आप गोश्त खा लेते हैं?"

"मिल जाये तो परहेज नहीं."

चाय के साथ शामी कबाब, सीखें, काजू, स्लाइस—जाने क्या कुछ था. खातून ने शामी कबाब की प्लेट मेरी ओर बढ़ाई और अपने हाथ से चाय बनाकर पेश की.

भीतर का माहौल बाहर के माहौल से एकदम भिन्न था. उसमें घृणा, हत्या और आतंक का लेश मात्र नहीं था, मेहरुल नसा खातून ने अपने गिर्द भूतों-प्रेतों की जो सृष्टि कर रखी थी, वह इंसानों की दुनिया से अलग-थलग और बेहतर थी. देश का बंटवारा हो रहा है, शायद इसकी भनक तक खातून के कान में नहीं पड़ी थी. उनके लिए इलाहाबाद, बंबई और लाहौर में अब भी कोई अंतर नहीं था.

मैं घर पहुंचा तो रात के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बज चुके थे. दस्तक सुनी तो कौशल्या ने चट नीचे आकर दरवाजा खोला. वह चिंता में घुलती रही थी. एक क्षण भी आंख नहीं लगी. मैंने जब देर का कारण बताया तो वह कंपित स्वर में बोली, "इस तरह न जाया करें, किसी का क्या भरोसा?"

"भरोसा है तभी तो सही-सलामत लौट आया. . . ." मैं मुस्कराया और कौशल्या आश्वस्त हुई. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

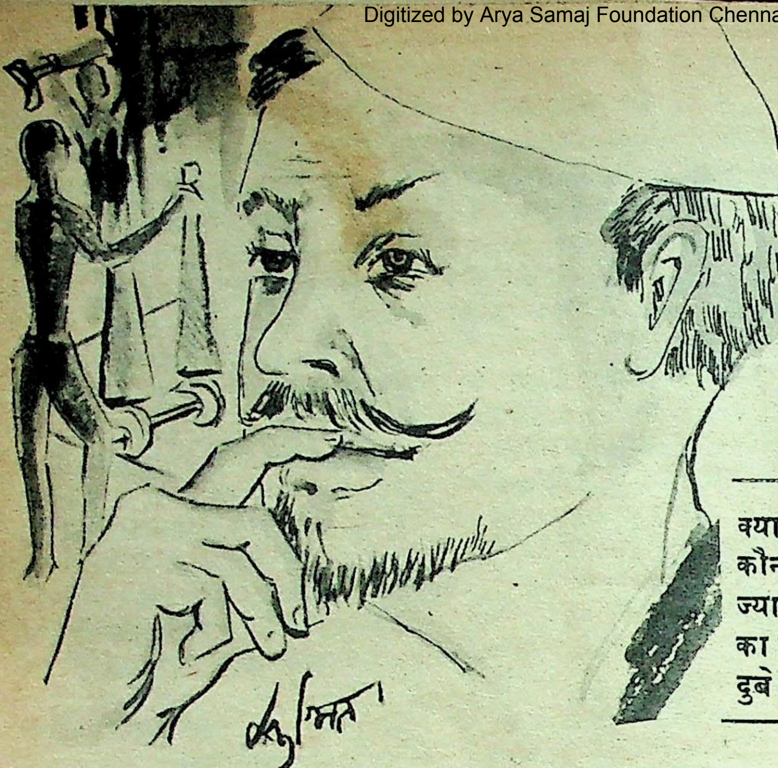

शागिर्द

बाला दुबे

क्या पहलवान की भी कोई जात होती है? . . . वह कौन सी चीज होती है जो पहलवान को अपनी जान से भी ज्यादा प्रिय होती है? खेल की दुनिया में धर्म की राजनीति का खुलासा करती जाने-माने इतिहास-कथा लेखक बाला दुबे की कहानी——

डूंगर बाबा की बगीची पर टंगा अंधेरा छंटने लगा था. कौंओं में जगार हो चुकी थी. अखाड़े के पास वाले चबूतरे पर तीन परछाइयां अपने बदन पर तेल मल रही थीं. भारी भरकम परछांई ने ही तब गंभीर स्वर में कहा, "पौ फटने वाली है लम्डो. मेहनत शुरू कर दो. थोड़ी देर में पंगा भी आ जायेगा. उसके आने से पहले ही काम निच्चू कर डालो."

उस्ताद का आदेश पाते ही लच्छी और रहमान डंड पेलने में जुट गये. गफ्फार पहलवान के दोनों ही शागिर्द उठान पर थे. कसरत के दौरान उस्ताद उन्हें कभी टोक देते, कभी नसीहत देते रहते, कभी पुराने पहलवानों के किस्से सुनाते रहते.

"लंगोट का सच्चा रहना ही सबसे बड़ी नेमत है पहलवान के लिए." बाबा कहा करते थे, "जो रोकेगा बिंद को, वो जीतेगा जिंद को. बिरमचारी का रुतबा बहुत बड़ा होता है बेटा. अपने कने इस गुर को गांठ बांध कर रखना." गफ्फार पहलवान बोलते जाते.

घंटे भर बाद उनके शागिर्द डंड बैठक करके सुस्ताने लगे. गफ्फार पहलवान ने संतोष की सांस ली. अब वे पंगे के आने का इंतजार करने लगे.

पौ फटकर अब सुबह धुंधलकों में घुलने लगी थी. छोटी-छोटी चिड़ियां समूहगान करने लगी थीं. तभी दूर से पंगा दांतों से दातुन चबाता हुआ आ धमका.

"सलाम, गप्पा पेलमान." खीसें निपोरता हुआ पंगा बोला.

"वालेकुम पंगा खलीफा." गफ्फार पहलवान बोले, "क्या खबर लाये?"

पंगे ने 'आक थू' करके कड़वे नीम की जुगाली थूककर कहा, "पल्ली पार का लीला बड़ी तैयारी पर है पैलमान. सूंस हो रिया है, कसम से. अब मैं गिन तो नहीं पाया पर अंदाज ऐसा है कि हजार दंड पेल रिया है. किसकी पटें तो मसक हो रयी हैं." गफ्फार पहलवान ने टोका, "दंड कैसे लगा रिया है? सपाट के या नलची के?"

"अब ये तो मैं दूर से नहीं भांप पाया," पंगा बोला, "पर कस पानी चकाचक है. अजी, पूरे अखाड़े के लौंडे लपाड़ों को इकल्ले ही जोर करा डाले पट्ठे ने."

गफ्फार पहलवान ने सोचकर "हूं" कहा. फिर रुककर बोले, "दांव कौन से रवां है बिसको?" पंगा सिर खुजाता बोला, "दांव तो सभी सीख रिया है पर मेरा ऐसा खयाल है कि कलाजंग पर ज्यादा रुझान है." पंगे ने पीतल के लोटे से पानी लेकर कुल्ला किया और फिर मुंह धोकर कंधे पर पड़ी साफी से उसे पोंछा. उसकी नजर फिर लच्छी और रहमान पर पड़ी जो मगरमच्छ की तरह अखाड़े में पसरे पड़े थे. पंगा फिर खंखारकर बोला, "बमरोली के दंगल की तैयारियां शुरू हो गई हैं पैलमान. मूला बता रिया था कि अबकी दफै सेले में सौ का 'लोट' बांधा जायेगा. बिरजू गुरु के ये हल्ले सुने हैं कि वे लीला को ही दंगल में उतारेंगे."

गफ्फार पहलवान गौर से सुन रहे थे. एक आंख मिचकाकर पंगा बोला, "वैसे तो तुम्हारे दोनों शागिर्द तैयार हैं. अब कुश्ती तो मौके का खेल है पैलमान. बा बखत सूझ-बूझ काम कर जाये तो किला फतह करने में का देर लगे है." थोड़ी देर बाद वे सब चलने की तैयारी करने लगे. सुबह हो चुकी थी. बस्ती के रहनेवाले पीतल के लोटे पकड़े खेतों की तरफ लपकने लगे थे. कुछ घूमने के शौकीन भी छड़ियां हिलाते नजर आने लगे थे. गफ्फार पहलवान की हिदायत थी, "कभी किसू के आगे कसरत मत करो. बदन हमेशा ढंककर रखो और ढीले होकर चलो. और खबरदार, कभी भी नंगे बदन पर लुगाई की नजर ना पड़े वर्ना महीने भर की मेहनत मिनटों में उड़न-छू हो जायेगी." और उनके शागिर्द थे कि उस्ताद की बात को बादशाह के हुक्म से बढ़कर मानते.

बमरौली का मेला धूल की झीनी चादर से ढंक-सा गया था. अल्हड़ जाटनियां ऊंची आवाज में गा रही थीं. रहट की चूं-चूं और खोमचे-खिलौनेवालों का कोलाहल वातावरण में छा गया था. और तभी अखाड़े की तरफ भीम जैसे जाटों का टोला सर पर पग्गड़ बांधे और अपने से भी ऊंचे लट्ठ लेकर चल पड़ा. वैसे इंतजाम अच्छा था. चार-पांच मूढ़े पड़े थे जिनपर रुतबे वाले लोग बैठे थे——बमरौली के थानेदार चौधरी चंदन सिंह, तहसीलदार अबरार अली और गांव के कुछ पैसे वाले जमींदार लोग. सबसे पहले लौंडे-लपाड़ों की कुश्तियां हुईं——एक एक रुपये वाली. फिर दरमियानी कुश्तियां हुईं. इसके बाद ही दस-दस बीस-बीसवाली कुश्तियां हुई थीं.

"अमाल तो बछड़न की है रयी है ठाकुर," सुक्खा बोला, "देखत जाओ, बस सांड़न की हैवई बारी है."

फिर तगड़े पहलवान अखाड़े में उतरे. सांचे में ढले बदन, भीगी मसें, रस्से-सी बंटी बांहें. तभी कोने में बिरजू गुरु लीला के साथ दिखाई दिये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीला ने एक मैली-सी चादर ओढ़ रखी थी. सामने गफ्फार पहलवान अपनी दायीं बायीं लच्छी और रहमान को लिए खड़े थे.

"सैर को मियंटा आ गया है चाचा." बद्री ने अपने चाचा भूरीसिंह से कहा.

"वैसे मौड़ा तो दोऊ तैयार हैं जाके." बद्री बोला, "लीला से कस पानी उड़ेंगे तब पता चलेगो कि को कितेक पानी में है."

थोड़ी ही देर में सेला घुमाया गया. पंगे खलीफा ने ठीक ही कहा था. सेले के छोर पर सौ का नोट ही बंधा था. सेला लेकर बमरौली के चक्खन गुरु निकले ही थे कि पल्ली पारवाले लीला ने सेला पकड़ लिया. फिर सेले के साथ साथ लीला भी घूमने लगा. गफ्फार पहलवान ने तब रहमान को इशारा किया था. रहमान ताल ठोककर आया और भरे दंगल में उसने लीला से हाथ मिला लिया. भीड़ में 'हो ऽऽऽ' करके एक लहर फैली. तमाशबीन मुस्करा पड़े. अब आयगो मजा. मीयां ने अपने मीयां शागिरद को ही उतारो है दंगल में. गफ्फार पहलवान और लच्छीं ने मिलकर ही रहमान को जांघिया पहनाया था. चलते वक्त गफ्फार पहलवान ने रहमान के कान में कहा, "लीला का कला जंग खां है. अपनी दस्ती बचाना और जैसे ही वह दस्ती खेंचने की कोशिश करे तो बांह भरकर बाहरली टांग मारना."

रहमान ने अखाड़े पर आकर उसकी मिट्टी को सर पर लगाया और अंदर आ गया. उधर लीला भी बिरजू गुरु के पांव छूकर 'बजरंग बली' चीखता हुआ आ गया. वैसे जोड़ बराबर का ही था. सांड़ जैसी गरदन, पत्थर की सिल जैसे सीने, मशक जैसी रानें. उनके भिड़ते ही दंगल में सन्नाटा छा गया. और फिर वही हुआ. लीला ने दस्ती खींचने का प्रयास किया और उधर रहमान ने चीते की फुर्ती से उसकी बांह लपेटकर बाहर की टांग मारी. लीला संभल नहीं पाया और कटे पेड़ की तरह गिरा. रहमान ने दांत भींचकर उसे दबोच लिया.

'वो माराऽऽ' पूरा का पूरा दंगल ही चीख उठा.

गफ्फार पहलवान ने रहमान को कलेजे से लगा लिया. लच्छी भी अपने गुरु-भाई से लिपट-लिपटकर मिला. गफ्फार पहलवान का शागिर्द लूटकर जा रहा था. उसे देखकर जमींदार श्योंबरन सिंह बोले, "ऐसा लग रिया है जैसे विश्वामित्रजी महाराज राम-लखन के साथ जा रहे हों."

सन् 1947. अविश्वास की आंधी चल पड़ी थी चारों ओर. सदियों पुराने पड़ोसी सहसा एक दूसरे के लिए बिराने होने लगे. मन फट गये थे सब के. गफ्फार पहलवान के कान भरने मामू भांजे की घटिया का अलिया कसाई आता.

"जरा बात को समझौ पैलमान," अलिया बांयीं आंख मिचकाकर कहता, "हिंदुस्तान हिंदुओं की बपौती बन जावेगा फिर भला हमें कोई यहां जीने देगा. अपना वतन बन गया है, वहीं चलो. रही बात अखाड़े की, सो सफा खेल फरूक्काबादी है. तुम्हारा उस्ताद बाबा अखाड़े की गद्दी तो तुम्हें ही दे गया था. अब तुम जो चाहे सो करो."

अब गफ्फार पहलवान क्या चाहें और क्या करें, यही नहीं सोच पा रहे थे. ठीक है डूंगर बाबा उन्हें अखाड़ा और अखाड़े के साथ खड़ी चार दुकानें भी दे गये थे. चार सौ रुपये महीने किराये के आते थे. सारी दुनिया ये जानती थी कि जब गंगी लाला की चंदा जैसी ललाइन को घटिया के बदमाश उठाकर ले जा रहे थे तब डूंगर बाबा ने अकेले ही सब को मार भगाया था. और लाला ने तब डूंगर बाबा से कहा था, "मेरी पत बचायी है तुमने बाबा. मेरे लायक सेवा बतलाओ महाराज." तब बाबा ने कहा था, "लाला मुझे तो किसी चीज बस्त की मोह ममता है नहीं. हां अगर तुम्हें पुसै तो एक अखाड़ा बनवा दो जिसमें मैं बस्ती के लड़कों को कुश्ती का शौक लगवा सकूं."

जिसने भी डूंगर बाबा की फर्माइश सुनी उसी ने वाहवाही की. गंगी लाला ने भी बगीची में अखाड़े के अलावा अखाड़े का खर्च पानी चलाने का साधन भी जुटा दिया. चार दुकानें बनवायीं थीं जिनके किराये से अखाड़ा सदाबहार बना रहे. फिर तो डूंगर बाबा के अखाड़े में इतने लंगोटी-बंद शौकीन आने लगे कि लगता कि तलैया के किनारे बरसाती मेंढकों का जमघट लगा हो. वैसे डूंगर बाबा थे सच्चे-सीधे पहलवान. न जात से मतलब ना पांत से. उनके दो शागिर्द होनहार हुए थे—बंसी और गफ्फार. डूंगर बाबा ने जब अपने मन की तराजू में दोनों को तोला तो पलड़ा गफ्फार की तरफ ही भारी पड़ा. मरते दम डूंगर बाबा ने बगीची की चाबी गफ्फार को देते हुए कहा था, "बेटा, पहलवान की कोई जांत-पांत नहीं होती. इसीलिए हिंदू होते हुए भी मैं तुझे अखाड़ा सौंपे जा रहा हूं. कसम खा, कि जब तू इस अखाड़े को सौंपे तो सिरफ शागिर्द की सीरत पे जइयो, सूरत में नहीं." और बिलखते हुए गफ्फार पहलवान ने अपने मरते उस्ताद के सामने कुरान शरीफ उठाकर कसम खायी थी.

और आज गफ्फार पहलवान को उसी के भाई बंद उसे भरने आते हैं. वे तो खुद पशोपेश में पड़े हुए हैं कि उनके बाद अखाड़े की जिम्मेदारी किसे सौंपी जाये, लच्छी को या रहमान को. दोनों ही बेदाग हीरे हैं. अभी तक कोई भी कुश्ती नहीं बिगड़ी किसी की. गफ्फार पहलवान की ही कौन-सी कुश्ती बद हुई है आज तक . . बीस कुश्तियां जीतीं और दो बराबर छूटीं. पर अब चालीसवां साल चल रहा है—जवानी ढलान पर आ लगी है पर दमखम अब भी बाकी है.

आगरे की हवा जहरीली होती जा रही थी. पंजाब से शरणार्थियों के दल रोंगटे खड़े करनेवाली कहानियां रो-रोकर सुना रहे थे. कुछ तो खून खौलानेवाली फोटो भी लाये थे. और तभी नाई की मंडीवाले के जूतेवाले कारीगरों ने अपने कारखानों और जायदाद को कौड़ियों के मोल बेचना शुरू कर दिया.

उसी शाम रहमान का बाप शबराती झुटपुटे में गफ्फार पहलवान से मिलने आया था. सलाम-दुआ के बाद 'नये वतन' की बात छिड़ी. शबराती मियां जंट साहब का अर्दली था. पढ़े-लिखे अफसरों की दलीलें सुनता, समझने की कोशिश करता. उसी ने गफ्फार पहलवान को सलाह दी थी, "तुम चकल्लस में मती पड़ना पैलमान, कहीं जल्दबाजी में ऊंच-नीच कर बैठो. अमां, हमारी छः पीढ़ी यहीं फलीफूली हैं. अपन का यही हिंदुस्तान है यही पाकिस्तान है यही कब्रस्तान बनना है. अपने कने है ही क्या जो लुट जायेगा. मल्लाह के पास तो लंगोटी के सिवा और होना ही क्या है. और रही बात हिंदुओं की हमें मारने की, सो भैया जो खुदा ने किस्मत में लिख दिया है वो तो हो के ही रहैगा." गफ्फार पहलवान को इतना तो तस्कीन हो गया कि कम से कम रहमान तो पाकिस्तान जायेगा नहीं. एक लंबी सांस भरकर उन्होंने कहा, "यही तो मेरा कहना है शबराती भाई, सियासत बड़े लोगों का चोंचला है. पहलवानों को इस झंझट से भला क्या लेना-देना."

गफ्फार पहलवान ने लाख सियासत की कीचड़ से दामन बचाया पर भरनेवाले उन्हें पट्टी पढ़ाते ही रहते. तभी एक और करवट ली हालात ने. हिंदुओं ने अब लच्छी के बाप चोखे को भरना शुरू करा. पंडत ग्यासीराम ने बाकायदा चोखे को भाषण दिया, "क्यों भैया चोखे! क्या तू समझे है कि गप्पा पहलवान अखाड़े की गद्दी तेरे लौंडे को देगा? अरे बमरोली के दंगल को भूल गया? क्या लच्छी नहीं पछाड़ लेता लीला को! पर भैया घोंटू तो पेट की तरफ ही मुड़े है. वाहवाही तो अपने भाई की ही करानी थी सो सेला बांधवा दीना रहमान के सिर."

थोड़े दिन बाद तो लच्छी को घेरकर दमदार लाला लोग भी उल्टी पट्टी पढ़ाने लगे. यहां तक कि हिंदुओं के साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले लाला श्यामसुंदर तो यहां तक तिवाचा भर बैठे, "अरे, मैं तेरे लिए एक और अखाड़ा खुलवा दूंगा और तुझे खलीफा बनवा दूंगा. छोड़ इस बिड़चो गप्पा का साथ."

हवा में फैला जहर आखिर असर कर ही गया. बड़े-छोटे सबने मिलकर लच्छी को गफ्फार पहलवान से अलग कर दिया. उस दिन गफ्फार पहलवान के दिल पर धमक लगी थी और उसी दिन रहमान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोटी की जात

■ विपिन जैन

"आयेगा. हिंदू होटल में आयेगा." स्टेशन से आते एक मुसाफिर को देखकर एक ओर के बैरा लड़के चिल्लाये.

दूसरी ओर के लड़के भी चिल्लाये, "मुस्लिम में आयेगा." साथ ही दोनों ओर के लड़के आगे बढ़ गये. खाने की जगह टटोलता मुसाफिर ठिठककर रुक गया.

लड़के अपनी बैरा-शैली में उसे बुलाने लगे, "आइए साहब, चार आना चपाती, दाल फ्री सलाद के साथ."

"आइए जनाब, बिरयानी पुलाव एक दम लाजवाब."

मुसाफिर असमंजस में खड़ा रहा. फिर उसने क्रम से हिंदू ढाबा, और मुस्लिम होटल पर निगाह डाली. दूसरे ही पल वह वापस मुड़ गया और बोला, "कुछ नहीं खाना है. भूख ही मर गयी." □

बाप और अन्य लोगों ने भी गफ्फार पहलवान का माथा धोना शुरू कर दिया. बात करीब-करीब तय हो गयी थी. अखाड़े की पगड़ी रहमान को ही दी जायेगी. उस दिन पहली बार गफ्फार पहलवान को यह अहसास हुआ कि वे मुसलमान भी हैं—केवल पहलवान ही नहीं. और लच्छी था कि गुमसुम रहता. चाचा दबाव डालते, पूरी बस्ती के हिंदू दबाव डालते. बार-बार उसे अपने उस्ताद का खयाल आता. कितने प्यार से कसरत कराते थे उसे, कितने लगाव से हुनर सिखाया था उसे. दूध पीते बछड़े को जैसे कोई उसकी गाय से जुदा कर दे वह हालत हो गयी थी लच्छी की. पर लच्छी करता भी तो क्या करता. उसके चाचा चोखे ने भी तो उसे आगाह कर दिया था, "सारी बस्ती से बिगाड़कर रहने का बूता मो में नई है लच्छी, अरे बेटा, हमारी नदी में एक मगर हो तो वा से निबट भी लें, पर यहां पर सब तरफ मगर ही मगर नजर आ रहे हैं भैया. अब तो बयार का बहाव देखकर पीठ देने में ही हुसियारी है."

गौशाला के दंगल में बड़ी सनसनी फैली थी. हिंदुओं की साजिश का पता कानों कान किसी को भी नहीं लग पाया था. लाला बिहारी लाल की स्कीम थी. अलवर के बूटासिह पहलवान को पांच सौ रुपये देकर बुलवाया था—गफ्फार पहलवान की इज्जत धूल में मिलवाने. और तो और लच्छी तक को इस षड्यंत्र का पता नहीं था. और जब गफ्फार पहलवान अपने साथ रहमान, वहीद और रज्जाक को लेकर आये तब सब की निगाह उन पर टिक गयी. गफ्फार पहलवान के ऐन सामने हिंदू पहलवान डटे थे—खच्चे, बांके, मौरियां और लच्छी. वैसे लाख उतार पर सही पर गफ्फार पहलवान का जोड़ आज भी दंगल में नहीं था. गफ्फार पहलवान यह भी जानते थे कि रहमान के जोड़ का अगर कोई है तो वह है लच्छी, पर लच्छी लड़ेगा नहीं, क्योंकि उससे गंगाजली उठवाकर बहुत पहले यह कसम खिलवायी गयी थी कि वह अपने गुरु-भाई पर ताल नहीं ठोंकेगा. और रहमान ने भी कुरान शरीफ उठाकर यह कौल किया था कि वह कभी लच्छी से हाथ नहीं मिलायेगा. गफ्फार पहलवान और उनका दल निश्चित था. किसी भी प्रकार का खतरा नहीं था. तभी भीड़ चीरता हुआ बूटासिह आ धमका और ऊंची आवाज में बोला, "गप्पा तो हप्पा करने आया हूं. अपनी भैया का दूध पिया हो तो आजा अखाड़े में." गफ्फार पहलवान और उनके साथियों को सांप सूंघ गया. हिंदू पहलवानों के दल से एक हर्ष-लहर उठी. केवल लच्छी आंखें फाड़कर देखता रहा. पास खड़े मावसिया ने कलुआ खलीफा से कहा, "क्या पैलमान है खलीपा. साच्छात हनूमानजी जैसे उतर आये हों..."

गफ्फार पहलवान के अलावा रहमान, रज्जाक और वहीद भी सिहर उठे थे. गफ्फार पहलवान के माथे पर पसीने के मोती छलछला आये और उन्होंने तब रहमान को इशारा किया. रहमान सिटपिटा गया. गफ्फार पहलवान ने संभलकर ऊंची आवाज में कहा, "पहले मेरे शागिर्द से तो दो-दो हाथ कर ले तब हप्पे की सोचिये." बूटासिह हंसा. उसकी हंसी भी कितनी डरावनी थी. और तभी रहमान मुड़ा और भीड़ चीरता हुआ खिसक गया. लच्छी आंखें गड़ाये यह सब देख रहा था. रहमान के गायब होते ही गफ्फार पहलवान के पसीने छूट गये. जैसे बिल बंद होने पर बिल्ली के सामने असहाय चूहा खड़ा हो—गफ्फार पहलवान की यही दशा हो गयी थी. उन्होंने समझ लिया था कि आज बनी बनायी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी. अब लड़ने के अलावा कोई चारा ही नहीं था. गफ्फार पहलवान ने आगे बढ़कर बूटा सिंह से हाथ मिलाया और फिर सहसा उनकी नजर दूर खड़े लच्छी से मिली. एक दयनीय संदेश उनकी आंखों से निकला जो लच्छी के दिल में तीर की तरह लगा और तभी दहाड़ता हुआ लच्छी बढ़ा, "ठहरो उस्ताद, शागिर्द के हार जाने पर ही लंगोटा कसना."

भीड़ अवाक रह गयी. यह क्या बक रहा है लच्छी का बच्चा. लाला श्याम सुंदर कड़के, "अबे क्या तेरा माथा खराब हो गया है. क्या कर रहा है ये." लच्छी बोला, "तुम बीच में मत बोलो सेठजी. आज डूंगर बाबा के अखाड़े की लाज का सवाल है. हिंदू-मुसलमान का नहीं." गफ्फार पहलवान की आंखें भर आयीं. सांड़ और उठते बछड़े की कुश्ती होने वाली थी.

बूटासिह ने पहले लच्छी को खिलाया और फिर उसे पकड़कर नीचे ले आया. लाला श्याम सुंदर चिल्लाये, "रगड़ो साले को पैलमान. बना दो भुर्ता साले का." उनका दल भी अब लच्छी का दुश्मन बन गया.

गफ्फार पहलवान ने आंखें बंद कर लीं. उनका रोता हुआ दिल बोला, "या खुदा, अगर मैंने जिंदगी में कुछ भी नेक काम किया हो तो मेरी यह अर्ज सुन ले. मेरे शागिर्द लच्छी की इज्जत बचा ले."

बूटा सिंह ने लच्छी को खूब तोड़ा-मरोड़ा. तब किसी ने आवाज फेंकी, "अब खतम करो कुश्ती को पैलमान." तब बूटा सिंह हंसा और लच्छी को चित्त करने लगा. तभी शायद गफ्फार पहलवान की दुआ उसके शरीर में घुस गयी थी. बूटा सिंह दांत पीसकर उसे चित्त करने में चिपट गया पर लच्छी को चित्त नहीं कर पाया. पौन घंटे बाद कुश्ती को झक-मार कर रुकवा दिया गया. फैसला करनेवाले चौधरी मलखान सिंह बोले, "एक पहलवान को सौ का नोट मिलेगा, दूसरे को सेला. बोलो भाई पहलवान क्या लोगे?"

बूटा सिंह ने प्रशंसा भरी नजर से लच्छी को देखा और बोला, "बोलो लच्छी पहलवान, आज तुम्हारी बात पहले रखी जायेगी."

लच्छी बोला, "मुझे सेला चाहिए, रुपये नहीं." नियमानुसार दो पहलवान सेला लेकर आगे बढ़े—लच्छी के सिर पर बांधने, पर लच्छी ने उनसे सेला लेकर कहा, "नहीं, सेला उस्ताद के सिर पर बांधा जायेगा." यह कहकर लच्छी सेला लेकर गफ्फार पहलवान की तरफ बढ़ा. पर तब तक गफ्फार पहलवान ना जाने कहां चले गये थे. फिर बदहवास-सा सेला लिये लच्छी भागा था. एक इक्के में बैठकर वह सीधा डूंगर बाबा की बगीची पहुंचा था. बगीची के फाटक पर उसे पूरन पर-चूनियां बैठा मिला. उसी ने अखाड़े की चाबी देते हुए लच्छी से कहा, "मैं तुम्हारा ही रास्ता देख रिया था भैया लच्छी. उस्ताज ये चाबी दे गये हैं. कहवे थे कि लच्छी को दे दीजो और बतइयो कि आज से अखाड़ा और दुकानें बिसे ही संभालनी होंगी." लच्छी काठ हो गया.

"कहां है उस्ताद?" खोखली आवाज में उसने पूछा.

"बता नहीं गये हैं मोकू." पूरन बोला, "अपना ट्रंक और बिस्तरा लेकर फूलचंद के इक्के पर बैठकर इस्टेशन की तरफ गये हैं." □

● एफ-48, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग में भंग

लेंगस्टन ह्यूजेज

सभ्य कहे जाने वाले गोरों की यह कहां की सभ्यता है कि यदि किसी गोरी महिला पर अत्याचार हो रहा हो तो बाहें चढ़ाकर लड़ने के लिए तैयार हो जायें और अगर पता चले कि वह महिला दरअसल नीग्रो है तो 'सॉरी' कहकर किनारा कर लें!

लेंगस्टन ह्यूजेज काले अमरीकी लेखकों में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं.

अल्पसंख्यकों को जिन अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनमें से एक यह है कि बहुत तथाकथित सदाशयी और परोपकारी लोग उनके चारों ओर मंडराते रहते हैं. मुझे ऐसे काफी लोगों का अनुभव है; और इस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि ये लोग बकवास करने के अलावा कुछ नहीं करते, और इन लोगों की बकवास भी बड़ी बोरियत पैदा करने वाली होती है.

हम नीग्रो लोग अमरीका में अल्पसंख्यक हैं, बहुसंख्यक हैं, गोरे लोग. तो, जिन तथाकथित सदाशयी और परोपकारी लोगों की बात मैं कर रहा हूं, वे अमूमन ये गोरे लोग ही होते हैं. ये लोग जब मेरे पास आते हैं, तब मैं उनसे बात ही नहीं करता. मगर तबीयत तब ज्यादा कोफ्त होती है जब इनके साथ कोई नीग्रो समाज सुधारक भी होता है. ये समाज-सुधारक जो मेरे समान ही काले और नीग्रो होते हैं, किसी होटल में इन गोरे लोगों के साथ डिनर खाने के बदले उन्हें हम काले लोगों की बस्तियों में लाते हैं, और हमारी नारकीय जिंदगी का प्रदर्शन करके मन ही मन बहुत खुश होते हैं कि उन्होंने समाज-सुधारक होने का सबूत दे दिया.

कालेब जॉनसन ऐसे ही नीग्रो समाज-सुधारकों में से एक हैं. मैं उनका परिचित न होते हुए भी, उन्हें अच्छी तरह से जानता हूं. मैं यह भी जानता हूं कि यदि हम काले नीग्रो लोग अमरीका में बहुसंख्यक होते, और गोरे लोग अल्पसंख्यक होते तो कालेब साहब गोरे लोगों के बीच जाकर वही काम करते रहते जो वे हम काले नीग्रो के बीच करते रहते हैं. वे इसी काम को समाज सेवा समझते हैं.

यहां मैं आपको यह भी बता दूं कि मैं अपनी बस्ती के बुद्धिजीवियों के दल का सचिव हूं. हम नीग्रो बुद्धिजीवी न वर्णों में विश्वास करते हैं, न संप्रदायों में. हमारे जीवन-मूल्यों के अनुसार आदमी को न रंग की पर्वाह करनी चाहिए, न चरित्र की. उसे बस जी भर के सिगरेट और शराब पीनी चाहिए और उन लोगों का मजाक उड़ना चाहिए जो हमारे जीवन-मूल्यों में आस्था नहीं रखते.

एक रात स्मॉल्स नाम के रेस्तरां में हम तीन नीग्रो बुद्धिजीवी एक साथ बैठे अपनी प्रिय शराब और सिगरेट पी रहे थे कि हमने कालेब को तीन गोरों के साथ रेस्तरां में घुसते देखा. वह सीधा अपने गोरे साथियों के साथ, जिनमें से एक महिला थी और दो पुरुष, हमारी मेज के पास आया और दुआ-सलाम के बाद, हमारा परिचय अपने साथियों से कराने लगा. हम तीनों में से दो लेखक थे, और एक कलाकार.

गोरी महिला ने कहा, "मैं आज पहली बार किसी काले लेखक और कलाकार से मिल रही हूं."

"कमाल है." मैंने अपने साथियों की ओर देखते हुए, आश्चर्यपूर्ण स्वर में कहा, "हम तीनों तो दर्जनों गोरे लेखकों और कलाकारों से मिल चुके हैं. उनमें से कई तो हमारे दोस्त हैं."

"काले लेखकों और कलाकारों की संख्या बहुत कम है, इसलिए उनसे आसानी से भेंट नहीं हो पाती."

"इस बस्ती में काले लेखक और कलाकार बहुत हैं."

"मगर आयोवा में, जहां हम रहते हैं, कोई काला लेखक या कलाकार नहीं है."

"हो सकता है. लेकिन आपके आयोवा में कोई गोरा लेखक या कलाकार भी नहीं है." मैंने मगरूर लहजे में कहा.

"रुथ सयोव आयोवा की नामी गोरी लेखिका है." वह गोरी महिला हमसे लगातार बहस किये जा रही थी. हम तीनों ने उसे चिढ़ाना शुरु कर दिया. "रुथ सयोव? आज पहली बार उसका नाम सुन रहे हैं हम लोग. के. बोयल में प्रतिभा के चिह्न अवश्य दिखायी देते हैं. उसके अलावा . . . "हमने आयोवा के कई नवोदित लेखक-लेखिकाओं के नाम गिनाये और जिनसे कालेब और उसके साथी काफी प्रभावित दिखायी दिये. और प्रभाव इतना अधिक हुआ कि उन्होंने कहा, "चलिए, उस कोने में चलकर बैठते हैं. आप तीनों से मिलकर हमें बड़ी खुशी हुई. आप लोग क्या पीना पसंद करेंगे?"

हम तीनों कड़के थे और पैसे खत्म हो जाने की वजह से रेस्तरां छोड़कर जाने ही वाले थे. उनके न्यौते से हम मन ही मन खुश हुए, लेकिन ऊपर से घमंडी बने रहे. आखिर, हम-तीनों ही नासमझ और कमउम्र थे.

हम सबने उम्दा जिन पीना ही शुरु किया ही था कि हमारे पीछे की मेज पर एक अजीब नाटक शुरु हो गया. एक नीग्रो पुरुष ने अपनी सीट से उठकर, अपने पास बैठी एक गोरी महिला को उसकी सीट से उठाया और फिर उसे धक्का देकर नीचे फर्श पर गिरा दिया. महिला जैसे ही उठी, पुरुष ने उसे लात मारकर फिर गिरा दिया.

आयोवा के हमारे मेहमानों में से एक उठा और उसने नीग्रो पुरुष के पास जाकर उसे ऐसा धक्का दिया कि वह फर्श पर दूर जाकर गिरा. धक्का देते हुए हमारे गोरे मेहमान ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीग्रो पुरुष से कहा, "अगर उस गोरी महिला को फिर तंग किया तो. . . "

"वह गोरी महिला नहीं है, वह मेरी बीवी है," नीग्रो ने उठते हुए कहा. वह हमलावर से लड़ने के लिए पूरी तरह तैयार दीखता था.

एक वेटर ने उसकी बात पुष्ट करते हुए, हमारे मेहमान से कहा, "यह नीग्रो महिला ही है, जनाब! इसका रंग जरूर गोरा है."

"तब मुझे अफसोस है," हमारे मेहमान ने कहा और हम लोगों के पास आने के लिए वापस मुड़ा. लेकिन नीग्रो ने उसे जाने नहीं दिया और उसका बदन झंझोड़ते हुए पूछा, "तुम कौन होते हो, हम मियां-बीवी के झगड़े में दखल देने वाले?"

"हां, तुम कौन होते हो?" उसकी पत्नी ने भी अपने तेवर दिखाते हुए कहा. "मैं नीग्रो पत्नी हूं. और अपने पति का अपमान बिलकुल नहीं सह सकती."

और दोनों मियां-बीवी हमारे मेहमान से भिड़ गये. और उसे मारने-पीटने लगे. अगर हम सब और रेस्तरां के सारे वेटर बीच-बचाव न करते तो मेहमान की अच्छी-खासी धुनाई हो जाती. तभी मैनेजर ने आकर हमसे कहा, "आप मेहरबानी करके अपना बिल अदा कर दें और रेस्तरां से चले जायें. हमें झगड़ा करने वाले ग्राहक पसंद नहीं."

कालेब जॉनसन हमें एक दूसरे रेस्तरां में ले गया. हम तीनों को यह रंगीन मजाक बहुत भाया. हमारे साथी कलाकार ने मेहमान महोदय से पूछा, "आपको उस नीग्रो से 'सॉरी' नहीं बोलना चाहिए था. आपने यह समझकर उसे धक्का दिया था कि वह एक गोरी महिला के साथ अभद्र व्यवहार कर रहा है. आपका इसमें कोई कसूर नहीं था."

"मैंने 'सॉरी' तब कहा जब मुझे यह विश्वास हो गया कि यह उनका आपसी मामला था," हमारे मेहमान महोदय ने कहा.

"क्या आप यह नहीं मानते कि हर महिला को, भले ही वह किसी भी जाति या वर्ग की क्यों न हो, अत्याचारी पुरुषों से बचाना हर समझदार आदमी का कर्त्तव्य है?" कलाकार ने पूछा.

"मानता हूं—मगर यह भी मानता हूं कि नीग्रो महिलाओं की रक्षा स्वयं नीग्रो पुरुष को ही करनी चाहिए."

"ओह! तो आप इस साधारण सी बात में जातिवाद को लाना चाहते हैं. इसी तरह तो संप्रदाय जन्म लेता है."

"मैं. . . मैं. . . ऐसा नहीं समझता."

"क्या आप यह नहीं समझते कि एक जुल्मी नीग्रो पति से उसकी पीड़ित पत्नी को बचाना हर पुरुष का कर्त्तव्य नहीं है?" मैंने मेहमान महोदय से पूछा. लेकिन इससे पहले कि वे कोई जवाब देते, कलाकार फिर बोला, "आपके गुस्से की वजह यह थी कि आपका खयाल था कि कोई नीग्रो पुरुष किसी गोरी महिला को सता रहा है."

"क्या वह आपको भी गोरी महिला नहीं लगी थी?" मेहमान महोदय ने थोड़ा तैश में आकर पूछा.

कलाकार ने कहा, "आप उसकी रक्षा के लिए आगे आये थे. तब मुझे अच्छा लगा था. लेकिन जब यह जानकर कि वह असल में एक नीग्रो महिला है, आप पीछे हट गये, तो मुझे बहुत खराब लगा. आप इस मामले में इतने तंगनजर क्यों हैं? हम फिरकापरस्ती के दुश्मन हैं."

"हां, हममें दुनिया भर की बुराइयां हो सकती हैं. लेकिन फिरकापरस्ती की बुराई कतई नहीं है," मैंने बड़े गर्व के साथ कहा.

कालेब ने मेहमान महोदय का पक्ष लेते हुए कहा, "मगर मिस्टर स्टबलफील्ड इस इलाके के लिए नये हैं. आपको यह नहीं भूलना चाहिए." मेहमान महोदय ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा, "हां, मैं यहां पहली बार आया हूं."

"आप जैसे आदमी को यहां आना ही नहीं चाहिए था." मैंने कहा. मिस्टर स्टबलफील्ड का मुंह लाल हो आया. उन्होंने उठकर जाते हुए कहा, "अच्छी बात है, मैं जाता हूं."

उनके जाने के बाद गोरी महिला ने कहा, "स्टबलफील्ड जल्दी आवेश में आ जाते हैं. लेकिन क्या यह सच है कि कोई नीग्रो महिला किसी गोरी महिला के समान गोरी हो सकती है?"

"हां, ऐसी बहुत सी महिलाएं आपको मिल जायेंगी," मेरे साथी लेखक ने कहा, "नेला लॉरसन ऐसी ही एक नीग्रो लेखिका हैं. उसे देखकर भ्रम होता है कि कहीं हम किसी गोरी महिला को तो नहीं देख रहे हैं."

नेला लॉरसन के बारे में और अधिक जानने की अपने मेहमानों की उत्सुकता को भांपकर मैंने उन्हें बताना आरंभ किया, "वह एक अच्छी उपन्यास लेखिका है. उसके पिता गोरे थे और मां ऐसी नीग्रो महिला जिसमें पहले से ही गोरा खून मौजूद था. इस विषय पर और अधिक जानने के लिए आप 'एक भूतपूर्व नीग्रो की आत्मकथा' भी पढ़ सकते हैं."

कालेब ने खाने का आर्डर दिया. खाना खाते-खाते हम सब ऐसी नीग्रो महिलाओं के बारे में बात करने लगे, जो देखने में गोरी महिलाओं जैसी लगती हैं. मैं उस समय चकित-स्तब्ध रह गया. जब बातों के बीच में आयोवा से आयी महिला ने धीमे स्वर में कहा, "इस बात का ज्यादा प्रचार करने की जरूरत नहीं है, लेकिन मैं आपको यह बताना चाहती हूं कि मैं और यहां मेरे साथ मौजूद मेरे पति मूलत: नीग्रो ही हैं, मगर हम दीखते गोरे पति-पत्नी जैसे हैं. हम दोनों का विवाह हुए पंद्रह वर्ष हो गये, मगर इस बीच किसी को भी यह संदेह नहीं हुआ कि हम मूलत: नीग्रो हो सकते हैं. शायद आपको मेरी बात सुनकर भी विश्वास नहीं हो रहा होगा."

"आश्चर्य है." हम तीनों के मुंह से सिर्फ इतना ही निकला. महिला के पति ने कहा, "हम दोनों भी आपकी तरह ही जन्मजात नीग्रो हैं. चूंकि कोई हम पर संदेह नहीं करता, इसलिए हम गोरे ही बने हुए हैं. गोरे बनकर हम ज्यादा कमा सकते हैं."

कालेब चकित मुद्रा में दोनों को देख रहा था. हम तीनों ठगे से बैठे थे. हमारी सारी अकड़ न जाने कहां खो गयी थी.

कालेब मुंह बाये बोला, "मैं तो सचमुच आपको गोरे व्यक्ति समझ रहा था. अगर मुझे मालूम होता कि आप भी हमारे समान नीग्रो हैं तो मैं आप लोगों को कभी यहां नहीं लाता." कहकर वह चला गया. ऐसा स्नॉब नीग्रो मैंने आज तक नहीं देखा था."

वातावरण अचानक तनावपूर्ण हो गया... कुछ क्षण बाद तनाव के ये बादल अपने आप छंट गये, और सब एक साथ हंसने लगे. और काफी देर तक हंसते रहे. हम सबके दिखावे देखते ही देखते दूर हो गये.

उस रात हम, छहों नीग्रो, नीग्रो बस्तियों में नाचते-गाते-घूमते रहे. पानी भी सुबह तक जारी रहा. हम सब बीच-बीच में मिस्टर स्टबलफील्ड का, जो वास्तव में गोरे थे, मजाक उड़ाते रहे, कैसा ढोंगी और बना हुआ आदमी था.

सुबह होते ही, पति-पत्नी ने ठिकाने पर जाने से पहले टेक्सी ड्राइवर से रुकने को कहा, उसने हमें बुलाकर, हंसते हुए कहा, "तुम लोगों के साथ वक्त अच्छा बीता, मेरे दोस्तो, लेकिन जाने से पहले मैं सभी बात बताना जरूरी समझती हूं. हम जन्मजात नीग्रो नहीं, जन्मजात गोरे अमरीकी ही हैं. हमने यह नाटक तुम्हारा विश्वास प्राप्त करने के उद्देश्य से किया था, और मुझे यह आशा नहीं थी कि तुम इतनी जल्दी और इतनी आसानी से हमारी बातों में आ जाओगे. लेकिन मौज करने के अलावा, आज हमने काफी कुछ सीखा. सीखा कि रंग और जाति, राष्ट्र और संप्रदाय सब ऊपरी बातें हैं. असली चीज है—मानवीयता. कोई धर्म मानव-धर्म से ऊपर नहीं हो सकता. अच्छा, खुश रहो, मेरे बच्चो, भले ही हमारे तुम्हारे रंग अलग-अलग हों. लेकिन इस कारण हम अलग-अलग नहीं हैं—एक हैं." □

प्रस्तुति : हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला सूरज

भगवती शरण मिश्र

मुगल बादशाहों की धार्मिक कट्टरता को देखते हुए भी शिवाजी सभी धर्मों के प्रति सच्ची श्रद्धा रखते थे? सर्व धर्मसमभाव का यह संस्कार उन्हें कहां से, क्यों और कैसे मिला? बतला रहा हूं भगवतीशरण मिश्र के ताजा उपन्यास 'पहला सूरज' का यह अंश—

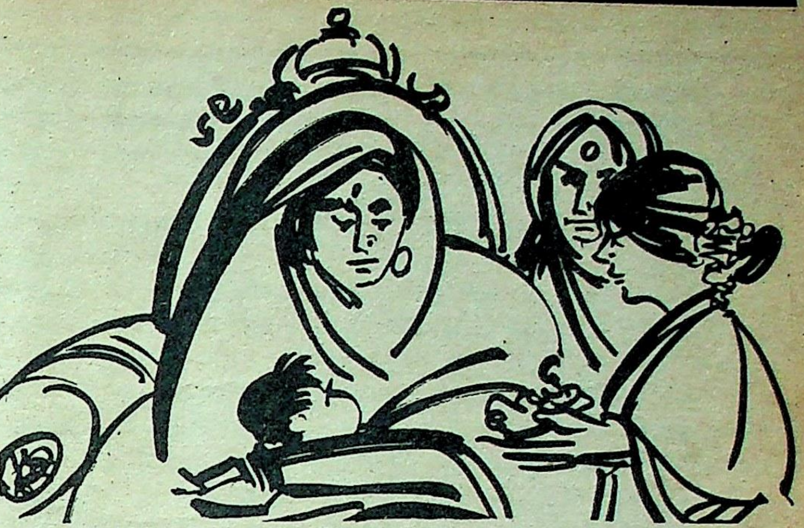

आज शिवा का जन्मोत्सव था. दादा कोंडदेव ने किले के आसपास के गांवों के प्रमुख व्यक्तियों के अलावा दूर-दराज के पंडितों और साधु-संतों को भी इस अवसर पर आमंत्रित किया था.

शाहजी का इस समय नहीं होना जीजा को बार-बार खल रहा था. दादा कोंडदेव सब कुछ जानते हुए भी मौन थे. उन्होंने सोच रखा था कि उपयुक्त अवसर पर ही भेद खोलना उचित होगा. खुशी के इस अवसर पर उस दिन के पत्र की बात को वे जीजा को बतलाना नहीं चाहते थे. अब तक जब बात को बाहर नहीं आने दिया तो कुछेक दिन और वे उसे छिपाकर ही रखेंगे और समय आने पर इस रूप में रखेंगे कि जीजा को कम से कम कष्ट हो. शिवा के जन्म से लेकर आज तक और तुलजापुर की यात्रा के क्रम में जीजा को अत्यंत हर्ष से भरे देखकर उनका मन जहां एक ओर प्रसन्नता से ओत-प्रोत होता रहा था, वहीं दूसरी ओर कहीं यह बात भी गहरे कचोटती रही थी कि जीजा के लिए इस वज्रपात को झेलना बहुत आसान नहीं होगा. फिर भी वे जानते थे कि शिवा के भविष्य को ध्यान में रख जीजा सब कुछ बर्दाश्त कर लेंगी और जीजा के समान महिला को अपने को व्यवस्थित करने में बहुत समय भी नहीं लगेगा.

"सारी तैयारी हो गयी?" जीजा ने अंतः पुर के बाहर आ पूछा.

"हां महारानी," दादा कोंडदेव ने जवाब दिया, "किले के मैदान में कोई चार सौ लोग एकत्र हो गये हैं. उनके भोजन की भी व्यवस्था हो गयी है. ब्राह्मणों और साधु-संतों को देने के लिए कपड़े और अनाज की व्यवस्था कर दी गयी है. शाम के समय भजन-कीर्तन और ज्ञानेश्वरी तथा रामायण के पाठ का भी प्रबंध है."

"अच्छी बात है. ब्राह्मणों और साधु-संतों की संख्या कितनी होगी?" जीजा ने पूछा.

"मैंने आपकी आज्ञानुसार इक्यावन ब्राह्मणों की व्यवस्था कर ली है. तुकारामजी और एकनाथी साधु भी कोई बीस-बाईस होंगे."

"कोई मुसलमान फकीर नहीं मिला?"

"आपकी आज्ञा नहीं थी महारानी." दादा कोंडदेव कुछ आश्चर्य से बोले.

"इसमें आज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं थी दादा साहब," जीजाजी ने आरंभ किया, "मेरे विचार तो सबको पता हैं. सारे धर्मों के प्रति मेरी समान श्रद्धा है. मैं चाहती हूं कि शिवा को सभी धर्म-गुरुओं का आशीर्वाद एक साथ प्राप्त हो, जिससे उसे भी यह विश्वास संस्कार में ही प्राप्त हो जाये और वह आगे चलकर मदांध मुगलों की तरह धार्मिक कट्टरता का पोषक न बन, सब धर्मों, सभी संप्रदायों के प्रति सच्ची श्रद्धा प्रदर्शित करे."

"आपका कहना उचित है महारानी!" दादा ने कहा, "पर अफसोस है कि हमारा ध्यान इस ओर नहीं गया और किले के आस-पास कोई फकीर है भी नहीं, जिसे बुला लिया जाये, पर एक बात है, इससे शायद महारानी का मकसद पूरा हो जाये?"

"क्या?" जीजा ने आश्चर्य से पूछा.

"हमने एक ईसाई संत को आमंत्रित कर लिया है."

"ईसाई संत? ईसाई संत यहां कहां मिलेंगे?" जीजा का आश्चर्य बढ़ गया.

"हैं महारानी, बड़े अच्छे जीव हैं, अंग्रेज हैं, फादर स्मिथ."

"क्या कहते हैं दादा? सात समुद्र पार के अंग्रेज यहां कैसे आ सकते हैं?"

"आ गये गये हैं महारानी, अब तो काफी आ गये हैं, जब से मुगल बादशाह जहांगीर ने उन्हें तिजारत करने की अनुमति दी, तब से तो अब तक काफी आ गये हैं, पर फादर स्मिथ उसके भी पहले से हैं. किसी पुर्तगाली जहाज के दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण वे भारत के किनारे आ गये थे, उन्नीस-बीस की उम्र से ही. तभी से यहां हैं."

"तो तब से है! क्या कहा, फादर समीथ?" जीजा नाम का उच्चारण ठीक से नहीं कर पा रही थीं.

"हां महारानी, फादर स्मिथ. यही नाम है उनका. थोड़ा टेढ़ा पड़ता है हम लोगों के बोलने में. बचपन में ही इस किनारे आ लगे, तब से जीवन ही काट दिया यहां. अब तो डाली के पके आम हुए, पर हैं बड़े खुशदिल. लोगों में घुलते-मिलते रहते हैं तो दूर-दराज़ की खबर भी रखते हैं."

"कैसी खबर?"

ज़ीजाजी ने पूछा तो दादा को लगा, जल्दी में वे क्या-क्या बोल गये. असल में फादर ही तो पहले-पहल शाहजी की दूसरी शादी की खबर लाये थे.

"बहुत अच्छा. यह आपने अच्छा किया. आगे का सब प्रबंध देख लें." जीजा ने कहा और अंदर जाने को हुईं.

"सब प्रबंध ठीक है. आप स्नान आदि कर पूजा-पाठ से निवृत्त हो लें तो आशीर्वाद का कार्य आरंभ हो. तब तक जो बाकी हैं, वे भी आ जायेंगे."

"तो अभी तक आपके अंग्रेज संत नहीं आये?" जीजा ने उत्सुकता से पूछा.

"आ ही रहे होंगे महारानी, वे अवश्य आ जायेंगे."

"ठीक है, आप सारी तैयारी ठीक से कर लें."

शिवा को काफी अच्छे कपड़े पहनाकर किले के बैठकवाले कमरे में लाया गया था. जीजा चेहरे पर घूंघट किये पास ही बैठी थीं. शिवा, हाथ-पैर फेंककर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा था. उसके रंग-रूप और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उम्र इसी में ऐसा डील-डौल देखकर लोगों का मन पुलक-पुलक आता था. जो एक बार देखता, दुबारा भी किसी न किसी बहाने आकर देख जाता. किसी-किसी की तो देर तक टकटकी ही बंधी रह जाती. पता नहीं, यह उसे पहनाये गये चकमक राजसी कपड़ों की विशेषता थी या सचमुच ही उसके अंदर कुछ अलौकिक या नैसर्गिक था!

"बालक बड़ा भाग्यवान है माता." आशीर्वाद देने आये ब्राह्मणों ने एक साथ कहा.

जीजा ने सिर झुकाकर उनके प्रति आदर प्रदर्शित किया.

"यह या तो छत्रपति सम्राट होगा या बहुत बड़ा संत." किसी ज्योतिषी-से लग रहे पंडित ने कहा.

"क्या कहा?" घूंघट के बावजूद जीजा के मुंह से ये शब्द निकल गये.

"कुछ नहीं महारानी, कुछ नहीं, हम सब बताता है." फादर स्मिथ जो अब तक ब्राह्मणों के ठीक पीछे खड़े थे, आगे आ गये.

"यह कौन हैं?" जीजा ने पास खड़े दादा कोंडदेव से पूछा.

"यही हैं फादर, फादर स्मिथ."

"अच्छा!" जीजा ने श्रद्धा से सिर झुकाया.

"यही तो हम कह रहा था महारानी साहिबा कि ठीक कहा, पंडित-जी ने तो बहोत ठीक कहा. तुम्हारा देश ग्रेट है. महान कंट्री है. महारानी यहां बहोत बड़ा-बड़ा, बहोत महान लोग 'बर्थ' लिया, हमारा मतलब पैदा हुआ. हमने तो तुम्हारा देश का हिस्ट्री पढ़ा, बहुत पढ़ा. ऐसा प्रोफेसी हमारा मतलब भविष्यवाणी बहोत बार हुआ. सभी ग्रेट लोगों के साथ हुआ. जब महावीर पैदा हुआ तो ज्योतिषियों ने यही बात कहा, 'चाइल्ड' हमारा मतलब बालक या तो 'चकरवरती समराट' होगा या बहोत बड़ा सेंट, हमारा मतलब सनयासी होगा. बुद्धा पैदा हुआ तो इसी माफिक प्रोफेसी किया, अब शिवा पैदा हुआ तो ऐसा ही बोलता है. ठीक बोलता है महारानी, पर अबकी बार 'अपोजिट' होगा हमारा मतलब महावीर और बुद्धा तो किंग के बदले साधु हो गया, पर शिवा साधु होने के बदले 'समराट' होगा, ग्रेट किंग. अभी तोम्हारे देश में साधु बहोत हुआ, एकनाथ हुआ. तुकाराम हुआ, गयानेश्वर हुआ. अब कितना होगा? नहीं होगा. अब तोम्हारा धरती किंग मांगता, समराट मांगता. शिव जरूर समराट होगा."

"बहुत धन्यवाद महाराज. आपकी बात सही हो." जीजा ने धीरे से कहा.

"जरूर सही होगा हमारा बात. क्यों दादा साहब, आप क्या बोलता?" फादर स्मिथ ने दादा कोंडदेव की ओर मुड़कर कहा.

"आप ठीक बोलता फादर, आपने पूरी उम्र दीन-दुखियों की सेवा में लगा दी. शादी-ब्याह तक नहीं किया. अपना देश छोड़कर इसी देश का हो गया. निःस्वार्थ सेवा किया. तुम्हारी बात जरूर सच होगी. तुम्हारे मुंह से भगवान बोलता. तुम लोग गौड बोलता. तुम आशीर्वाद दो शिवा को." दादा ने कहा.

"हम जरूर आशीर्वाद देता. खूब आशीर्वाद देता, पर अपनी बात को प्रूफ करने के लिए क्या बोलेगा. 'सिध' करने के लिए एक बात और बोलता."

"बोलिए." जीजा बाई बोलीं. उनके चेहरे से लग रहा था कि फादर स्मिथ के समग्र व्यक्तित्व, विशेषकर उनके हाव-भाव एवं बोलचाल से झलकती सहज निश्छलता ने उन्हें बहुत प्रभावित किया था.

"हम एक बड़ी बात कहने वाला है महारानी और उसके लिए मैं आपको पढ़ायेगा." फादर स्मिथ ने हाथ-लटकते अपने झोले में टटोलते हुए कहा.

"क्या?" कुछ नहीं समझकर जीजाजी हड़बड़ाकर बोलीं.

"आप अब चुप करो फादर." दादा कोंडदेव ने फादर स्मिथ का हाथ पकड़ते हुए कहा, "आपकी यही आदत खराब है. आप सबको बाइबिल पढ़ाने लगता है."

"नहीं, हम पढ़ायेगा, जरूर पढ़ायेगा महारानी को बाइबल. इसमें इसी मौके का बात है. अभी नहीं पढ़ायेगा तो कब पढ़ायेगा. हमें महारानी को बाइबल पढ़ाने दो दादा साहब. तुम्हें भी अच्छा लगेगा, जो यहां लिखा है." अब तक फादर स्मिथ झोले से पुस्तक निकाल उसका एक विशेष पृष्ठ खोल चुके थे और एक स्थान पर अपनी अंगुली रख जीजा बाई को उत्सुकता से देखने लगे थे.

"ठीक है, ठीक है." जीजा ने बीच में ही टोकते हुए कहा," "फादर को बाइबल की बात बतलाने दी जाये. पढ़िए फादर, आप अपनी बाइबल पढ़िए, पर हम तो कुछ समझ नहीं पायेंगे. मतलब भी हमें बता दें."

"हम इस 'सुभ' अवसर पर इस स्टेंस को पहले पूरी तरह पढ़ लेते हैं. जैसे आपके पंडितों का मंत्र-पाठ चाइल्ड के लिए अच्छा करनेवाला होगा, वैसे मेरा यह बाइबल पाठ भी उसका भला करेगा."

"हां—हां ठीक है, पहले आप अंग्रेजी पढ़ लें, फिर उसका अर्थ बतायें, महारानी भी इसे पसंद करेंगी." दादा साहब ने उत्साह दिलाया.

"हां, आप पढ़ें." जीजा बाई ने भी धीरे से कहा और शिवा को गोद में उठा उसका चेहरा निहारने लगीं. कुछ दूरी पर खड़े पंडितों का समुदाय भी मौन साधे इस लीला को बड़ी उत्सुकता से देख रहा था. फादर स्मिथ ने पहले अपनी गर्दन से लटकते क्रॉस पर श्रद्धापूर्वक हाथ फेरा और फिर उसे अपने होठों से लगा खुले पृष्ठ की पंक्तियां पढ़ीं.

"क्या मतलब हुआ?" दादा ने पूछा.

"यह वर्णन जीसस के जन्म के समय का है." फादर ने कहा.

"अच्छा." जीजा ने उत्सुकता से कहा. उन्हें ईसाई धर्म के बारे में बहुत कुछ ज्ञात तो नहीं था, पर विभिन्न धर्मों के प्रति रुचि रहने के कारण उन्हें जीसस क्राइस्ट के नाम का पता था और वे जानती थीं कि ईसाई धर्म के प्रवर्तक जीसस एक बहुत बड़े चमत्कारी पुरुष थे.

"हां महारानी," फादर ने आरंभ किया, "यहां यह लिखा है कि जब क्राइस्ट पैदा हुआ तो पूरब के संतों ने आकर उनका दर्शन और 'वर्शिप' हमारा मतलब पूजा किया. आज जब आपका शिवा पैदा हुआ तो पश्चिम का यह संत उसे आशीर्वाद देने आ पहुंचा. पश्चिम ने पूरब का कर्ज चुका दिया. महारानी, पश्चिम के इस सेंट हमारा मतलब संत का आशीर्वाद यह है महारानी कि जैसे जीसस का नाम इतिहास में इम्मार्टल, हमारा मतलब अमर हो गया, वैसे शिवा का नाम भी अमर हो जाये. जीसस बहुत बड़ा सेंट बना तो शिवा बहुत बड़ा 'वैरियर' मेरा मतलब वीर, बहुत बड़ा 'समराट' बने."

"वाह, वाह." दादा साहब खुशी से ताली बजाते हुए बोले. पीछे खड़े ब्राह्मणों की पंक्ति ने भी हर्षध्वनि की और एक बूढ़ा ब्राह्मण आगे आकर बोला, "यह आपने पूरब और पश्चिम की बात बड़ी अच्छी कही महाराज! आपके जीसस को पूरब के संतों ने शुभकामनाएं दीं. यह सुखद संयोग ही है कि युवराज के जन्म के अवसर पर पश्चिम के एक संत का आशीर्वाद इन्हें मिल रहा है."

"वही तो, वही तो. इसीलिए तो हम बाइबल पढ़ने की बात पर जोर दे रहा था, पर दादा साहब को मेरी बात. . ." फादर प्रसन्नता से भरकर बोले.

देर तक अभिषेक पाठकर ब्राह्मणों ने फल, अक्षत, जल आदि पवित्र वस्तुओं का शिवा के शरीर पर छिड़काव कर आशीर्वाद दिया तो जीजा गद-गद हो आयीं.

पूजा समाप्ति पर सभी उपस्थित लोगों को भोजन कराया गया. भोजन में पुआ-पकवान के अलावा विभिन्न स्वादिष्ट व्यंजनों एवं दही तथा मिष्ठान की ऐसी बहुलता रही कि ब्राह्मणों एवं अन्य लोगों ने भूरि भूरि प्रशंसा की.

भोज की समाप्ति पर दादा कोंडदेव ने दूर-दूर से आये गरीबों, भिखमंगा और अशक्त लोगों में भी वस्त्र और द्रव्य बांटे. इस प्रकार देर रात गए तक यह कार्यक्रम समाप्त हुआ. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरे अमरीकी काले अमरीकी

जॉन स्टीनबैक

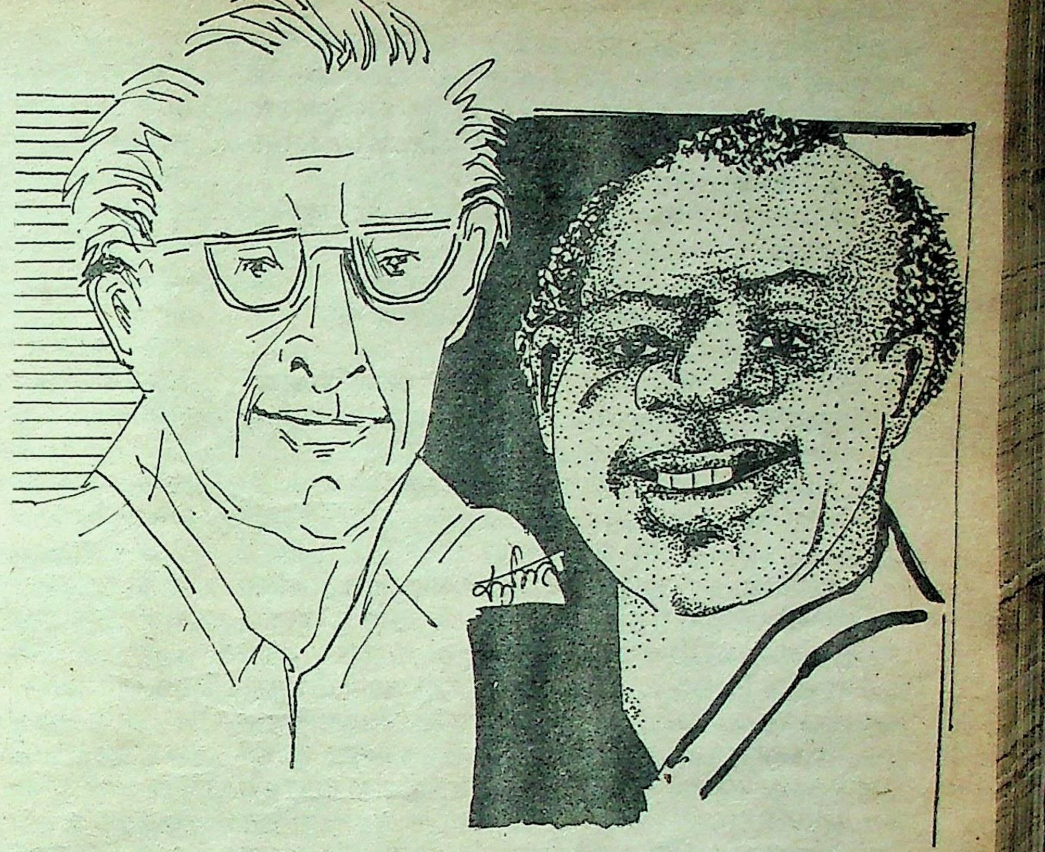

अमरीका हो या भारत, जहां भी विविध धर्मों, जातियों अथवा वर्णों के लोग रहते हैं, वहां अगर उनमें विभाजन पैदा करनेवाले लोग सक्रिय रहते हैं तो ऐसे जागरूक लोग भी रहते हैं जो देश के सारे वासियों की आत्मा को एक मानते हैं.

अमरीका की उस आत्मा की तलाश में निकले नोबेल पुरस्कार विजेता लेखक जॉन स्टीनबेक की पुस्तक 'ट्रेवल्स विद चार्ली' के कुछ अंश . . .

अपनी इस यात्रा की रूपरेखा बनाते समय कुछ प्रश्न मेरे सामने थे और मैं उनके सुनिश्चित उत्तर चाहता था. मेरा विचार था कि ये कोई ऐसे प्रश्न नहीं थे जिनका उत्तर तलाश करना कठिन होगा. इन सारे सवालों को मिलाकर यदि एक सवाल बनाया जाये तो वह होगा—'आज के अमरीकी किस तरह के लोग हैं?'

अमरीकियों के आचार-व्यवहार की चर्चा करना यूरोपवासियों का आम फैशन है. लगता है जैसे वहां हर आदमी ही अमरीकी समाज का विशेषज्ञ है. कोई अमरीकी भी उनके बीच इस तरह की चर्चा में शौक से शामिल हो जाता है और जब वह दो-तीन हफ्ते की यूरोप की यात्रा करके अमरीका वापस आता है तो फ्रांसीसियों, अंग्रेजों, इतालवियों, जर्मनों और यहां तक कि रूसियों के स्वभाव की व्याख्या बड़े अधिकार के साथ करता है. मैंने जितना भी भ्रमण किया है, मुझे तो यह लगता है कि स्वयं अमरीकियों के स्वभाव में ही समानता नहीं है. दो अमरीकी स्वभाव में परस्पर इतने भिन्न हो सकते हैं कि उन्हें विरोधी भी कहा जा सकता है. अक्सर ऐसा भी होता है कि कोई यूरोपियन अमरीकियों को जी भर कोसने के बाद मुझसे कहता है, "आप जरूर बाकी अमरीकियों से अलग हैं. मैं तो दूसरे अमरीकियों के बारे में कह रहा था." मतलब यह निकला कि अमरीकी होकर भी आप अमरीकियों को नहीं जानते. एक फ्रांसीसी या इतालवी आपका परिचित या मित्र हो सकता है, क्योंकि उसमें वह अमूर्त किस्म का दुर्गुण नहीं है जिसके बारे में आप भी ठीक तरह से नहीं जानते.

मैं हमेशा यही समझता रहा कि यह एक अबूझ पहेली है, पर अपने देश में इधर-उधर घूमकर अब मेरी धारणा बदल गयी है. यह तो है कि जिन अमरीकियों को मैंने देखा और जाना है, वे अपना-अपना अलग व्यक्तित्व रखते हैं. सब एक दूसरे से भिन्न हैं. पर धीरे-धीरे मुझे महसूस होने लगा कि अमरीकी दरअसल एक जाति है. सामाजिक और आर्थिक स्थिति, शिक्षा, धार्मिक और राजनीतिक विश्वासों और राज्यों की विभिन्नता के बावजूद उसकी कुछ व्यापक विशेषताएं हैं. लेकिन यदि अमरीकी का कोई वास्तविक रूप है तो वह क्या है? वह देखने में कैसा लगता है? वह क्या करता है? यदि कोई गीत, कोई लतीफा, कोई शैली देश के सभी भागों में एकदम फैल जाते हैं तो इससे यही जाहिर होता है कि अमरीकियों में कोई न कोई बात सामान्य अवश्य है और फिर इस तथ्य से कि वही लतीफा या वही शैली हालैंड, फ्रांस या इटली में कोई प्रभाव पैदा नहीं करते, यह बात पुष्ट ही होती है. लेकिन जितना अधिक मैं 'अमरीकी' के इस रूप का अध्ययन करता हूं, उतना ही अधिक भ्रम से मैं घिरता जाता हूं और यह नहीं समझ पाता कि अमरीकी का वास्तविक रूप आखिर है क्या. यह सब मुझे विरोधाभासों से घिरा लगता है. और मेरा अनुभव यह है कि किसी भी चीज में यदि विरोधाभास नजर आये तो समझो कि मामले पर अभी तक पकड़ पूरी नहीं हो पायी है.

मैं एक के बाद दूसरे राज्य से गुजरा हूं. हर राज्य का अपना स्वरूप है. इन राज्यों के असंख्य लोगों से मिला हूं. इस समय मैं दक्षिण में हूं. इस क्षेत्र से मुझे डर-सा लगता है. पर मेरी इस तलाश में इसे भी देखना और जानना बहुत जरूरी है. पीड़ा और हिंसा ने मुझे कभी आकर्षित नहीं किया. यदि कहीं कोई दुर्घटना घट गयी हो तो मैं कतराकर निकल जाता हूं. सड़क पर होनेवाले लड़ाई-झगड़ों से भी दूर ही रहता हूं, इसीलिए दक्षिण की ओर जाते मुझे डर लगता है. मैं जानता हूं कि वहां कष्ट हैं, मानसिक उलझनें हैं, भ्रम और भय से पैदा होने वाले सभी लक्षण हैं, पर चूंकि दक्षिण का यह भाग भी अमरीका का एक अंग है इसलिए यहां पैदा होनेवाली पीड़ा पूरे अमरीका में महसूस की जा रही है.

वहां की समस्याओं के बारे में जो अधूरी सच्चाई अक्सर कही जाती है कि—पूर्वजों के पाप का फल उनकी संतानों को भोगना पड़ रहा है—वह मुझे मालूम है. बहुत सारे दक्षिणवासी—जिनमें नीग्रो भी हैं और गोरे भी—मेरे अच्छे दोस्त हैं. इनमें से कई मन और चरित्र से बहुत ही ऊंचे हैं, पर मैंने देखा और महसूस किया है कि जब भी कभी उनके सामने नीग्रो और गोरों की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है, कोई हल्का-सा प्रसंग भी उन्हें अनुभूति के एक ऐसे स्तर पर ले आता है, जहां मैं नहीं पहुंच सकता.

उत्तर के अधिकांश लोग उनकी इस मानसिक यातना के सही और भावनात्मक स्वरूप को समझ नहीं पाते. और मैं तो उतना भी नहीं समझ पाता. इसलिए नहीं कि गोरा होने के कारण नीग्रो लोगों के साथ रहने का मुझे अनुभव नहीं है. बल्कि इसलिए कि इस मामले में मेरा अनुभव बिल्कुल दूसरी तरह का ही रहा है.

केलीफोर्निया के सेलिनास कस्बे में, जहां मेरा जन्म व लालन-पालन हुआ, जहां मैंने स्कूली शिक्षा पायी थी, जहां मेरे मन पर वे सब प्रभाव पड़े जिनसे मेरे व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था, वहां केवल एक नीग्रो परिवार रहता था. घर के मुखिया का नाम कूपर था. उसके तीन बेटे थे—एक मुझसे थोड़ा बड़ा था, एक मेरी उमर का और एक मुझसे करीब एक साल छोटा. ठीक इसी क्रम में कूपर परिवार का एक बच्चा मुझसे अगली क्लास में, एक मेरी क्लास में और एक मुझसे निचली क्लास में होता था. उनके पिता को सब लोग मिस्टर कूपर कहते थे. उनका ट्रक का कारोबार था. जो अच्छा चल रहा था और वे खुशहाल थे. श्रीमती कूपर सभी से स्नेह और मित्रता रखती थीं.

सेलिनास में कभी किसी किस्म का रंगभेद रहा हो, उसका कोई आभास मुझे नहीं मिला. कूपर परिवार की काफी प्रतिष्ठा थी और उनका आत्म-सम्मान किसी भी तरह से ऊपरी या बनावटी नहीं माना जा सकता था. उनका बड़ा लड़का यूलिसिस बांस कूद में इतना दक्ष था कि उतना तेज और अच्छा खिलाड़ी हमारे कस्बे में कभी पैदा नहीं हुआ था. वह कद का काफी लंबा और स्वभाव से शांत था. खेल की पोशाक पहने वह किस तरह से दौड़ता था, किस तरह से बांस टिकाकर अपने को ऊपर उछालता था और किस सफाई से दूसरी तरफ कूद जाता था, वह मुझे अब तक याद है. हाई स्कूल के तीसरे साल में उसकी मृत्यु हो गयी थी. उसकी अर्थी को कंधा देनेवालों में एक मैं भी था.

कूपर परिवार का दूसरा लड़का इगनेशियश था जो मेरी ही क्लास में पढ़ता था. वह मुझे पसंद नहीं था. इस नापसंदगी का कारण मैं आज तक नहीं समझ पाया हूं. शायद उसके क्लास में सबसे तेज होने के कारण ऐसा हो रहा हो. अंकगणित में तो वह शुरू से ही क्लास में सबसे अधिक अंक लाता था. बाद में बीजगणित तथा रेखागणित में भी वह सबसे अच्छे अंक लाने लगा. लेटिन में भी वह मुझसे बहुत तेज था. इस तरह के सहपाठी को भला कौन पसंद कर सकता है.

कूपर परिवार के सबसे छोटे लड़के को हम बेबी कहते थे. वह हमेशा मुस्कराता रहता था. कितनी अजीब बात है कि मुझे अब उसका नाम याद नहीं रहा. शुरू से ही वह संगीत का शौकीन था. आखिरी बार जब मैं उससे मिला, तब भी वह अपने संगीत में ही डूबा हुआ था. संगीत की थोड़ी-बहुत पहचान मेरे कानों को भी है और उसके आधार पर कह सकता हूं कि उसका संगीत बहुत ओजस्वी, मौलिक और मधुर था. इन सारे गुणों के साथ-साथ ये तीनों कूपर बंधु मेरे दोस्त भी थे.

बचपन के कठिनाई भरे दिनों में मैं केवल इन्हीं नीग्रो लोगों को जानता था और इन्हीं के संपर्क में आया था. इस प्रकार आप यह तो समझ ही सकते हैं कि इस मामले में मैं इस महान संसार का सामना करने के लिए तैयार नहीं था. उदाहरण के लिए जब कोई कहता कि नीग्रो एक घटिया नस्ल है तो मुझे हमेशा लगता है कि ऐसा कहनेवाले को सही जानकारी नहीं है. जब कोई कहता है कि नीग्रो गंदे होते हैं तो मुझे श्रीमती कूपर का रसोईघर याद आ जाता है. जब लोग कहते हैं कि वे आलसी होते हैं तो मेरे कानों में मिस्टर कूपर की घोड़ा गाड़ी की टापें गूंजने लगती हैं, जो हमें पौ फटते ही जगा दिया करती थीं. मैं भला यह भी कैसे स्वीकार कर लूं कि ये लोग बेईमान होते हैं जबकि मिस्टर कूपर तो सेलिनास के उन गिने-चुने लोगों में से थे, जो अपनी कोई भी देनदारी 15 ता. से आगे नहीं बढ़ने देते थे.

अब एक बात और मेरी समझ में आ रही है कि कूपर परिवार उन नीग्रो लोगों से कहां भिन्न था, जो बाद में मुझे मिले. वह बात यह थी कि कूपर परिवार का कस्बे में सम्मान था. न तो कोई उन्हें चोट पहुंचाता था और न उनका अपमान ही करता था. इसलिए उनका रुख भी आत्मरक्षा या झगड़े का नहीं था. चूंकि उनकी प्रतिष्ठा सुरक्षित थी, इसलिए उन्हें घमंड करने की जरूरत नहीं थी. उनके लड़कों ने कभी किसी के मुंह से नहीं सुना था कि वे औरों की अपेक्षा घटिया नस्ल के हैं. इसलिए उनका मानसिक विकास बड़े स्वच्छंद वातावरण में हुआ था.

नीग्रो लोगों को लेकर मेरा अनुभव बचपन में इतना ही रहा और इन लोगों के जो प्रभाव तब मेरे मन पर अंकित हो गये थे, उन्हें बदलना अब संभव नहीं होगा. तब से मैंने बहुत कुछ देखा—हिंसा, निराशा और मानसिक उलझन की प्रलयंकर लहरों को मैंने अनुभव किया है. मैंने ऐसे नीग्रो बच्चे भी देखे हैं जो वाकई कुछ नहीं सीख सकते, क्योंकि उनके मासूम दिलों पर बचपन से ही यह बात बिठा दी गयी है कि वे एक घटिया नस्ल के हैं. जब मैं कूपर परिवार और उनके प्रति अपनी भावनाओं को याद करता हूं तो आज की स्थिति पर मुझे बड़ा दुख होता है कि नीग्रो और हम लोगों के बीच किस तरह नफरत और आशंकाओं की एक दीवार खड़ी कर दी गयी है.

अभी-अभी मेरे मन में एक अजीब सा विचार आया है. मान लीजिए, सेलिनास में कोई समझदार और व्यवहार कुशल व्यक्ति मुझसे पूछता कि "आपकी बहन अगर कूपर परिवार के किसी लड़के से शादी कर ले तो आपको कैसा लगेगा?" तो मैं समझता हूं कि हम इस बात पर हंस पड़ते क्योंकि इस तथ्य के बावजूद कि कूपर परिवार से हमारी अच्छी मित्रता है, कोई भी कूपर लड़का मेरी बहन से शादी नहीं करना चाहेगा.

सच यह है कि जातियों के इस झगड़े में मैं बुनियादी तौर पर किसी पक्ष की वकालत करने योग्य नहीं हूं. जब लोग कोई ऐसा काम कर रहे हों जो गर्व करने लायक न हो तो वे नहीं चाहते कि कोई उन्हें यह करता देखे. दरअसल वे यह सोचने लगते हैं कि दूसरे लोग इसमें झंझट ही पैदा करेंगे.

दक्षिण की इस सारी चर्चा में मैंने केवल उस हिंसा की बात कही है, जो नस्ली भेदभाव के विरुद्ध आंदोलनों के कारण भड़की है. जो नीग्रो लोगों की इस मांग के कारण भड़की है कि उनके बच्चों को स्कूलों, नौजवानों को रेस्तराओं, बसों, स्टेशनों के शौचालयों में समान अधिकार मिलना चाहिए. मेरी दिलचस्पी विशेष रूप से स्कूलों में है, क्योंकि मुझे लगता है कि यह रोग तभी दूर हो सकेगा जब देश में कूपर परिवार के बच्चों जैसे लाखों बच्चे तैयार हो जायेंगे.

हाल ही में दक्षिण के मेरे एक निकट मित्र ने भावावेश के साथ वह सिद्धांत समझाया जिसके अनुसार नीग्रो लोगों को गोरों के समान सुविधाएं दी जायें, पर जगहें अलग-अलग ही रहें. उन्होंने मुझे बताया, "स्थिति यह है कि मेरे अपने कस्बे में तीन नये नीग्रो स्कूल हैं, जो गोरों के स्कूलों के समान ही नहीं, कई मायनों में उनसे अच्छे हैं. क्या इससे उन्हें संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए? स्कूलों की ही तरह बस स्टेशन पर उनके लिए जो शौचालय हैं, वे बिल्कुल हमारे शौचलयों जैसे हैं. अब बताइए, है आपके पास इसका कोई जवाब."

मैंने कहा, "हो सकता है, वे इस बात से अपरिचित हों कि उनके पास वही सुविधाएं हैं जो आपके पास हैं. आप ऐसा क्यों नहीं कर लेते कि उनकी और अपनी जगहों को आपस में बदल लें. इससे वे समझ जायेंगे और अपनी गलती महसूस कर सकेंगे."

जानते हैं इस पर क्या हुआ? हमारे मित्र बोले : "तुम सिर्फ झंझट पैदा करोगे, हरामी." और कहने के साथ वे मुस्करा दिये थे. ☐

संक्षिप्त रूपांतर : सु. उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादों के परदेस

आसिफ फर्रुखी

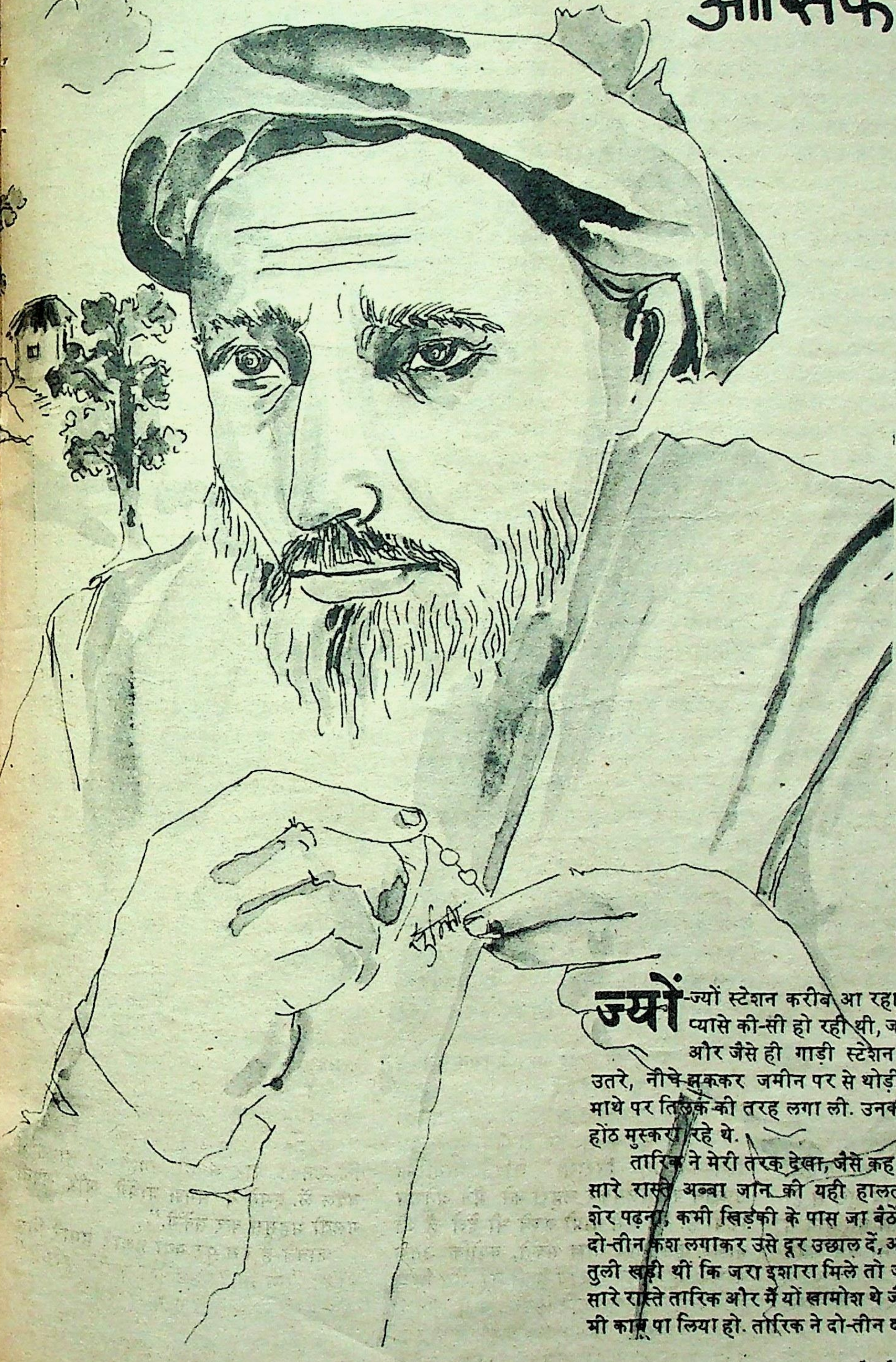

छह-सात साल भी नहीं हुए अभी पाकिस्तानी कथा क्षितिज पर उभरे युवा कथाकार आसिफ़ फ़र्रुखी को, मगर इतने कम समय में ही उन्होंने अपनी कहानियों को जो बुलंदियां दी हैं, बहुत कम कथाकार दे पाते हैं. उनकी हर कहानी एक नया अनुभव होती है और होती है पिछली कहानी से दो कदम आगे. अपने निरीक्षण में यथार्थवादी और सोच में वैविध्यपूर्ण इस परम संभावनाशील कथाकार की यह कहानी पाठक के सामने एक नया सवाल उठाती है कि भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन के इतने दिनों बाद भी इसके बाशिंदों में अपनी जन्मभूमि के प्रति इतना लगाव क्यों और किसलिए—

ज्यों-ज्यों स्टेशन करीब आ रहा था, अब्बा जान की हालत उस प्यासे की-सी हो रही थी, जो कुएं के नजदीक पहुंच रहा हो. और जैसे ही गाड़ी स्टेशन पर रुकी, अब्बा जान दौड़कर उतरे, नीचे झुककर जमीन पर से थोड़ी-सी मिट्टी उठायी और अपने माथे पर तिलक की तरह लगा ली. उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे और होंठ मुस्करा रहे थे.

तारिक ने मेरी तरफ देखा, जैसे कह रहा हो—यह तो होना ही था. सारे रास्ते अब्बा जान की यही हालत रही थी—डब्बे में टहलना, शेर पढ़ना, कभी खिड़की के पास जा बैठें, कभी सिगरेट सुलगा लें, फिर दो-तीन कश लगाकर उसे दूर उछाल दें, और चेहरे पर बरसात की घटाएं तुली खड़ी थीं कि जरा इशारा मिले तो जब्त के बंधन टूटकर बह जायें. सारे रास्ते तारिक और मैं यों खामोश थे जैसे मौके की संजीदगी ने हम पर भी काबू पा लिया हो. तारिक ने दो-तीन दफा मुंह से तबला बजाकर तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगायी—'कंट्री रोड, टेक मी होम!" मगर किसी को हंसी न आयी. इस स्थिति का अंदाजा हो जाता तो घर से निकलते ही क्यों! उठे हुए कदम लेकिन वापस तो न हो सकते थे. अब तो स्टेशन आ चुका था, गाड़ी ठहर चुकी थी, अब्बा जान भाव-विभोर थे और मैं हिंदुस्तान की सरजमीन पर अपना पहला कदम इस एहतियात से रख रहा था जैसे यह कोई सगुन हो.

प्लेटफार्म पर उतरते ही मैं दुविधा में पड़ गया. कानों में अभी तक रेल की 'छकाछक' गूंज रही थी और मुझे एहसास न था कि पैरों तले रेल के डब्बे का हिलता-डोलता फर्श नहीं, नर्म भुरभुरी मिट्टी है. रेल आहिस्ता से खिसकने लगी तो सहसा यह खयाल आया कि जहां से हम आये हैं, उस जगह से संबंध का धागा खिंचकर टूट रहा है, यहां हम दूसरे प्रदेश में आ गये हैं, जिसकी अपनी दुनिया है, इसका अपना गुरुत्व केंद्र है.

क्या यह वाकई कोई दूसरा मुल्क था? हमारे मुल्क से क्या फर्क था? यहां स्टेशन का नाम अंग्रेजी के साथ देवनागरी अक्षरों में लिखा था . . . लंबी टांगोंवाली मकड़ियों जैसे इन अक्षरों में क्या-उसी जगह का नाम लिखा था; जो हम बचपन से सुनते आये थे?

मैंने अब्बा जान से पूछना चाहा मगर वह भीगी-भीगी आंखों से हर चीज को देख रहे थे जैसे पहचानने की कोशिश कर रहे हों और कुछ धुंधला-सा याद आ रहा हो. वह तो अपने अतीत में खोये हुए थे, हमने इक्का बुलाकर उसमें सामान रख दिया. चार-खाने का फटा तहमद पहने, बीड़ी फूंकते रूखे-सूखे चेहरे के इक्केवाले को देखकर यकीन नहीं आता था कि यह हमारे लिए अजनबी है और यह कराची में हमारे घर के सामने वाली सड़क पर तांगा नहीं दौड़ाता होगा.

"कहां जायेगा?" उसने पूछा.

"फतहगढ़ . . . कोठी मंझले मियां . . ." अब्बा जान ने बहुत मुस्कराकर जवाब दिया जैसे पता न बता रहे हों किसी तिलिस्मी खजाने की चाबी उसके हवाले कर रहे हों. फिर हमें बताने लगे कि हमारा पुश्तैनी मकान इतना मशहूर था कि लोग उसके हवाले से रास्ता बताया करते थे.

इक्केवाले ने हमें घूरकर देखा. इक्का चल पड़ा. तो उसने पीछे मुड़कर हमें अजीब-सी नजरों से देखा जैसे हम मुसाफिर न हों, अतीत के भूत हों.

"पाकिस्तान से आये हो?" उसने पूछा.

"हां भाई . . ." अब्बा जान ने कहा. "मैंने सोचा, एक बार अपने बच्चों को यह जगह दिखला लाऊं. हम यहीं के रहने वाले हैं. यहीं मेरी नाल गड़ी है, और अब कोई तीस बरस के बाद यहां आ रहा हूं . . . यह महसूस हो रहा है . . . " उन्होंने हमारे चेहरों की तरफ देखा और जुमला अधूरा छोड़ दिया, मगर इस वक्त उनके लिए चुप रहना संभव न था— "क्यों, मियां इक्केवाले, कितने बरसों से यहां हो? हमारे जमाने में फतहगढ़ में कई इक्केवाले थे—कल्लू, पुतवा, हफीज, मिठुआ, गौरीशंकर . . . "

"कुछ मर गये, कुछ पाकिस्तान चले गये, दो-एक अब भी हैं." उसने उपेक्षा से जवाब दिया.

"वतन वापसी का अजीब-सा एहसास हो रहा है . . ." अब्बा जान ने धीरे से कहा. इसका अंदाजा हमें उनके चेहरे की सुर्खी से हो रहा था. अब्बा की वजह से ही तो हम हिंदुस्तान आये थे, वर्ना हम दोनों भाइयों का खयाल था कि अब की छुट्टियों में प्यारे मामूं के पास कनाडा जायेंगे, कुछ घूमना-फिरना तो होगा, कह तो सकेंगे कि सफर कर के आये हैं. यह क्या कि इंडिया हो आये! वही काले-काले लोग, वैसी ही शक्लें, वही भीड़ और शोर-शराबा, अव्यवस्था, दरिद्रता, गंदगी जो हम अपने मुल्क में देखते आये हैं. यह भी कोई फॉरेन कंट्री है कि लगता है लालू खेत गरीबाबाद में घूम रहे हैं. हम सोच-सोचकर इंडिया की बुराइयां ढूंढते रहे. "आप वहां क्यों जाना चाहते हैं? आप क्यों भूल रहे हैं कि आप अपनी किश्तियां, मेरा मतलब है रेलें जलाकर आये थे." तारिक ने कहा. मैंने भी ऐतराज किया, "जिस इंडिया को आप देखना चाहते हैं उसके लिए रेल से नहीं टाइम मशीन से सफर करना होगा." मगर इसका इलाज था कि पाकिस्तान आने के बाद भी अब्बा जान के दिल में हिंदुस्तान की याद इस तरह बसी हुई थी जैसे शादी शुदा आदमी के जहन में कॉलेज के रोमांस का खयाल. इनका तो यह हाल था कि ऑल इंडिया रेडियो से फरमाइशी फिल्मी गीतों के प्रोग्राम में अगर फतहगढ़ का नाम प्रसारित हो जाता तो उनका दिल धड़कने लगता कि जाने कौन होगा, जिसने इस गाने की फरमाइश भेजी है, हमारे जमाने में गोपाल नाम के दो थे, खबर नहीं उनमें यह कौन है, गाना तो अच्छा है और आवाज भी लता की है, फिर कमाल देखो कि जो हम कराची में बैठे सुन रहे हैं, वही गाना हमारे छूटे हुए शहर में बज रहा होगा . . . हिंदू-मुस्लिम दंगे की खबर आती तो उनका खाना-पीना छूट जाता और जब इंडिया-पाकिस्तान टेस्ट मैच हुआ था तो उनका दिल दो टुकड़े हुआ जाता था . . . हिंदुस्तान आने की उनकी इच्छा इतनी तीव्र थी कि अम्मी जान के विरोध से भी कुछ फर्क न पड़ा. हिंदुस्तान के सफर का नाम सुनकर अम्मी भड़क उठतीं. उन्होंने हिंदुस्तान जाने से साफ इंकार कर दिया था और इतने दिनों के लिए छोटी खाला के यहां चली गयी थीं. हम उन्हें खाला के घर छोड़कर आये तो उनकी नजरें छलक रही थीं . . . अम्मी जान पांच साल की थीं तब जब देहली में दंगे हुए और उनका खारी बावलीवाला घर तबाह हुआ था. अम्मी ने अपनी आंखों से अपना रसता-बसता घर उजड़ते देखा, उनकी नजरों के सामने उसे लूटा गया, सारा सामान छिना, मकान में आग लगा दी गयी और उनके सारे बहन-भाई कई दिन तहखाने में छिपे रहे, नाना मियां ने शिकारी बंदूक तैयार कर रखी थी और नानी ने अपने लिए जहर की पुड़िया . . . फिर छिपते-छिपाते पुराने किले पहुंचे, वहां बेआसरा पड़े रहे, बड़ी मुश्किलों से लाहौर जानेवाली रेल में सवार हुए . . . उस रेल पर सिखों ने हमला किया और आधी रेल कट गयी. शांतिपूर्ण सुरक्षित जीवन के कई साल भी अम्मी जान के मन से इस दहशत को न मिटा सके. उसके बाद उन्होंने कभी रेल का सफर नहीं किया. और जब हम रवाना होने लगे तो तारिक को और मुझे रेल में बैठा देखकर उनका मुंह सफेद पड़ गया . . . छोटी खाला ने उनके कान में कहा, "बाजी, कमाल है! तुम दूल्हा भाई को अकेला जाने दे रही हो, वहां तमाम हिंदुआनियां होंगी, जिन पर उन्होंने कॉलेज के जमाने में नज्में लिखी होंगी . . ."

"देखो, देखो . . ." अब्बा जान ने मेरा कंधा पकड़कर हिलाया. "बस, जरा और आगे से कोठी की छत नजर आने लगेगी, देखना."

अब्बा जान आगे की तरफ झुके जा रहे थे कि पहली झलक फौरन देख लें.

"कहां है? कौन-सी है?" तारिक ने बेसब्री से पूछा.

दूर तक कोई ऐसी इमारत नजर नहीं आती थी, जो कोठी की उस चर्चा से समानता रखती हो जो हम सुनते आये थे.

"नहीं नजर आ रही होगी." अब्बा जान ने मायूसी से कहा. "अरसे में सब कुछ बदल भी तो जाता है और फिर इतना अर्सा हो गया . . . जब हम तुम्हारी उम्र के थे तो यहां से कोठी नजर आया करती थी और हम रास्ते-भर देखते जाते थे कि दूर से कोठी के छज्जे रेगिस्तान में चलते ऊंट की तरह डोलते नजर आ रहे हैं . . . " अब्बा जान के चेहरे पर फिर वही खोया-खोया अनमना भाव छा गया जो यहां कदम रखते ही बिछुड़े हुए दोस्त की तरह उनसे गले लग गया था. "जहां से इक्का मुड़ता था, वहीं वकीलों के मकान थे—शिब्बनलाल वकील का मकान, अयूब वकील का मकान . . . अयूब वकील मकान बेचकर पाकिस्तान चले आये थे और उस मकान में इन्कम टैक्स का दफ्तर खुल गया था और रास्ते में देखते चलो शीशम बाग, डिग्गीताल, पत्थर वाली मस्जिद. उसके आगे मोड़ आता था, जहां मौलश्री का पेड़ लगा हुआ था उसके बाद हकीमजी वाला मकान, फिर कोठी आयेगी. और आगे चलें तो कोठी के बाद काली बाड़ी और गोला, जहां अनाज गोदाम था . . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्यचित्र : चंचल

काली बाड़ी में काली माई की पूजा होती थी, बाकायदा मंदिर था. मुझे अक्सर वह मंदिर याद आता है, सुबह के वक्त वहां से भजन की आवाज आती थी और उसका छोटा-सा कलश और उसका घंटा और खास तौर पर एक मंजर जो बहुत याद आता है—वहां के विरहमन की बेटी रूपवती सुबह सवेरे घंटियां बजाया करती थी, कमर तक खुले बाल, बालों में चंपा के फूल उड़से हुए, लहंगा और ब्लाउज पहने, नंगे पांव खड़ी होकर घंटियां बजाती थी, और जो बड़ा घंटा बजाती थी तो लगता था कि उसमें झूल जायेगी. अब तक वह छवि निगाहों में फिरती है. . . ."

"मगर हम ठहरेंगे कहां? कोठी में?" तारिक ने पूछा.

"ठहरने में क्या मुश्किल है! यहां सब अपने हैं, कहीं ठहर जायेंगे. कोठी में अब सिर्फ औसाक माई रह गये होंगे. तुम लोगों को देखकर बहुत खुश होंगे, हम जब वहां रहते थे तो हर वक्त उनसे ठनी रहती थी. अब जान गये हैं कि सारी जायदाद उनकी हुई और हम हिस्सा बटाने को न रहे तो कैसे स्नेह भरे खत लिखते हैं. . . . मगर कोठी अभी तक क्यों नजर नहीं आयी.?"

इक्केवाला, जो ध्यान से सारी बातें सुन रहा था, बोल उठा, "औसाक मैया के अजीजदार हो और पाकिस्तान से आये हो?" उसने इक्का रोक लिया और अब्बा जान को गौर से देखने लगा जैसे उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहा हो. फिर एकदम से वह चिल्लाया, "मंझले मियांवालों के अस्लम मैया. . अस्लम मैया हो ना? मुझे पहचाना? मैं इल्मू हूं इल्मू. . . . ."

अब्बा जान इक्के से उतर पड़े, "इल्मू. . . . अरे, तुम हो? पहचाने नहीं जाते. इक्का कब से चलाने लगे?"

"क्या करें मैया, पेट के कारण सब करना पड़ता है. नाई की दूकान कब की छोड़ दी. जिजमानों ने शादी-ब्याह पर बुलाना छोड़ दिया और बाल अंग्रेजी तरज के कटवाना चाहते हैं. फांकों मरने के बजाय यह धंधा कर लिया. तुम अपनी कहो मैया, अच्छे तो रहे?"

तारिक और मैं हैरत से देख रहे थे कि अब्बा जान, जिनसे उनके मातहत कांपते हैं, सड़क के बीचों बीच इक्केवाले से गले मिल रहे हैं.

"कोठी में अब कौन रहता है? औसाक माई रहते हैं?" अब्बा जान ने उससे पूछा.

"औसाक मियां कबके फर्रुखाबाद चले गये. कोठी का बस नाम ही नाम है. जो यहां के पुराने रहने वाले हैं, वह अब भी आदतन इस मुहल्ले को 'कोठी मझेले मियां' कह देते हैं."

"और कोठी?" अब्बा जान के गले में लफ्ज अटकने लगे.

"क्या पूछते हो, खुद ही देख लो." उसने इक्का रोक दिया. तारिक ने और मैंने बड़ी उत्कंठा से देखा. दो-तीन कमरों का क्वार्टर सामने था, जिस पर अंग्रेजी का बोर्ड लटक रहा था—'महिला विद्यालय'.

"यही है?" तारिक ने मुंह बनाते हुए पूछा और अब्बा जान की तरफ देखा, लेकिन उनके चेहरे पर इतनी उदासी कहां से आ गयी थी?

"यह कब हुआ ?" उन्होंने इक्के वाले से पूछा.

"कोठी को ढाये गये सात बरस हो गये. उसकी जगह अफसरों की कालोनी बन गयी है. यह स्कूल उसी का है."

"और उसके सामने जो बरगद का पेड़ था?" अब्बा जान की आवाज बुरी तरह कंपकंपा रही थी जैसे कुल्हाड़ी की जद में पेड़ का तना.

"वह भी कट गया."

"या अल्लाह! . . ." वह निढाल होकर सड़क के किनारे बैठ गये और मैं सोचने लगा कि उस मकान से मेरा क्या रिश्ता था. मैंने अपने पुश्तैनी मकान को नहीं देखा, मगर उसका कितना जिक्र सुना था. उसके एक-एक कमरे, एक-एक बरामदे के बारे में अब्बा जान हमें कितनी दफा बता चुके थे. और अब उसका निशान भी बाकी न था. यह महज एक मकान था, ताजमहल तो न था, जिसे वातावरण के प्रदूषण से खतरा होता है तो हिंदुस्तान के मुसलमानों को अपना सांस्कृतिक विरसा खतरे में पड़ता हुआ नजर आता है. चंद पेड़ और एक पुराना मकान, जिसकी बुनियादें ऐसे जमानों में थीं, जो वापस तो नहीं आ सकते और भुलाये भी नहीं जा सकते. . .और फौरन खयाल आया कि अब हम ठहरेंगे कहां ? इक्केवाला तो सामान उतार के चला गया. वह किराये के पैसे ही नहीं ले रहा था, बल्कि चलते वक्त तारिक को और मुझे चार-चार आने दे गया कि बच्चों को पहली दफा देखा है. हम सड़क के किनारे सामान लिये बैठे थे और मुझे इंजील के वे अंश याद आ रहे थे जिनमें वेवतन प्रवासी यहूदियों के शोक गीत थे. हम कहां जाते? इससे क्या फर्क पड़ता है कि हम यहां हजारों बरस रहे हैं. राहगीर हमारी तरफ शकभरी नजरों से देख रहे थे और खास तौर से एक मोटा-ताजा हिंदू धोती पहने, पग्गड़ बांधे बड़ी देर से हमें घूर रहा था. हिंदू-मुस्लिम दंगों के सारे किस्से हमारे जहनों में घूम गये. और अब वह हमारी तरफ आ रहा था.

"अब्बू. . . . . . .! देखिए. . . . . !" तारिक ने भयभीत होकर उसकी तरफ इशारा किया.

उसने आते ही अब्बा जान को दबोच लियाऔर उनकी गर्दन में हाथ डाल दिये, मगर वह तो रो रहा था!

"बच्चो, यह तुम्हारे भूपेंद्र चाचा हैं, इन्हें आदाब करो." अब्बा जान ने कहा.

"सलाम. . . . ." हमने उन्हें सलाम करना चाहा, फिर खयाल आया कि सलाम तो यहां चलेगा नहीं, नमस्कार हमें करना नहीं आता था, इसलिए हमने कहा, 'गुडईवनिंग' वह बहुत खुश. हमने उनका नाम सुना हुआ था. यही तो अब्बा जान के लंगोटिया यार थे, जिनके साथ वह स्कूल से भागकर बागों में फल तोड़ने जाते थे.

"तुम लोग यहां कैसे बैठे हो? घर हाजिर है, चलो, घर चलो."

भूपेंद्र चाचा हमें अपने घर ले गये. पुरानी-सी ड्योढ़ी. जिसका लकड़ी का दरवाजा था. . . . हम नहाये-धोये और आनकर बैठे ही थे कि थालियों में गर्म कचौरियां और तरकारी आ गयी. थकन और नींद से हमारी आंखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंद हुई जाती थीं, मगर अब्बा जान देर तक बातें करने के मूड में थे और भूपेंद्र चाचा भी. लगता था, ये दोनों स्कूल से भागे हुए दो बच्चे हैं, जो अब भी एक-दूसरे का हाथ थामे बागों और गलियों में घूम रहे हैं.

दोनों अपनी यादों को इस तरह मिल-बांट रहे थे जैसे बचपन में बागों से चुराये हुए अमरूद और बेहरों पर सड़क किनारे खेलते हुए बच्चों की-सी खुशी. मुझे खासी हैरत हो रही थी कि भूपेंद्र चाचा हिंदू होकर भी इतना घुल-मिल रहे थे हैं. हमने तो हिंदुओं के बारे में कुछ और सुन रखा था. . . . . अगली सुबह नाश्ते के वक्त मैंने उनसे पूछ ही लिया. वह हंस पड़े, "वाह मियां भतीजे, चचा को बेतास्सुबी की सनद दे रहे हो! इस शहर के हिंदू-मुसलमानों में संबंध ऐसे थे कि. . . . रोजमर्रा के मेल-जोल से लेकर तीज-त्योहार तक एक-दूसरे का सम्मान हम पूरी निष्ठा से करते थे. हर साल ईद के मौके पर जब तुम्हारे अब्बा और चचा और दादा नमाज पढ़कर ईदगाह से वापस लौटते थे तो रास्ते में जितने हिंदुओं के घर थे, वे दरवाजे पर खड़े होते थे और गुजरनेवालों के कपड़ों पर इतर छिड़कते थे. तुम्हारे दादा हमारे यहां ईद के दिन आते थे, पिताजी से गले मिलते थे, सेवैंया खाते थे और मुझे चांदी का रुपया ईदी में देते थे. इसी तरह शब्बे रात में तुम्हारी दादी हलवे का थाल हमारे यहां भिजवाती थीं. हिंदू हलवाई खास तौर से आता था और अलग बैठकर हलवा बनाता था और हिंदू पल्लेदार को बुलाकर उसके सिर पर थाल भिजवाया जाता था. किसी को खयाल भी न होता था कि वह क्यों हिंदुओं की तरह छूत-छात कर रहे हैं. इसी तरह दीवाली पर शहर भर में सबसे ज्यादा रोशनी जिस मकान पर होती थी, वह मंझले मियां की कोठी थी. मुहर्रम में हमारे दरवाजे पर चालीस दिन तक सबील बनती थी और उसमें दूध का शर्बत होता था. . . . मगर यह भाषण लंबा हो गया. तुम तैयर हो लो तो तुम्हें यहां की सब जगहें दिखा लायें."

"देखो, हमारे इलाके ने कितनी तरक्की की है!" भूपेंद्र चाचा ने बड़े गर्व से बंगलों की कतार की तरफ इशारा किया, "कितना माडर्न हो गया है!"

"यह तरक्की है!" तारिक बीच में बोल उठा, "कभी आप कराची आकर देखें, जहां हम रहते हैं."

"मैं तो भई, अपने हिसाब से कह रहा हूं. यहां पावर हाउस बन गया, नयी कालोनियां आबाद हो रही हैं, दो नये कालेज खुल गये, बहुत बड़ा हस्पताल है, कई कारखाने बने हैं. . . ." वह बता रहे थे और अब्बा जान बेध्यानी से सिर हिला रहे थे. उनकी नजरें जाने कहां भटक रही थीं.

"तुम नहीं देख रहे असलम?" चाचाजी ने उनको टोकते हुए कहा.

"देख रहा हूं बहुत फख्र की बात है, इस इलाके ने इतनी तरक्की कर ली है. मगर जाती तौर पर मुझे कुछ और एहसास हो रहा है. कल रात को तुमसे पुरानी बातें करते हुए सोच रहा था कि यह जगह मेरी यादों की कब्रगाह है, यहां हमारे गुजरे जमाने के सुनहरे सपने, सुनहरे दिन दफन हैं. मगर अब इस जगह का वर्तमान और भविष्य देखकर खयाल आता है कि इसकी अलग एक जिंदगी है, जिसमें हम शरीक नहीं है, जिसमें हमारा कोई हिस्सा नहीं है और जिसके लिए इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम जो यहां पैदा हुए, पले-बढ़े, अब यहां नहीं हैं . . . . . जिंदगी अब भी उसी तरह अपनी धुन में मगन चली जा रही है, हमसे और हमारी मौजूदगी से बेगाना. इस एहसास से दुःख होता है."

भूपेंद्र चाचा यह सुनकर सोच में पड़ गये. "मैं. . . . .मुझे तो खयाल भी नहीं था कि तुम वतन में अजनबी बन जाओगे. अच्छा चलो, अब पुराने मुहल्लों की तरफ चलते हैं, जो सब तुम्हारे देखे-भाले हैं."

अब्बा जान ने होंठों ही होंठों में कहा, "डरता हूं, वतन की मिट्टी पहचानने से इंकार न कर दे. और अगर पहचान भी ले तो मैं उन गली-कूचों को क्या मुंह दिखाऊंगा! कैसे कहूंगा कि ऐ वतन की गलियो, देखो, मैं क्या से क्या हो गया!"

और हम?. . . मैंने सोचा. हमारा भी इससे कोई रिश्ता बनता था? मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं. मैं इस जगह को हमेशा से बंद आंखों से देखता आया हूं. और अब आंखें खोलकर देखा तो बहुत ज्यादा फर्क न था. मुझे सारे वक्त ये एहसास हो रहा था कि जैसे इस गली-कूचों से पहले कभी गुजरा हूं, तफसील याद नहीं रही, लेकिन उसकी हल्की-सी याद का धुंधलका मन में सुरक्षित रह गया है जैसे पिछले किसी जन्म का सपना. ये अनदेखी जगह हमारे लिए इतनी अजनबी तो न थीं, जितने हम इनके लिए अजनबी थे. इनका जिक्र हम कब से सुनते आ रहे थे. जहां हमारे चाचा, फूफियां इकट्ठा हुए, वहां यह जिक्र बिन बुलाये मेहमान की तरह आकर महफिल में शामिल हो जाता और फिर घंटों यही बातें हुए जातीं. . . . . . "क्यों अकरम, तुम्हें याद है, एक दफा अशाफा अफीमी रोता हुआ आया था कि अब्बा साला मर गया.". . . . . "अनवर, तुम्हें फलां याद है. . . . . . फलां जगह, फलां वाकया. . . . ." यादें हमें विरसे में मिली थीं. अपनी दधियाल वालों से फतहगढ़ के हालात इतनी दफा सुने थे कि उन्हें कहानी की तरह दुहरा सकता था और मुझे यकीन था कि अगर मेरी आंखों पर पट्टी बांधकर मुझे वहां के चौक में खड़ा कर दिया जाये, तब भी मैं तीर की तरह सीधा अपने उस पुश्तैनी मकान पर जा

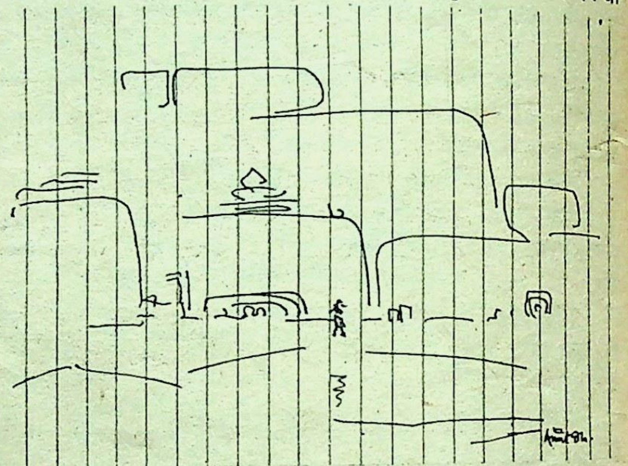

पहुंचूंगा, जिसे मैंने कभी नहीं देखा था. यह कौन-सा सिलसिला है, जो टूटा न था. . . . .हम जानते थे कि अतीत है, जो उनसे हम तक लहर की तरह आती है और उस बहाव में हम छिप जाते है, वक्त का एक डिजाइन है, हम जिसकी बुनत में शामिल हैं. . . . . हम जानते थे कि मां-बाप की पीढ़ी अपने अतीत का इतना जिक्र क्यों करती है. . . . . मैं जानता था कि अब्बा जान की यह हालत किसलिए है. . . .

"देखो," उन्होंने मेरा कंधा हिलाते हुए कहा, "देखो, वह सामने जो मकान है, उसमें मकसूदन लाल वकील रहा करते थे. जानते हो उनका असली नाम क्या था? मधुसूदन. . . . . हम लोग उन्हें मकसूदन कहते थे. और वह जो आगे इमारत है, उसमें फारूक साहब रहा करते थे. तुम्हें उनकी बेगम याद है?"

हां, मुझे याद था. हमारे यहां आने से तीन माह पहले फारूक साहब की बीवी का देहांत हुआ था. मरने से पहले उन पर उन्माद सवार हो गया था. वह चीखा करती थीं कि मैं पराये मकान में नहीं मरूंगी और बिस्तर से उठ-उठकर घर से भाग निकला करती थीं और लोग पकड़कर लाते थे, वह फिर चीखती थीं कि मुझे परदेस की मौत नहीं चाहिए, मैं अपने घर जाऊंगी फतहगढ़. . . . और रातभर जाने किन-किन पुराने-धुराने लोगों के नाम लेकर पुकारा करती थीं, जो जाने कब के मर-खप गये होंगे—डाक्टरों ने मैमोरी ग्लैंड्स का कैंसर बताया था, लेकिन असल में उन्हें क्या था—मैमोरी में उतरे ग्लैंडस का कैंसर या मैमोरी का? यादें जो कैंसर बनकर सीनों में उतर जाती हैं. . . . .यादों की भी वापसी होती होगी, वर्ना मेरे अब्बा क्यों एक ही साथ हंस भी रहे थे और रो भी रहे थे. यहां उनको चप्पे-चप्पे पर अपनी खोयी हुई जिंदगी नजर आ रही थी. यहां उनका बचपन 'इड्डी-इड्डी आड़े-आड़े' खेल रहा था, यहां उनका लड़कपन पतंग उड़ा रहा था, यहां उनकी नौजवानी गजल पढ़ रही थी, वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलां दोस्त रहते थे और इस गली में फलां साथी का घर था, और हर गली-कूचे के साथ संबंधित शक्लें जो हमेशा के लिए खो गयीं सिवाय ख्वाबों के. . . आंखें चमक रही थीं और गला रुंधा जाता था, बस नहीं चलता था कि एक-एक चीज को घोलकर पी खुशी से नाच उठें या उन दीवारों पर सिर टिकाकर रो पड़ें. . . वह राह चलतों को गले लगाये लेते थे और हमारा शर्म के मारे बुरा हाल था. भूपेंद्र चाचा अब्बा का हाथ थामे थे और उंगली से बार-बार आंखों के कोने साफ कर रहे थे.

लोग हमें हैरत से देख रहे थे और तारिक का मुंह शर्म से सुर्ख हो रहा था. हम यह तो छिपा नहीं सकते थे कि हम इन साहब के साथ हैं, जो टूरिस्ट गाइड की तरह एक-एक ईंट का इतिहास बयान कर रहे थे और इतनी तेजी से, जैसे चाबी ज्यादा भर गयी हो.

तभी अब्बा जान को एक चायखाना नजर आ गया और वह खुशी से चिल्लाये, "अरे, वल्ली का होटल! देखो भाई लड़को . . ."

भूपेंद्र चाचा उनको रोकते रह गये और भावावेश में भीतर खिंचते चले गये. कराची के ईरानी होटलों से भी गया-गुजरा तंग-सा कमरा था.

हम दोनों भाई तो नाटक पर रूमाल ढांपे अलग खड़े रहे. अब्बा जान काउंटर पर बैठे मोटे सिख से पूछ रहे थे, "इस होटल के जो मालिक थे वल्ली, वह कहां गये?"

"होंगे जी कहीं." उसने लापरवाही से जवाब दिया.

"इस जगह से मेरी बहुत-सी यादें जुड़ी हैं. मैं इसी शहर का रहने वाला हूं और पाकिस्तान से आया हूं. . ." अब्बा की आवाज भर्रा गयी.

"पाकिस्तान?" उस बुतनुमा सिख की मिची-मिची आंखें पूरी तरह खुल गयीं, "कभी रावलपिंडी रहे हो जी? मेरा वतन है जी. . ." उसने कहना शुरू किया.

"वल्ली का लड़का तज्जन हमारा हमउम्र था. . ." अब्बा दूर खोये हुए थे.

"मैंने तो जी पहले खरीद लिया था. . . कोई फर्क नहीं पड़ता जी, अब भी आपका है, बैठें, चाय पियें. . ." वह अपनी कुर्सी से उठकर अब्बा से हाथ मिलाने लगा.

"यहां रोजाना शाम को हमारी बैठक हुआ करती थी. हम, अलीम, मिर्जा नईमउल्लाह बेग, रब्बानी साहब, जमीर. . . यहीं बैठकर माउंटबेटन की तकसीम वाली तकरीर सुनी थी. . ."

"जी, रावलपिंडी में मुहल्ला बन्नी है ना जी? देखा है आपने? वहां हमारा घर था, वहां के रहनेवाले हैं हम जी. . . . ."

अब्बा ने कोई जवाब नहीं दिया—वह न जाने किस धुंधली याद की उंगली पकड़े चल रहे थे. वे कहकहे, जमाने और ये दीवारें. . . उनका रुख होटलवाले की तरफ था, मगर उसका भी जहन कहीं और था—"रावलपिंडी जी. . . बड़ा याद आता है जी. . ."

दोनों में से कोई किसी की बात नहीं सुन रहा था और दोनों एक-दूसरे को अपनी-अपनी बात सुना रहे थे.

"हम यहां चाय पीने आते थे. . . सिगरेट चल रही है, मुस्लिम लीग की सियासत और खबरों पर बहस. . ."

"सड़क से आगे चलकर तीसरी गली में मुड़के हमारा मकान, महल्ला बन्नी. . ."

"शेर पढ़े जा रहे हैं. धुआंधार बहस चल रही है. . ."

"मकान से आगे जी स्कूल था, उसके बराबर अमरित कौर का मकान. . ."

दो स्वगत कथनों पर यह संवाद खिंचता जा रहा था. तारिक ने अब्बा जान की आस्तीन पकड़कर खींची, "अब्बू, चलिए ना. . ."

"चलो, चलो. . ." अब्बा के खयालों को फोर्स्ड लैंडिंग करनी पड़ी, "सब बदल गया है!"

उन्होंने होटलवाले से मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया. वह उनके दोनों हाथ थामकर घिघियाने लगा, "कभी रावलपिंडी जाना जी तो मुहल्ला बन्नी. . ."

तारिक और मैं बोर हो चुके थे. हम बाहर आकर देखने-भालने लगे.

भूपेंद्र चाचा और अब्बा जान बाहर निकले. अब्बा जान अभी तक पुराने साथियों की रोल-कॉल किये जा रहे थे, फलां कहां है, फलां क्या कर रहा है.

एक नाम पर आकर अब्बा जान रुक गये, "शफाअत ?. . . और शफाअत कहां है?"

इस नाम से हम भी परिचित थे. अब्बा की पुरानी एलबम में भूरी-भूरी तस्वीरों में गोल ऐनक लगाये कमीज-पाजामा पहने धुंधली-सी छवि. . . अब्बा के फूफीजाद भाई थे या मामूंजाद?

"शफीअत तो मर गया!"

"अरे !" अब्बा जैसे सुन्न होकर रह गये.

बहुत देर तक किसी से बोला न गया. आखिर भूपेंद्र चाचा ने खामोशी को तोड़ा, "शफीअत के बीवी-बच्चे यहां हैं, उनसे मिल आओ."

दो कमरों का छोटा-सा मकान, जहां हमारे आने से हलचल मच गयी. बच्चों की फौज गेंद-बल्ले फेंककर हमें देखने आ गयी और बड़ी-बूढ़ियां गरारे फड़काती अंदर से निकल आयीं. कोई बलाएं ले रही हैं और कोई पाकिस्तान में प्याज का भाव पूछ रही हैं. अम्माएं अपने बच्चों को दिखाने लगीं—"ऐ छुट्टन, असलम ताया को छाम करो."

"ताया अब्बा माम, ताया अब्बा छाम!"

तारिक और मैं एक तरफ खड़े तिरस्कार भरी नजरों से इस शनाख्ती परेड को देख रहे थे, "जाओ, तुम दोनों अपने कजिंस से मिलो, देखो-भालो." अब्बा जान ने हमसे कहा.

हम मकान के अंदर चले गये, जहां हमारे हम-उम्र कई लड़के-बाले जमा थे और बहस कर रहे थे कि अब के ईद मीलाद के जलसे में खुर्शीद ने अच्छी 'नात' पढ़ी या पिछली दफा जुनैद ने. हम एक तरफ को बैठ गये और हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि इनसे क्या बात करें. तारिक ने इन्हें च्यूइंग-गम निकालकर दी तो एक ने लेकर जेब में डाल ली और दूसरे ने चबाये बगैर निगल ली.

"बैकवर्ड. . ." तारिक ने मेरे कान में कहा और दूसरी तरफ ओल्ड कंट्री के ये रिश्तेदार भी हमें देखकर हैरान नजर आ रहे थे कि ये जो जींस और टी-शर्ट पहने, गले में कैमरे लटकाये, चीविंग-गम चबाते, टूरिस्ट बने चले आ रहे हैं, ये हमारे रिश्तेदार हैं? आंगन में कई बुढ़ियाएं पानदान खोले बैठे थीं. वे हमारी तरफ मुखातिब हो गयीं. कल्लों में पान दबाकर वे हमसे सवाल पूछने लगीं. माथे पर त्यौरी, त्यौरी पर नाक और नाक पर ऐनकें चढ़ाकर उन्होंने हमें सिर से पैर तक घूरा.

हम उठकर अब्बा के पास चले आये, "अब्बा जान, अब चलें?" तारिक ने उनसे कहा.

"क्यों, अभी से?"

"नहीं, बस अब चलें. . . बहुत हो गया."

"तुम्हें अच्छा नहीं लगा?"

"इसी की आप इतनी तारीफ करते थे?" तारिक ने पूछा, "यही दिखाने लाये थे हमें? यह कस्बा?"

अब्बा जान से तड़पकर उसकी तरफ देखा. बेटे और बाप के दरमियान एक हरा-भरा बाग था, जिसमें शाखें खुश्क हुई जा रही थीं और सूखे पत्तों का ढेर बढ़ता जाता था. . . □

रूपांतर : महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधेरा

गुरबचन सिंह भुल्लर

आज जबकि पंजाब की धरती पर फिर दरारें पड़ने लगी हैं, काले खां जैसे लोग बहुत-बहुत याद आते हैं, जो खुद कभी पानी गंदला नहीं करते, पर उन्हें अपने बाप या बाप के बाप द्वारा गंदलाये गये पानी के कथित अपराध की सजा भोगनी पड़ती है!—सन् संतालीस के संदर्भ में वर्तमान परिवेश का मूल्यांकन करती पंजाबी के वरिष्ठ और प्रख्यात रचनाकार की मर्मांतक कृति का संक्षिप्त रूपांतर. . . .

वह मेरे सामने खड़ा था—काला! दिन-रात वह मेरे सामने रहता था. पर मैंने न कभी उसे ध्यान से देखा था और न उसके बारे में सोचा ही था. शायद उसने अपने-आपको भी कभी ध्यान से नहीं देखा था. और न कभी अपने बारे में सोचा ही था.

वह मेरे दफ्तर का चपरासी था. इस मामूली शहर का मामूली बाशिंदा. अधिकारी और कर्मचारी बदलते रहते थे पर वह कई सालों से यहीं था. इसी दफ्तर में चपरासी.

मैंने तो कभी यह भी नहीं सोचा था कि वह हिंदू है या सिख. कभी अधमुंडे बालों पर वह पगड़ी बांध लेता और कभी दाढ़ी को ऐसे छांट लेता जैसे किसी अनाड़ी ने खेत में से चारा काटा हो. असल में उसे चलते-फिरते, बोलते या काम करते देखकर कभी सोचने-कहने की जरूरत नहीं पड़ती थी कि वह हिंदू है या सिख. बस, वह आदमी प्रतीत होता था, जन्म से लेकर काम करते हुए बड़ा होने और काम करते-करते ही मर जानेवाला प्राणी! . . .अपनी कमाई से दाल-रोटी खा लेनेवाला, मोटा-झोटा पहन लेनेवाला और जैसे-तैसे गुजारा कर लेनेवाला!

पता नहीं वह कच्चा-पिलपिला सिख था, जो केश-दाढ़ी संभालने से बचने के लिए कभी-कभी कैंची फेर लिया करता था. . .या आलसी हिंदू जो रोज कूची फिराने से बचने के लिए अपने बाल अनमुंडे ही रख छोड़ता था. वैसे वह अगर किसी दिन नाई के यहां जा बैठे तो हिंदू लग सकता था—काला राम. और अगर कुछ दिन कैंची न फेरे तो सिख लग सकता था—काला सिंह.

बहरहाल, वह न हिंदू था न सिख. न काला राम न काला सिंह. बस, काला था. मैंने कभी किसी को उसे 'काला सिंह' या 'काला राम' नाम से पुकारते नहीं सुना. कभी कोई उसका नाम तबदील करता भी था, तो वह उसे 'काला' न कहकर 'कालू' कह देता था.

मगर उस दिन जब वह मेरे सामने अखबार का इशतिहारोंवाला सफा रखने के बाद एक अजीब-सा सवाल लेकर खड़ा था, मुझे पहली बार उसके धर्म के बारे में सोचना पड़ रहा था. मैं अपने तौर पर हैरान भी हुआ कि यह शख्स काला एक अरसे से मेरे सामने रह रहा है, और मुझे यह भी नहीं मालूम कि वह हिंदू है या सिख. मैंने उसे कभी कोई 'रीत-रसम' करते नहीं देखा, काम ही उसकी 'रीत-रसम' था. मैंने कभी उसे कोई 'शबद-श्लोक' उचारते नहीं सुना, 'जी—जी, हांजी-हांजी' ही उसका 'शबद-श्लोक' थे.

पर यह शायद मेरी भूल थी. वह कुछ तो होगा ही. वह केवल मनुष्य कैसे हो सकता था? वह 'हिंदू-मनुष्य' होगा या 'सिख-मनुष्य'. अगर वह खुद हिंदू या सिख नहीं तो उसका बाप और उसके बाप के बाप तो हिंदू या सिख होंगे ही—उस मेमने की तरह जिसके बाप या बाप के बाप ने बाघ के पीनेवाले नदी के जल को गंदला और जूठा कर दिया था.

मेज पर अपने सामने रखे हुए अखबार से नजर उठाकर उसके चेहरे को गौर से देखा—यह आखिर काला राम है या काला सिंह? . . . पर काला तो वहां था ही नहीं, न काला राम के रूप में न काला सिंह के रूप में. . .

वहां तो काले खां खड़ा था. यहां से कितने ही कोस दूर. . .मेरे गांववाला काले खां.

मेरे गांववाले काले खां को मरे तीस बरस हो गये थे. . .पर आज वह फिर मेरे सामने खड़ा था. . .यह काले खां था या काले खां का भूत? मृतकों के तो भूत ही होते हैं और भूतों के बारे में सिर्फ सुना या पढ़ा ही जाता है, वे दिखायी नहीं देते. और अब जबकि तीस बरस पहले मर चुके काले खां का भूत मेरे सामने खड़ा था तो मारे भय के एकबारगी तो मेरे सिर से पांव तक सिरहन-सी दौड़ गयी.

काले खां, जबसे मैं उसे देख रहा था, एक-अकेली जान था. बस, जी का जी, दम का दम. . .बेरी की सोटियों का फाटक खोलकर वह अपने आंगन में पांव रखता तो घर आबाद हो जाता, नहीं तो सूने कच्चे मकान की दीवारें किसी भूतखाने की तरह भांय-भांय करती रहती थीं. इत्तफाक से उस छोटी-सी गली के सभी मकान अपने-आप में जानवरोंवाले बाड़े थे या तूड़ी-भूसेवाले कोठरे. . .और बीच में काले खां का घर था. पर गांववाले, पता नहीं क्यों उसे भी काले खां का घर न कहकर, काले खां का बाड़ा ही कहते थे. काले खां जैसे लोगों के शायद घर नहीं होते, बाड़े ही होते हैं.

पिछली तरफ कच्ची कोठरी, जिसमें चौड़ी-चौड़ी झिरियोंवाले तख्ते थे. न कोई खिड़की न रोशनदान. जब कभी हम, छोटे बच्चे, उस सुनसान गली से गुजरते, उन झिरियों में से शिखर दोपहरी में भी झांकता, कोठरी का अंधेरा बहुत डरावना और रहस्यमय लगता. कभी कोई शैतान लड़का अचानक काले के बाड़े के सामने, दूसरे लड़के को फाटक की तरफ धक्का दे देता. तब बाकी लड़के 'भूत-भूत' चिल्लाते हुए भाग लेते और गिरा हुआ लड़का भयभीत-सा जल्दी-जल्दी उठता और कपड़े झाड़ता, गालियां देता हुआ पीछे-पीछे भागने लगता.

कोठरी के बाहर, दाहिने हाथ काले खां ने एक शहतीर छता हुआ था. इस छतड़े के नीचे, बस, एक कच्चा चूल्हा था और उसका सहारा लेकर खड़ा हुआ एक तप-तपकर भूरे हो चुके किनारोंवाला तवा. भूतों के डेरे की तरह इस चूल्हे-चौके में उस वक्त ही रौनक होती; जब कभी काले खां ने यहां कुछ रींझना या पकाना होता. उसकी आटा गूंथनेवाली मिट्टी की कुनाली, मिट्टी का थपणा, चिमटा और फुंकनी सुनसान छतड़े को रंग-भाग लगा देते... और जब वह घर से बाहर जाते हुए यह सब कुछ समेटकर कोठरी में रख जाता तो भूतों के उठ चुके डेरे की भांति पीछे बस, अधजले फूस-काने रह जाते या चूल्हे की दीवारों के बीच फंसी हुई राख जो हवा के झोंकों से सरक-सरककर आंगन में बिखरती रहती.

अब जबकि काले खां का भूत मेरे सामने खड़ा था, उसके पीछे से मेरे दफ्तर की दीवार आलोप हो गयी और मेरी निगाहों में काले खां का वही बाड़ा साकार हो उठा, जिसके बंद तख्तों की चौड़ी झिरलों में से अंधेरा अभी भी उसी तरह बाहर झांक रहा था.

काले खां मुसलमान तो था, पर कौन-सा मुसलमान? . . .हमारे गांव के सब मुसलमान 'काले' ही थे. गरीब-गुरबा, निरीह—कुम्हार, तेली और जुलाहे, गांव के घरों के काम-धंधे करते, बर्तन बनाते, सरसों पेरते और खद्दर-खेस बुनते. पर काले खां मालूम नहीं, किनमें था. अगर उसके घर के साथ लगते कुछ और मुसलमानों के घर होते तो मैं उनसे ही अनुमान लगा लेता. और अब यह जान पाने का न तो कोई आधार था और न शायद इसकी कोई जरूरत.

काले खां बकलमखुद कुछ भी नहीं था. न कुम्हार, न तेली, न जुलाहा. हां, उसके मां-बाप या मां-बाप के मां-बाप, बाप का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी गंदला और जूठा करनेवाले मेमने के बाप या बाप के बाप की तरह जरूर कुछ रहे होंगे—कुम्हार, तेली, या जुलाहे.

मैं जब गांव के माध्यमिक स्कूल में पढ़ता था, काले खां बूढ़ा हो चुका था. दूधिया-सफेद उसकी दाढ़ी थी—बिल्कुल जग्गर सिंह की दाढ़ी जैसी, जिसे कीर्तन के समय ढोलकी बजाने के कारण लोग जग्गरसिंहा 'ढोलकी-वाला' कहा करते थे. जग्गर सिंह और काले खां की दाढ़ी में एक ही फर्क था—जग्गर सिंह की मूंछें साबुत थीं—भरी-भरी रेशमी मुछहरें और काले खां की मूछें नाक के नीचे से कतरी हुई होती थीं.

काले खां. . . . यह पूरा नाम 'काले खां' भी पता नहीं मैं क्यों लेने गया हूं. शायद पढ़-लिखकर तनिक सम्मान से बोलना आ गया है.

खैर, हमारे गांव में क्योंकि उस समेत कई काले थे, इसलिए लोगों ने पहचान के लिए हरेक के नाम के साथ एकेक विशेषण और जोड़ लिया था. जैसे कालाराम बनिया महंगा दाम लगाकर भी कम तोलता था तो उसे सब 'काला चोर' कहते थे. काला सिंह जाट को खुले हाड़-पांववाला होने के कारण 'काला भोंचल' कहा जाता था तो काला सिंह हवलदार को 'काला कमांडर' और इस काले खां को 'काला चौकीदार'.

काले खां अगर चौकीदार न होता तो कुछ न होता. वह 'काला' कम था 'चौकीदार' ज्यादा.

काले के बारे में आम धारणा थी कि इस जैसा चौकीदार बीस-बीस कोस तक नहीं. . . . और बीस कोस तक अगर कोई सिफ्त उसे कोई खास दर्जा देती थी तो वह थी उसकी आवाज.

अगर कभी काले खां बीमार हो जाता और गांव में कोई मुनादी करवानी पड़ जाती तो यह काम मुन्चर मजहबी या सुरमचू नाई के जिम्मे लगता. हांकते तो वे भी बहुत पर बात जमती नहीं थी. मुनादी के बोल चार घरों से आगे न निकलते. बस, उनकी कूक-सी हवा में फैल जाती. गांव के लोग पहले बुड़बुड़ करते हुए गालियां देते और फिर हाथ में लिया काम या थाली में पड़ी हुई रोटी छोड़कर, मुनादी की खबर पाने के लिए घरों से बाहर निकल आते और कहते, "मां के चौकीदार, मुनादी करने से पहले खा-पी लेना था, जुबान में थोड़ी जान पड़ जाती." और लोग मुनादी का सबब पूछने से पहले पूछते, "काले को क्या आफत आन पड़ी है आज . . ?"

काले खां टिकी हुई सांझ में एक जगह खड़ा होकर हांका देता तो उसकी आवाज घंटी की टंकार की तरह दूर-दूर तक फैल जाती.

". . . . . काल की . . . तहसीलदार. . .. पक्की धर्मशाला में. . . . .आयेगा. . . .अर्जियों-वाले पहुंच जाना भाई-ई-ई-ई." . . . . . "कल को बोहड़ोंवाले जोहड़ की मिट्टी निकालनी

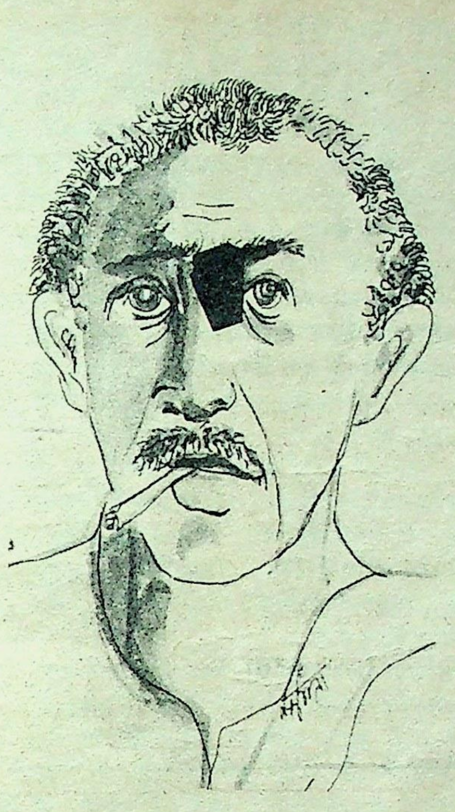

है. . . . . . घर-घर से बंदा पहुंचे भाई ई-ई-ई-". . . "कुंडा सिंह भोगल की. . . . काली ढाल तलवारी भैंस. . . . .खो गयी. . . .किसी ने देखी हो तो बताना भाई ई-ई-ई-". . .काले के हांके की आवाज छतों पर तैर जाती और वहां से सीढ़ियां उतरकर आंगनों में पसर जाती और दरवाजों-खिड़कियों में से गुजरती बैठकों, बरामदों तक जा पहुंचती.

अगर यह आवाज न होती, काले खां चौकीदार भी न होता. सारी उम्र उसने इसी आवाज का दिया ही खाया था.

यह उसकी आवाज ही थी, जो उसे एक दिन मौत के मुंह से भी निकाल लायी थी. . .

उन दिनों गांव का 'सफाया' कर दिया गया था. एक भी मुसलमान गांव में नहीं रह गया था. कुछ मुसलमान भाग गये थे और बाकी को गांव और पड़ोसी गांव के बदमाशों ने फसलों में से खोज-खोजकर मार डाला था. आम लोग 'रब-रब' करते घरों के भीतर पड़े दिन काट रहे थे.

गुंडागर्दी का बोलबाला था. . . और उनके नेता थे रामसरूप और मैंगल सिंह.

तब मुझे कोई समझ नहीं थी. सब कुछ बहुत अजीब-अजीब लगता था. पर अब लगता है कि तब रामसरूप और मैंगल सिंह सिर्फ रामसरूप और मैंगल सिंह ही नहीं रहे होंगे बल्कि रामसरूप गांव के हिंदुओं का और मैंगल सिंह गांव के सिखों का प्रतिनिधि था. मैंगल सिंह का घर तो गांव के दूसरी तरफ था, लेकिन रामसरूप उन दिनों जब भी घर आता. उसके कपड़ों का रंग उसके कंधे पर पड़े हरिद्वारी परने की तरह लाल हुआ होता, उसकी दाढ़ी की किरचें बढ़ी हुई होतीं और मूंछें मरोड़ी हुईं. उसके हाथों में गठरियां और पोटलियां होतीं. वह किसी से कोई बात नहीं करता था, बस, दगड़-दगड़ सीधा अपने घर में घुस जाता.

फिर जब मैंगल सिंह और रामसरूप ने भरी सभा में गांव के तमाम मुसलमानों का सफाया जाने का ऐलान किया तो वे दोनों खुश भी थे और कुछ इस तरह भी थे कि जिसे आज मैं तनाव रहित मनस्थिति कह सकता हूं. पर उनकी बात सुनकर कुछ व्यक्ति, जिन्हें हम 'बाबा, ताया या चाचा' कहते थे, 'हरे राम! .... वाहेगुरू !'. . .कहते हुए उठकर चले गये. जो बैठे रह गये उनमें ज्यादातर लड़के-वड़के ही थे.

उनमें से एक भाने ने कहा, "क्यों बई रामसरूप, हैं बई मैंगल सिंहा. . .कहते हैं, ऊपर कोई रब भी है?"

कहां तो वे दोनों कैसी-कैसी बातें कर रहे थे और कहां भाने को उनसे रब का ज्ञान लेने की पड़ी हुई थी, हालांकि रामसरूप विद्वान था, सब बातों का ज्ञाता, चाहे कोई कुछ पूछ ले. वह पत्री बांचा करता था और लोगों के कामों के लिए शुभ दिन–वार बताया करता था और संकट टालने के उपाय बताता था.

मैंगल सिंह भी रोज डेरे पर जाकर अखबार में माथा मारता रहता था. कुछ तो जानता ही होगा. पर भाने की बात पर वे दोनों हाथ पर हाथ मारकर हंस दिये और एक साथ ही बोले, "कर दी न मूर्खोंवाली बात. . ऊपरवाले के हुक्म से ही तो सब कुछ हो रहा है. उसके हुक्म बिना पत्ता भी तो हिलकर दिखा दे. . ."

और तभी वहां हड़कंप-सा मच गया. हमने देखा, तारा लफंड और माघी लंगड़ा, कहीं से काले चौकीदार को पकड़कर ला रहे थे.

"जब गीदड़ की मौत आती है तो वह घरों में आ घुसता है." उन्होंने सभा में पहुंचकर कहा, "यह अब तक कहीं छुपा रहा और आज खुद बाहर निकल आया है ."

मैंने डरते-डरते काले चौकीदार को कुछ नजदीक से देखा तो पता नहीं क्यों, मुझे अपने घर में बंधी भैंस की याद आ गयी. कई बार वह खड़ी रहती पर दूध न उतारती या भूखी होती पर नापसंद होने के कारण पट्ठे न खाती. ऐसे मौके पर मेरा बापू लाठी पकड़ लेता और दो-चार ठोक देता. हर प्रहार पर भैंस इधर-उधर भागती और बापू से दूर होने का जतन करती. . . पर खूंटे से बंधी, भागती किधर. . . कितनी दूर जाती? बापू लाठी रोक लेता तो वह पूरी संगल खींचकर पीछे हटकर सहमी नजरों से उसे देखती रहती. उस वक्त काले खां का चेहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बिल्कुल हमारी मैंस के उन संत्रस्त क्षणोंवाले चेहरे जैसा प्रतीत हो रहा था.

वह फटी-फटी नजरों से सबकी तरफ देखता चरमराया हुआ-सा सबके बीच बैठा था, मगर न तो कुछ कह रहा था और न ही गिड़गिड़ा रहा था. शायद उसमें इतनी कुव्वत भी नहीं रह गयी थी कि वह अपनी जान बचाने के लिए मिन्नत-खुशामद ही कर सके.

काले खां की जान अब रामसरूप और मैंगल सिंह के हाथ में थी. उसका मुकद्दमा उनके हवाले हो गया. हम सहमे हुए पीछे हट गये कि वे क्या फैसला देते हैं. . .और काले खां का क्या हश्र होता है. कुछ लोगों ने सलाह दी कि अब और पाप न करो. माने ने तो कई दिनों से भूखे-प्यासे काले खां के लिए अपने भतीजे को दूध लाने के वास्ते घर भी भेज दिया. लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे. सब अपनी-अपनी भिड़ा रहे थे. आखिर बात काले खां की मुनादी पर आ गयी कि कहां मिलेगा ऐसे जानदार हांकेवा . चौकीदार. . .घंटी की तरह टनकती आवाजवाला!

तभी रामसरूप बोला, "हमने तो अब गांव को पवित्र हुआ समझकर हवन की वेदी भी हटा दी है. दुबारा कहां पंगा करेंगे."

मैंगल सिंह ने कहा, "हमने भी अब शस्त्र टांग दिये हैं."

आखिर फैसला हुआ कि गांव के कुछ बदमाशों और छड़े-छांटों द्वारा लायी गयी मुसलमानियों को जब 'हिंदुनी' या 'सिखनी' बनाया जायेगा तो काले खां को भी हिंदू या सिख बना दिया जाये.

"काले खां हिंदू नहीं बन सकता." रामसरूप ने अपना हरिद्वारी परना एक कंधे से दूसरे कंधे पर बदलते हुए कहा.

"क्यों बई पंडता!" माने ने पूछा, "मुसलमानी तो हिंदुनी बन सकती है न?"

"हां, वह बन सकती है, लेकिन मुसलमान हिंदू नहीं हो सकता."

"क्यों बई पंडता, यह बात क्या हुई?"

"बस, शास्त्रों में लिखा है. . .और शास्त्र, भाई, मैंने तो लिखे नहीं, जो हर बात समझा दूं. बस, बड़ों ने जो कुछ लिख दिया, हम तो उसका पालन करना अपना धर्म समझते हैं." पंडित रामस्वरूप कुछ झुंझला-सा गया था.

"फिर तो बई पंडता, बड़े चुस्त हैं तेरे शास्तर. मीठा-मीठा खा लेते हैं और कड़वा-कड़वा थू. . .थू!" माने ने कहा और सब लोग खिड़-खिड़ करते हंस दिये. कोई नहीं हंसा तो बस, सबके बीच बैठा मानो अपने-आपसे हारा हुआ काले खां!

पंडित रामस्वरूप की बात पर उलझन तो मुझे ही क्या और भी लोगों को हुई, पर सबने सोचा कि वह ज्ञानी-ध्यानी हैं, सो ठीक ही कहता होगा.

उसी वक्त मैंगल सिंह ने बात खत्म करके सबकी उलझन समाप्त कर दी. उसने कहा, "ठीक है, काले को हम सिंह सजायेंगे."

"क्यों बई काले, मंजूर है?" पूछने पर काले खां ने अपने दोनों कांपते हुए हाथों जोड़ दिये, हाथ जुड़े भी कहां, एक-दूसरे से बलिश्तभर दूर हवा में लटकते हुए कांपते रहे. . .मकड़ी के जाले में लटके पेड़ से टूटे सूखे पत्ते की तरह. शायद उनमें जुड़ने की सामर्थ्य ही नहीं रही थी. उसने कुछ बोलना चाहा किंतु बोल नहीं सका. अब उसका चेहरा बिल्कुल वैसा हो गया था जैसा कि हमारी मैंस का तब हो जाता था जबकि बापू अपनी लाठी लिये वापस चला जाता था!

इतने में माने का भतीजा कोसा दूध ले आया. कांपते हाथों से लपककर काले ने गिलास मुंह की तरफ बढ़ाया तो माने ने टोक दिया, "सबर से चौकीदार, हौले-हौले. . .बूंद-बूंद करके पी, नहीं तो खाली कलेजे पर जाकर सांप की तरह डस लेगा."

उसी दिन काले खां, काला सिंह बन गया, हालांकि उसके कपड़े लत्ते पहले की तरह ही थे. वही खद्दर का कुर्त्ता, बस उस पर एक किरपान और लटक गयी. . .वही खद्दर का साफा, बस वह सफेद न होकर रंगदार हो गया. . .वही खद्दर की धोती और वही चौकीदारी जूते. हां, अब उसने अपनी नाक के नीचे मूछें कतरना बंद कर दिया और धीरे-धीरे उसकी मूछें भी जग्गर सिंह ढोलकीवाले की मूछों जैसी हो गयीं. . .दाढ़ी तो पहले ही उसकी दाढ़ी जैसी थी.

पहले भी सब उसे काला चौकीदार कहते थे और अब भी काला चौकीदार ही कहते थे. न पहले उसे कोई काले खां कहता था, न अब कोई काला सिंह. पहले की तरह ही वह हर तरह की मुनादी करता. हां, उसकी चाल कुछ अरसा थुड़की-सी रही मगर फिर संभल गयी. उसकी आवाज कुछ वक्फा ढीली-सी रही मगर फिर हमेशा की तरह टनकने लगी. . .जैसे किसी सूखे हुए बूटे को पानी दें तो उसके पत्ते कुछ कुम्लाहे-मुर्झाये रहते हैं, मगर फिर हरे-कचार होकर चहक पड़ते हैं, उसी तरह वह पहले की तरह ही रहने और हंसने-बोलने लगा.

और जब मैं दर्जा दस में पढ़ रहा था, एक दिन मालूम हुआ. . .काले खां बनाम काला सिंह कुछ दिन बीमार रहकर चल बसा. हम स्कूल से वापस आते छात्रों ने गांव के बाहर शमशान में आग जलती देखी तो पता लगा कि वहां काले चौकीदार की लाश फूंकी गयी थी.

कुछ साल बाद पंडित रामस्वरूप छाती पर निकले एक घातक फोड़े से तड़प-तड़पकर मर गया. उसके बाद मैंगल सिंह पागल होकर गलियों में अधफटे कपड़े पहने घूमता रहा और फिर अचानक लुप्त हो गया. कुछ दिन बाद उसकी फूली हुई लाश बोहड़वाले कुएं में से मिली!. . .

अब जबकि पंजाब की धरती पर फिर दरारें पड़ने लगीं हैं, काले खां जैसे लोग बहुत-बहुत याद आते हैं; जो खुद कभी पानी गंदला या जूठा नहीं करते, पर उन्हें अपने बाप या बाप के बाप. . .द्वारा गंदलाये या जुठलाये पानी के कथित अपराध की सजा भुगतनी पड़ती है! काले खां जैसे लोग याद आते हैं तो साथ ही रामसरूप और मैंगल सिंह की स्मृति कौंध भी जाती है. सन् सैंतालिस में वे साझी सेनाओं के जरनैल थे. . .अगर वे आज जिंदा होते तो क्या एक-दूसरे की विरोधी सेना के अलंबदार होते. . .?

काले चौकीदार की चिता मैंने अपनी आंखों, जलते देखी थी, तीस साल पहले. . .पर वह आज मेरे सामने खड़ा था. . . साक्षात् . एक अरसा बीत चुका है, रामस्वरूप जहरीले फोड़े का नरक भोगकर और मंगलसिंह सूने कुएं में सड़-गलकर मर गये थे. जब तक काले खां जिंदा रहा उसका एक बाजू मंगल सिंह ने थामे रखा, दूसरा रामसरूप ने. और आज भी उन दोनों ने मेरे सामने खड़े काले खां को आजू-बाजू पकड़ रखा था.

"इतने बारीक हिसाब की जरूरत नहीं जी, बस ऐवें मोटी-सी बात बता दो." काले चपरासी ने मेरी विचार तंद्रा भंग करके मुझे जगा दिया. वह मेरे सामने पड़े अखबार में छपे एक विज्ञापन जैसा ही विज्ञापन छपवाना चाहता था और मुझसे पूछ रहा था कि इसे छपवाने का तरीका क्या है. . .और इस पर खर्च कितना आयेगा.

मेरे देखते-देखते काले चपरासी का चेहरा काले चौकीदार के रूप में तबदील होने लगा. . . रामसरूप और मैंगल सिंह के भूत उसे अपनी-अपनी तरफ खींच रहे थे. . .और दोनों तरफ से खिंच-खिंचकर आकार लेते जा रहे चेहरे से काला चपरासी बोला, "मैं सोच रहा हूं कि अपनी गली के बाकी घरों जैसा ही हो जाऊं. . ." पूरी गली में एक हमारा ही घर जो. . .

मेरे सामने रखे अखबार में छपा 'नाम परिवर्तन' का विज्ञापन मेरी आंखों में बुरी तरह चुभने लगा. मेरा मन हुआ कि इस अखबार की चिंदी-चिंदी कर दूं. पर उससे पहले कि मैं अपने हाथ आगे बढ़ाता, दोनों तरफ से खींचे जाने के कारण फटता जा रहा काले चपरासी का चेहरा मेरे अपने चेहरे में पलट गया. . .मैंने कांपकर रामसरूप और मैंगल सिंह के भूतों की तरफ देखा. . . पर यह क्या, उनके सिरों पर भी मेरे ही चेहरे लगे हुए थे!. . .□

● सोवियत सूचना केंद्र, पंजाबी विभाग,
25, बाराखंबा रोड, नयी दिल्ली-110001

संक्षिप्त रूपांतर : जया रमेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूठी आंखें

रजीउद्दीन सिद्दीकी

रजीउद्दीन सिद्दीकी छठे दशक के उर्दू के महत्वपूर्ण कथाकार रहे हैं. उनकी रचनाएं जहां एक ओर सामाजिक सौहार्द्र का वातावरण तैयार करने में कामयाब रही हैं वहीं वे अपनी रचनाओं में इस ओर भी इशारा करते नजर आते हैं कि हिंदू हो या मुसलमान . . . सबसे पहले और सबसे आखीर में भी वह एक इंसान है . . . इंसानियत की तमाम खूबियों से परिपूर्ण . . .और कि हममें आपसी सौहार्द्र की कमी है या कि आपसी विश्वास की?—यहां प्रस्तुत है उनकी एक प्रतिनिधि रचना जो दंगाइयों और दंगा पीड़ितों की मनोदशा को बहुत ही सूक्ष्मता से रेखांकित करती है--

इस बार जो कुछ गुलाम रसूल ने देखा, बिलकुल नाकाबिले-यकीन था. उसे पहले तो अपनी आंखों पर एतबार नहीं आया. सोचा कि कहीं वह ख्वाब तो नहीं देख रहा है, लेकिन नहीं, यह हकीकत थी, ख्वाब न था. उसकी नजर के सामने कोई सिनेमा का परदा न था, बल्कि उसका अपना मकान था.

कुछ ही फासले पर उसके मकान का दरवाजा नजर आ रहा था. एक छोटा-सा गिरोह उसके मकान का ताला तोड़ चुका था. ताला तोड़ने में उन्हें जरा भी दिक्कत न हुई, क्योंकि आनेवाले अपने साथ सब तरह का सामान लाये थे. लोहे की भारी और हलकी सलाखें थीं. मकान जलाने के लिए पेट्रोल के डिब्बे थे. कुछ लोगों के हाथों में लाठियां थीं. कुछ चाकू और छुरियां संभाले हुए थे. गुलाम रसूल के मकान के पासवाले मकानों पर हल्ला बोला जा रहा था. अपने घर से कुछ दूर, महेंद्र भाई के घर की तीसरी मंजिल पर छिपा हुआ गुलाम रसूल अपने मकान की दुर्दशा देख रहा था. अभी कुछ घंटे भी न गुजरे थे कि महेंद्र भाई घबराया हुआ उसके घर आया था और उससे कहा था, "गुलाम रसूल भाई, जल्दी से यहां से भाग चलो. बलवाई लोग इधर ही आ रहे हैं. न जाने क्या हो जाये. फौरन भाभी और बच्चों को लेकर मेरे साथ चलो. यहां रहने में खतरा है. जिस हाल में हो, उसी में ही निकल चलो. जरा भी देर की तो न जाने क्या हो जाये."

महेंद्र के मुंह पर उड़ती हुई हवाइयां और फिर शहर के हालात. बात गुलाम रसूल की समझ में फौरन आ गयी. वह अपनी बीबी और चार बच्चों को पहने हुए कपड़ों में साथ लेकर महेंद्र भाई के घर आ गया. महेंद्र और उसकी बीबी ने उन्हें अपने मकान की तीसरी मंजिल के एक कमरे में छिपा दिया. कमरे को बाहर से ताला लगा दिया गया, ताकि किसी को मालूम न हो सके कि वहां कोई है.

शहर की फिजां सारा दिन खराब रही थी. गुलाम रसूल ने सोचा भी न था कि हालात इतनी जल्दी ऐसा मोड़ ले लेंगे. एकदम जो हालात ने पलटा खाया तो सभी बौखला गये. फिर वह भी क्या करता, मकान को जैसा-तैसा छोड़कर महेंद्र भाई के घर आ गया. महेंद्र उसका पुराना साथी था. बचपन, साथ इसी मुहल्ले में गुजारा था. स्कूल में भी साथ रहे थे. नौकरी पर भी सुबह को साथ ही जाते थे. वह सुख-दुख सब का साथी था. गुलाम रसूल को पूरा भरोसा था कि महेंद्र भाई के घर में कोई उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता. महेंद्र अपनी जान दे सकता था, लेकिन गुलाम रसूल पर आंच न आने देता.

गुलाम रसूल के पास ही उसकी बीबी बहुत घबराई हुई बच्चों को लिये बैठी थी. बच्चों की समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है? क्यों उन्हें बिलकुल खामोश रहने को कहा गया है?

गुलाम रसूल के देखते ही देखते बलवाइयों का एक हुजूम उसके मकान में दाखिल हो गया था. उसका अपना मकान, बीस साल की मेहनत की कमाई से बनाया हुआ मकान. भरा-भरा घर. जरूरत की सभी चीजें वह एक-एक पैसा जोड़कर लाया था. अब बलवाई उसके घर से सामान लेकर निकलने लग थे. कोई कुछ ले जा रहा था, कोई कुछ. यह सब कुछ गुलाम रसूल की आंखों के सामने हो रहा था और वह मजबूर था, सिवाय सब्र के कुछ न कर सकता था. लेकिन सब्र का दामन भी जल्दी ही तार-तार हो गया. जब उसने अनहोनी बात देखी. हां, अनहोनी ही तो थी. नाकाबिले-यकीन! उसका अपना दोस्त, जिगरी दोस्त, लंगोटिया यार, ओम प्रकाश बलवाइयों में शामिल था. सिर्फ शामिल ही न था, लूटमार में भी शरीक था. उसने अपनी आंखों से उसे अपने मकान में दाखिल होत हुए देखा. और यह क्या, उसके दोनों लड़के भी थे वहां. वह भी हुजूम में उसके साथ थे. नाकाबिले-यकीन! गुलाम रसूल ने आंखें बंद कर लीं. या खुदा, इस दुनिया का क्या होगा?

गुलाम रसूल ने फिर आंखें खोलीं तो देखा कि ओम प्रकाश उसके घर से उसकी बीबी के कपड़े सीने की मशीन उठाये हुए बाहर निकल रहा है. उसके कुछ ही देर बाद उसका लड़का सतीश उसका ट्रांजिस्टर लेकर एक तरफ दौड़ा. फौरन ही ओम प्रकाश का दूसरा लड़का महेश उसकी साइकिल घसीटता हुआ बाहर आया और एक तरफ ले चला. गुलाम रसूल ज्यादा न देख सका. उसने अपनी आंखें खिड़की के सूराख से हटा लीं और उन्हें मूंदकर सोचने लगा कि यह सब क्या है? ओम प्रकाश जैसा पढ़ा-लिखा और सभ्य इंसान अगर ऐसा कर सकता है तो भलाई की उम्मीद किससे की जाये? उसे अपनी बीबी की बातें याद आयीं. वह अकसर कहा करती थी, "देखो जी, इन परदेसियों से ज्यादा मेल-मिलाप अच्छा नहीं. इनका भरोसा न किया करो. इनसे तो अपने स्थानीय गुजराती लोग लाख दर्जे बेहतर हैं." लेकिन वह हमेशा बीबी

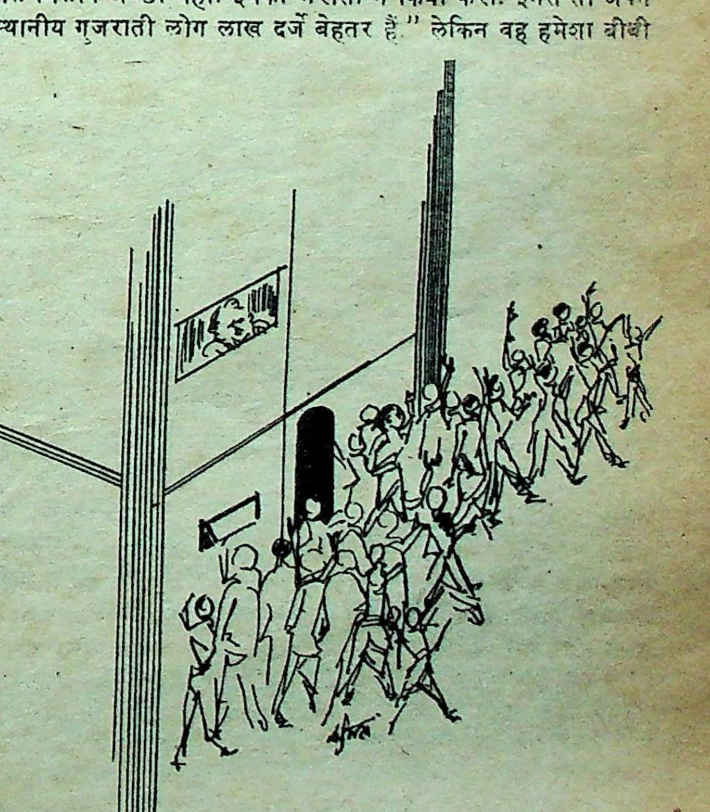

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात हंसी में उड़ा दिया करता था. आज उसे एहसास हुआ कि उसकी बीवी सच कहती थी.

इंसानियत का जनाजा तो उसी वक्त उठ गया था, जब अहमदाबाद शहर में फसाद शुरू हुआ था, लेकिन नहीं. . . वह सोचने लगा... जनाजा कहां उठा था ? जनाजा तो दफनाने के बाद उठता है. इंसानियत तो कटी और जली हुई, शहर की गलियों और सड़कों पर पड़ी थी. आवारा कुत्तों और गिद्धों का निवाला बन रही थी. इंसानियत का जनाजा कौन उठाता ?

अपना चिराग ही अपना घर जला रहा था. साइकिल, जो उसकी दस साल से साथी थी, रेडियो वह अभी कुछ दिन हुए बच्चों के आग्रह पर लाया था. और मशीन ! वह तो जैसे उसकी बीवी की सहेली थी. आज यह सब कुछ उसकी नजरों के सामने चला गया, और ले कौन गया? उसका अपना लंगोटिया यार ओम प्रकाश ! जो उसके साथ सिनेमा देखने जाता था, जो उसके साथ होटलों में खाता-पीता था, जो उसके घर ईद पर आता था, जिसके घर वह दीवाली पर जाता था. हां, वही ओम प्रकाश! आज ओम प्रकाश नहीं, सिर्फ हिंदू बनकर रह गया था, और गुलाम रसूल आज सिर्फ मुसलमान था. वह जानता था कि उसके घर से लूटा हुआ माल औने-पौने बेच दिया जायेगा. कोई भी अक्लमंद इंसान लूट का माल ज्यादा दिन तक अपने घर में नहीं रखता. ओम प्रकाश हिंदू था. हां, उसे याद आया. ओम प्रकाश लाहौर से लुटकर आया था. उसके देखते ही देखते आज से बाईस साल पहले उसका घर लूटा गया था. उस वक्त वह कमजोर था. मजबूर था. आज बाईस साल बाद उसने गुलाम रसूल की मजबूरी का फायदा उठाया. बाईस साल बाद उसने अपना बदला ले लिया, मगर किससे ?

दो दिन महेंद्र भाई के घर में पनाह लेने के बाद कुछ समय के लिए कर्फ्यू उठा तो गुलाम रसूल बच्चों को लेकर शहर के एक सुरक्षित क्षेत्र में चला गया. शहर में पूरे दिन का कर्फ्यू बारह दिन तक जारी रहा. ये बारह दिन गुलाम रसूल ने अपने कुछ रिश्तेदारों के साथ चाय और बासी डबलरोटियों पर गुजारा करके पूरे किये.

जब शहर में अपेक्षाकृत अमन हो गया तो एक दिन गुलाम रसूल अपने इलाके में गया. लोगों के गुस्से की आग अब काफी हद तक ठंडी हो चुकी थी, क्योंकि उस पर काफी से ज्यादा खून छिड़का जा चुका था. शहर का इंतजाम फौज ने संभाल रखा था. रात का कर्फ्यू काफी सख्त कर दिया गया था. शहर में खास-खास जगहों पर फौजी पेट्रोलिंग कर रहे थे. गुलाम रसूल अपने इलाके में महेंद्र भाई से मिलने गया था. रास्ते में उसका अपना मकान पड़ता था. उसने एक नजर अपने मकान पर डाली. दरवाजा खुला हुआ था, अंदर कुछ नजर नहीं आता था. बलवाई सब कुछ ले गये थे. सेहन में कुछ फर्नीचर जला हुआ पड़ा था. एक बार तो उसके दिल में अंदर जाने का खयाल आया, लेकिन अंदर जाने की हिम्मत न हुई. मरा-मरा मकान छोड़कर गया था. खाली देखकर न जाने उसके दिल पर क्या गुजरे. वह अभी यही सोच रहा था कि पीछे से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा. उसने पलटकर देखा. ओम प्रकाश खड़ा था. गुलाम रसूल का दिल एकदम नफरत से भर गया. उसके जी में आया कि वह वहां से चला जाये. ओम प्रकाश को कोई जवाब न दे. लेकिन चाहते हुए भी वह कदम न उठा सका. ओम प्रकाश उसके करीब आ गया. गुलाम रसूल को शक गुजरा कि कहीं वह कोई और शरारत तो नहीं करना चाहता, उसने इधर-उधर नजर दौड़ायी. आसपास कोई पुलिसवाला या फौजी नजर नहीं आ रहा था.

"कैसे हो गुलाम रसूल भाई?"

ओम प्रकाश हमेशा उसे 'गुलाम रसूल भाई' कहता था, लेकिन आज यही 'भाई' रसूल के दिल में चुभ गया. उसका जी चाहा कि बहुत जोर से कहकहा लगाये, लेकिन वह कुछ न कर सका. उसकी जबान बंद थी. वह ओम प्रकाश के सवाल का जवाब भी न दे सका. ओम प्रकाश ने उसका हाथ पकड़ लिया. उसके जी में आया कि यह मनहूस हाथ झटक दे, लेकिन वह ऐसा न कर सका. ओम प्रकाश उसे घसीटता हुआ अपने घर की तरफ ले गया. उसने सोचा, उस रोज जान बच गयी थी, आज मौत यकीनी है. मौत से वह डरता न था, लेकिन कैसी मौत? ब्रूटस के हाथों सीजर की मौत ? वह रुक जाना चाहता था, लेकिन कदम रुकते न थे. ओम प्रकाश उसे सीधा अपने कमरे में ले गया.

गुलाम रसूल बिलकुल खामोश था. सिर्फ यह अंदाजा लगा रहा था कि अब उसका अगला कदम क्या होगा? इतने में उसे ओम प्रकाश की भर्राई हुई आवाज सुनाई दी, "गुलाम रसूल भाई, जब मुहल्ले पर हमला हुआ था तो मुझे फौरन तुम्हारा खयाल आया था. बलवाई एकदम मुहल्ले पर टूट पड़े थे. कुछ लोग तुम्हारे घर के दरवाजे पर भी पहुंचे थे. मैं अगर चाहता भी तो तुम्हारा घर नहीं बचा सकता था. वे लोग बहुत थे. मैं अकेला था. अगर मुकाबला करता तो मारा जाता. मरने से नहीं डरता, मगर मकसद तो फिर भी पूरा न होता. वे लोग सब शराब पिये हुए थे. अपने-पराये और बुरे-भले की पहचान उन्हें न थी. मेरे लिए एक ही रास्ता था, और वह रास्ता था, बलवाइयों के साथ बलवाई बन जाना, और मैंने वही रास्ता अपनाया. मैं और तुम्हारे दोनों भतीजे बलवाइयों के साथ तुम्हारे घर में घुस गये. जितना भी हो सका, तुम्हारा सामान हम अपने मकान में ले आये. तुम्हारी साइकिल, ट्रांजिस्टर, मशीन, तीन संदूक, कुछ बर्तन. गुलाम रसूल भाई! दुख की बात तो यह है कि हम तुम्हारा सब सामान न बचा सके." ओम प्रकाश की आवाज रुंध गयी.

गुलाम रसूल की नजरें ओम प्रकाश पर जमी हुई थीं. आंखों से गंगा-जमुना बह रही थी. इतने आंसू थे आंखों में कि उसे साफ नजर भी नहीं आ रहा था कि उसके सामने कौन खड़ा है !

कौन खड़ा था यह ? हिंदू या बलवाई, इंसान या कोई फरिश्ता? □

उर्दू से अनुवाद : सुरजीत

स्याह हाशिया

योग्य कार्रवाई

▣ मंटो

जब हमला हुआ, तो मोहल्ले के अल्प संख्यकों में से कुछ तो मार डाले गये, बाकी जानें बचाकर भाग गये, एक आदमी और उसकी पत्नी अपने घर के तहखाने में छिप गये.

दो दिन और दो रातें वे वहीं छिपे रहे. कोई मदद के लिए न आया.

दो दिन और गुजर गये. मौत का डर कम होने लगा, लेकिन भूख और प्यास सताने लगी.

चार दिन और बीत गये. अब पति-पत्नी को जिंदगी और मौत से कोई दिलचस्पी न रही. दोनों तहखाने से बाहर निकले.

आदमी ने बड़ी कमजोर आवाज में मोहल्ले के लोगों को संबोधित करते हुए कहा, "हम दोनों अपने आप को तुम्हारे हवाले करते हैं. हमें मार डालो."

सुनकर लोग सोच में पड़ गये. उनमें से एक ने कहा, "हमारे धर्म में तो जीव-हत्या पाप है."

उन लोगों ने आपस में सलाह की और दंपत्ति को 'योग्य कार्रवाई' के लिए दूसरे मोहल्ले के लोगों के हवाले कर दिया. □

प्रस्तुति : मुखबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी योजनाएं

जीवन बीमा निगम आपके लिए प्रस्तुत करता है 'दोहरी बीमा' योजनाएं।

'जीवन साथी'

यह कामकाजी दम्पति के लिए आदर्श योजना है। वैवाहिक बन्धन जैसे प्रेम और निष्ठा का अटूट बन्धन है, 'जीवन-साथी' का

सुरक्षा बन्धन जीवन-काल के बाद भी टूटता नहीं है।

अवधि पूरी होने पर, मूल बीमा राशि बोनस के साथ देय होती है।

पॉलिसी की अवधि में यदि किसी साथी की मृत्यु हो जाती है तो उत्तरजीवी (दूसरे) साथी को मूल बीमाराशि अदा की जाती है। दूसरे को आगे कोई भी प्रीमियम अदा नहीं करने पड़ते।

इसके बाद, अवधि पूरी हो जाने पर उत्तरजीवी साथी को, या अवधि से पहले उसकी भी मृत्यु हो जाने पर नामजद व्यक्ति को, मूल बीमाराशि बोनस सहित पुनः अदा की जाती है।

'जीवन मित्र'

इस योजना की रचना परिवार को अधिकतम सुरक्षा दिलाने के लिए की गयी है। मियाद पूरी होने पर अन्य बन्दोबस्ती बीमा

योजनाओं की ही तरह बीमेदार को मूल बीमाराशि बोनस सहित अदा की जायेगी। यदि पॉलिसी की अवधि में ही बीमेदार की मृत्यु हो जाती है, नामजद व्यक्ति को दुगुनी बीमाराशि और तब तक जुड़े बोनस मिलते हैं।

थोड़ा सा अतिरिक्त प्रीमियम जमा करने पर, दुर्घटना के कारण मृत्यु होने पर अतिरिक्त सुरक्षा भी मिल सकती है।

'दोहरे लाभ' वाली इन योजनाओं के बारे में और जानकारी के लिए अपने जीवन बीमा एजेन्ट या निकटतम जीवन बीमा कार्यालय से सम्पर्क करें।

योगक्षेमं वहाम्यहम्

भारतीय जीवन बीमा निगम

daCunha/LIC/166/85/HN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष में देश के युवकों को भारतीय रेल की भेंट

क्या आप भारत की विविध व समृद्ध सांस्कृतिक प्रथाओं से परिचित हैं? क्या आपको पर्यटन या यात्रा का शौक है? क्या आप यह जानना चाहेंगे कि कश्मीर से कन्या कुमारी तथा गुजरात से असम तक भारतीय युवक किन गतिविधियों में मग्न हैं?

स्वतंत्र भारत को नये तथा युवा खून की ज़रुरत है। राष्ट्र की स्वतंत्रता और एकता युवकों के हाथ है।

देश की आत्मा व उसकी शक्ति का आभास कराने के लिए भारतीय रेलवे आपको निमंत्रित करती है।

आप द्वितीय श्रेणी में 50% रियायत का लाभ उठा सकते हैं। अगर :-

1. आप 13 वर्ष से 33 वर्ष के आयु वर्ग में है।
2. आप कम से कम 6 के समूह में रेल यात्रा कर रहे हैं।
3. यात्रा प्रत्येक दिशा में कम से कम 1000 किलोमीटर हो।

अन्य विवरण के लिए कृपया निकटतम रेल आरक्षण कार्यालय से सम्पर्क करें।

व्यापक यात्रा से अपना ज्ञान वर्धन करें।

भारतीय रेल

उत्तर रेलवे

रेल किराये में 50% रियायत

SPACE PLAN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15 अगस्त

स्वतंत्रता की जिस ज्योति को
हमारे बहादुर देशवासियों ने
प्रज्वलित किया–
आज वह करोड़ों लोगों का मार्ग
प्रशस्त कर रही है।
कोई भी आंधी इसे बुझा नहीं सकती।
यही वह ज्योति है–
जिसने हमारी नियति को बदल दिया,
हमें परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराया।
इसी प्रकाश पुंज ने
हमें मजबूती और आत्मनिर्भरता की
दिशा दिखाई।
यह दीप-शिखा
अंधेरे में आशा की किरण है।

हमारी चिरन्तन ज्योति

davp 85/141

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक : 115 रुपये

अर्धवार्षिक : 60 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम....................

पता....................

....

....

हस्ताक्षर....................

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002.

अगला अंक

दुनिया में अब तक कितने युद्ध हो चुके हैं?...कितने और होंगे?...और क्या होंगे उनके अंजाम...

क्या यह सच है कि दुनिया के किसी भी कोने पर होनेवाले किसी भी युद्ध का असर अब सिर्फ दो देशों पर नहीं, हर देश पर पड़ता है और उसका अंजाम भुगतना पड़ता है विश्व के चप्पे-चप्पे को? फिर विज्ञान जबकि दुनिया को नजदीक से नजदीक लाता जा रहा है तो युद्ध उसे बना रहा है कायर और हिंसक?...क्यों?—पढ़िए, सारिका : रजत जयंती वर्ष की अठारहवीं सौगात—

युद्ध कथा अंक

राहुल सांकृत्यायन, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, तकषी शिवशंकर पिल्लै, इतालो केल्विनो, एच. ई. बैटन, सन्हैयालाल ओझा, मिखाइल शोलोखोव, जान दरदा, जोसेफ हेलर, बंसी निर्दोष, बोरिस लेव्रेंयोव, बाला दुबे, योगेश गुप्त, हावर्ड फास्ट, एदिता मौरिस आदि देश और विदेश के जाने-माने लेखकों की कहानियां, उपन्यास एवं लघुकथाएं आदि.

युद्ध विज्ञान की छाया में : बर्ट्रेंड रसेल

प्राचीन भारत की युद्ध विद्या : हरिमोहन शर्मा

आपकी बात, अपनी बात, बहस आदि स्थायी स्तंभों सहित

सारिका

हर वर्ग और उम्र के पाठक के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar